बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक संपादक

रजनीश कुमार शुक्ल

संपादक

अशोक मिश्र

साहित्य में गांधी और गांधी साहित्य

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन

बहुवचन
अंक : 63 (अक्टूबर-दिसंबर 2019) ISSN- 2348-4586
प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

संपादकीय संपर्क :
संपादक बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)
मो. संपादक- 7888048765, 09422386554
ईमेल- bahuvachan.wardha@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : रामानुज अस्थाना
ईमेल- ramanujasthana123@gmail.com फोन- 07152-232943, मो. 09422823617

© **संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित**
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं विश्वविद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका न मिलने की शिकायत इस पते पर करें :
प्रचार प्रसार : सुरेश कुमार यादव
फोन : 07152-232943, मो. 09730193094, ईमेल- s.ujala80@gmail.com

बिक्री और प्रसार कार्यालय :
प्रकाशन विभाग, **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय**
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र) भारत
फोन : 07152-232943, फैक्स : 07152-230903

वार्षिक सदस्यता के लिए बैंक ड्राफ्ट **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय** के नाम से, जो वर्धा में देय हो, ऊपर लिखित बिक्री कार्यालय के पते पर भेजें। मनीऑर्डर स्वीकार्य नहीं।

सामान्य अंक : 75/- वार्षिक शुल्क रु. 300/- द्विवार्षिक शुल्क रु. 600/- व्यक्तिगत संस्थाओं के लिए वार्षिक शुल्क रु. 400/- द्विवार्षिक रु. 800/- (डाक खर्च सहित)
विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 15 अमेरिकी डॉलर/7 ब्रिटिश पाउंड
समुद्री डाक : एक प्रति 8 डालर/5 ब्रिटिश पाउंड
आवरण : प्रीडा क्रिएशंस

BAHUVACHAN
A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI
PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHIANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA) INDIA

मुद्रण : विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, ई-33, सेक्टर A 5/6 ट्रोनिका सिटी, यू.पी.एस.आई.डी.सी औद्यगिक क्षेत्र, लोनी जिला- गाजियाबाद- 201102 (उ.प्र.) फोन- 0120-2696090

अनुक्रम

आरंभिक

गांधी के 150 साल 4

वैचारिकी

गांधी और उनकी समसामयिक प्रासंगिकता/रजनीश कुमार शुक्ल 6

महात्मा गांधी के विचारों की आधार भूमि है श्रीमद्भगवद्गीता/ गिरीश्वर मिश्र 11

हिंद स्वराज और कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का पुनर्पाठ/अंबिका दत्त शर्मा 19

'अछूत' में समाया गांधी दर्शन/नमिता निंबालकर 35

गांधी की पत्रकारिता और राष्ट्रीयता/कमल किशोर गोयनका 43

हिंदी साहित्य में गांधीजी की अनुगूंज/शिवदयाल 60

गांधी विचार में मानव की अवधारणा/रामजी सिंह 69

गांधीजी की हत्या : सरस्वती की चीत्कार/अवधेश प्रधान 79

गांधी : जीवन एक अकिंचन इच्छा की विराट फलश्रुति/ओम निश्चल 92

गांधीजी : भारतीय साहित्यकारों के महागुरु और प्रेरणा-स्रोत/जी.गोपीनाथन 103

गांधीवाद : सुब्रह्मण्य भारती एवं रामलिंगम पिल्लै के विशेष संदर्भ/एन. लक्ष्मी अय्यर 107

गांधी चिंतन : भाषा, संस्कृति एवं साहित्य/श्रद्धानंद 113

राम और रामायण : गांधी दृष्टि/मनोज कुमार/सुशील कुमार त्रिपाठी 123

गांधी के नैतिक मूल्यों का छायावादोत्तर हिंदी काव्य पर प्रभाव/श्रीनिवास पांडेय 135

धरोहरः गांधी-विदेशी साहित्य में.../उमाकांत मालवीय 141

गांधी की दृष्टि में सौंदर्य/सुधांशु शेखर 151

नयी तालीम का भविष्य/ऋषभ कुमार मिश्र 161

गांधी के 150 साल

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से प्रकाशित 'बहुवचन' का यह अंक क्यों? यह अंक इसलिए कि विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल ने इच्छा व्यक्त करते हुए कहा कि इस बार गांधी के 150 वर्षगांठ पर हम क्यों न 'बहुवचन' का एक विचार प्रधान अंक प्रकाशित करें और हिंदी साहित्य व समाज पर गांधी के विचारों का क्या असर पड़ा इसकी पड़ताल करें। इसी कड़ी में प्रस्तुत है 'साहित्य में गांधी और गांधी साहित्य' की पड़ताल करता 'बहुवचन' का यह अंक।

गांधी को विदा हुए सात दशक हो गया लेकिन उनके विचार आज भी एक मशाल की भांति समाज का पथ प्रदर्शन करने के लिए उपलब्ध हैं। गांधी हमारे सामने एक वैश्विक व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं। कई वैश्विक राजनेता उनके दिखाए रास्ते पर चले। वे एक ऐसे चिंतक थे कि उनके चिंतन की सीमा असीमित थी, मौलिक थी दूर-दृष्टिपूर्ण थी। उनके विचारों की जद में समाज का अंतिम जन भी समाया हुआ था। अपने जीवनकाल में गांधी के कई रूप रहे। वे अधिवक्ता, सत्याग्रही, समाज-सुधारक कांग्रेस कार्यकर्ता और पत्रकार की भूमिकाओं में समाज को एक दिशा देने का काम करते रहे। यह गांधी ही थे जिन्होंने आजादी की लड़ाई को अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य बनाया- और जो इरादा किया उसे पूरा करने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। यही वजह थी कि गांधी जन- जन के मन को छूने लगे और जनता उनका साथ देने को निकल पड़ी। आजादी का सपना परिणिति तक पहुंचा जहां अंततः अंग्रेजों को हमारा देश छोड़कर भागना पड़ा। इस यात्रा में सत्य, अहिंसा, नैतिकता, सत्याग्रह, पत्रकारिता उनके हथियार रहे। गांधी की विराट शख्सियत को सीमित शब्दों में परिभाषित कर पाना किसी भी व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन है। ऐसे जननायक शताब्दियों में जन्म लेते हैं और उनका प्रभाव समाज पर लंबे काल खंड तक रहता है ।

वे अपने विचारों के माध्यम से देश की तसवीर स्वदेशी अपनाकर और गांवों का विकास कर बदलना चाहते थे। महात्मा गांधी भारतवर्ष को आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। उन्होंने माना था कि भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है, इसलिए उनका दृष्टिकोण था कि भारत को

विकास-मार्ग पर ले जाने के लिए 'ग्राम-विकास' प्राथमिक आवश्यकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सर्वोपरि स्थान दिया था। उनकी दृष्टि में इस अर्थव्यवस्था का आधार था- 'ग्रामीण जीवन का उत्थान'। इसीलिए, गांधीजी ने बड़े-बड़े उद्योगों को नहीं, वरन् छोटे-छोटे उद्योगों (कुटीर उद्योगों) को महत्व प्रदान किया, जैसे-चरखे द्वारा सूत कताई, खद्दर बुनाई तथा आटा-पिसाई, चावल-कुटाई और रस्सी बटना आदि।

'हिंद स्वराज' में उन्होंने विशाल उद्योगों एवं मशीनीकरण की कड़ी भर्त्सना की है। चरखे को वह भौंडेपन का नहीं, वरन् श्रम की प्रतिष्ठा का प्रतीक समझते थे। चरखे पर सूत कातने में 'चित्त की एकाग्रता' बनाने की आवश्यकता पड़ती है। सन् 1923 ई. में उन्होंने 'अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ' की भी स्थापना की थी, जिसका मूल उद्देश्य था-घरेलू तथा ग्रामीण उद्योगों को उन्नत बनाना। सौ खंड़ों में प्रकाशित और फैला गांधी वांड्मय उनके विशाल चिंतन की गवाही देता है और पथ प्रदर्शन भी करता है ।

गांधी की 150वीं जयंती पर हम कह सकते हैं कि यदि राजनीति और भारतीय समाज उनके दिखाए रास्ते पर चलता तो आज भारत की तसवीर बहुत ही अलग होती और हमारे गांवों से शहरों की ओर होने वाला पलायन भी न होता। गांधी व्यक्ति के आचरण में नैतिकता और आदर्शों का समावेश देखना चाहते थे जिसे उन्होंने अपने खुद के जीवन में पहनावे और भोजन से लेकर आचरण तक में उतारा था। गांधीजी चरखा कातने से लेकर, कपड़े धोने तक के दर्जनों छोटे-बड़े काम खुद किया करते थे। वे परोसे गए भोजन की समीक्षा या कमी की चर्चा को एक किस्म की हिंसा मानते थे। वे भौतिक वस्तुओं के संग्रह को एक पागल दौड़ मानते थे। आज भारतीय समाज और युवा पीढ़ी को गांधीजी की समृद्ध विरासत को समझने और गांधी चिंतन से प्रेरणा लेने की जरूरत है यही गांधीजी को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी ।

'बहुवचन' के इस अंक में सभी लेखकों ने गांधी के अलग-अलग पहुलुओं पर अपनी बात रखी है यह हमारे लिए प्रसन्नता का विषय है। अंक के सभी विद्वान लेखकों के प्रति आभार कि उनका सहयोग पत्रिका को मिला। हमारे कुलपति महोदय जिनके चिंतन में गांधी समाए हुए हैं, उन्होंने मेरे निवेदन को स्वीकार कर पत्रिका के लिए लेख लिखा, उनके प्रति आभार। अंक आप सभी को कैसा लगा यह पत्र लिखकर, ई-मेल के जरिए जरूर अवगत कराने का कष्ट करें। आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा।

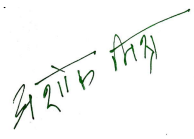

गांधी और उनकी समसामयिक प्रासंगिकता

रजनीश कुमार शुक्ल

गांधी औद्योगिक सभ्यता और उस सभ्यता के दुष्परिणामों की घोषणा करने वाले दुनिया के पहले पोस्ट मॉडर्निस्ट हैं। आधुनिक सभ्यता के खात्मे की भवितव्यता के साथ, उसके नकार से ही मानवता की सभ्यता स्थापित हो सकती है, इस विचार के भी प्रतिपादक हैं। 'हिंद स्वराज' में प्रतिपादित इस दृष्टि पर एकदम चर्चा नहीं हुई है। कोई तो कारण रहा होगा कि गांधी प्रथम विश्वयुद्ध में जहां विश्वयुद्ध के साथ हैं वहीं द्वितीय विश्वयुद्ध में विश्वयुद्ध के खिलाफ हैं। दोनों की परिस्थितियों में कोई ऐसा अंतर नहीं है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय भी बहुत सारी ऐसी परिस्थितियां थीं कि भारत को आजादी मिल जानी चाहिए थी और वे परिस्थितियां वैसी ही थीं जैसी कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय। इसका ठीक मूल्यांकन तब हो सकेगा जब यह समझ लिया जाए कि गांधी अंग्रेजों की कमजोरी का फायदा उठाने और धोखे से भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली जाए, इसके लिए वह द्वितीय विश्वयुद्ध के खिलाफ नहीं थे बल्कि वे द्वितीय विश्वयुद्ध के खिलाफ इसलिए थे क्योंकि पहली बार मनुष्य पर मशीन भारी पड़ी थी, पहली बार दुनिया ने युद्ध के क्षेत्र में मशीन द्वारा निर्मित अनैतिकता का और विनाश का तांडव देखा था।

पहली बार दुनिया ने ऐसा युद्ध देखा जिसमें कुछ लोगों की अंगुलियों के नाच जाने के कारण लाखों लाख लोग क्षण मात्र में नष्ट हो सकते हैं। गांधी इसकी संभावना को तब आकलित करते हैं जब आधुनिक सभ्यता के विरुद्ध कोई सोच भी नहीं रहा था। वे 1909 में पश्चिम की सभ्यता को आसुरी सभ्यता और राक्षसी सभ्यता के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इस आलोक में गांधी की सभ्यता दृष्टि का मूल्यांकन नहीं हुआ है। जब गांधी की सभ्यता सृष्टि का ऐसा मूल्यांकन नहीं हुआ तो समाज और संस्कृति की जो गांधी सृष्टि है वह ठीक से समझी नहीं जा सकती है।

जहां तक स्वराज विषय है, तो स्वराज पर बहुत सारी चर्चा हुई है किंतु एक बात अधूरी रह गई है कि स्वराज और रामराज में गांधी तो कोई अंतर नहीं करते हैं बार-बार उन्होंने इस

बात को कहा है (क्योंकि देश में उस समय हिंदू-मुस्लिम समस्या खड़ी होने लगी थी) कि अगर किसी को रामराज शब्द बुरा लगता है तो मैं धर्मराज कहूंगा अर्थात् गांधी रामराज और धर्म राज के बीच भेद नहीं कर रहें हैं। गांधी जब रामराज कह रहे हैं तो वह विश्व राजनीति का प्रत्यय नहीं है। गांधी स्वराज और रामराज की एकाकारिता की बात कर रहे हैं तो वह राजनैतिक आजादी मात्र नहीं है। 22 मई 1921 को गुजराती 'नवजीवन' में उन्होंने लिखा था कि मैं रामराज का अर्थ स्वराज, धर्मराज और लोकराज समझता हूं। 1925 में उन्होंने यह भी कहा कि रामराज स्त्रियों की सहभागिता के बिना संभव नहीं है। ध्यान देने की बात है कि ब्रितानी संसदीय लोकतंत्र में स्त्रियों को मताधिकार 1927 में मिला था। 1925 में गांधी रामराज में स्त्री सहभागिता का उल्लेख करते हुए एक प्रकार से वे पूरे पश्चिम की सभ्यता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रहे हैं। वह रामराज में स्त्रियों की सहभागिता के विषय के द्वारा भारत में स्त्रियों की स्थिति की बात नहीं कर रहे हैं क्योंकि वह राजनैतिक सहभाग व सशक्तिकरण की बात कर रहे हैं और ये सवाल भारत में नहीं यूरोप में खड़े थे। भारत में तो उन्हें 1917 में ही सब मिल गया था और बिना किसी के लड़ाई के मिला था। जब पहली बार मताधिकार आया तो स्त्रियों के मताधिकार के साथ आया। वे स्त्री सहकार की बात कर रहे हैं और कह रहे हैं कि इनके बिना रामराज्य असंभव है। स्त्रियों की सहभागिता के बिना यदि गलती से रामराज्य जैसी दिखने वाली कोई चीज आ भी गई तो वह निकम्मा रामराज्य होगा और निकम्मेपन से गांधी को कितनी घृणा है, यह बताने की जरूरत नहीं है। वहीं पर वे दूसरी बात भी कहते हैं कि अगर कोई चीज रामराज के आने में सबसे बड़ी बाधक है तो वह है जाति व्यवस्था अर्थात् छुआ-छूत।

26 फरवरी 1947 को जब भारत की आजादी आसन्न है तारीख मुकर्रर हो चुकी है, तब भी वे कहते हैं कि रामराज आएगा, ऐसा गांधी के मन में भी विश्वास है। सारी विपरीत परिस्थितियों के बाद भी इसी कारण वे कह पाते हैं कि रामराज का तात्पर्य ईश्वरीय राज्य है, परमात्मा का राज्य है। परमात्मा का राज, धर्मराज, लोकराज, रामराज और स्वराज इन चारों की एकाकारिता को प्रतिपादित करने वाले उस कालखंड में एक मात्र राजनैतिक नेता, संत, आध्यात्मिक पुरुष, समाज सुधारक, लोक संग्रह व्यक्तित्व के रूप में कोई दिखाई देता है तो वह गांधी ही हैं। जब इस रूप में गांधी का मूल्यांकन करेंगे तो गांधी की प्रासंगिकता समझ में आती है अन्यथा गांधी तो अपने को ही अप्रासंगिक सिद्ध कर चुके हैं। 1939 में महादेव भाई से चर्चा करते हुए, जमनालाल बजाज से चर्चा करते हुए उन्होंने साफ-साफ कहा था कि हिंद और शायद हिंद के किसी हिस्से में 30 वर्ष बीत जाने के बाद भी, मेरे निरंतर यत्न के बाद भी, कहीं भी हिंद-स्वराज को सफलता प्राप्त नहीं हुई है। लोगों ने अहिंसा का पालन करने की थोड़ी बहुत कोशिश शुरू की है लेकिन वास्तव में अभी अहिंसक समाज की निर्मिति नहीं हुई है।

गांधी का लक्ष्य अहिंसा पर आधारित सभ्यता की स्थापना करना है। अहिंसा पर आधारित सभ्यता ही संपूर्ण मानवता की रक्षा का आधार हो सकती है। जो सभ्यता शोषण पर आधारित होगी, युद्ध पर आधारित होगी, हिंसा पर आधारित होगी और जो सभ्यता दूसरे

के खात्मे के द्वारा अपने विकास की अवधारणा पर आधारित होगी, वह मनुष्य के लिए, मानवता के लिए, इस धरती के लिए और यदि धरती के परे भी कोई जीवन है तो उसके लिए भी खतरनाक होने वाली सभ्यता है। आज जब हम त्रासद पर्यावरण संकट की ओर जा रहे हैं, इसका एक दूसरे पर पड़ने वाले असर की बात करें तो यह संपूर्ण सृष्टि एक दूसरे की आश्रितता की है तो, इस ब्रह्माण्ड पर भी उसका असर पड़ता है।

गांधी जब आधुनिक सभ्यता पश्चिमी हवा की निस्सारता की बात कर रहे हैं, औद्योगिक सभ्यता की खिलाफत कर रहे हैं, गांधी जब मशीनों की खिलाफत कर रहे हैं तो, वे मनुष्य के मन और मस्तिष्क के मशीनीकरण के खिलाफ हैं। जब मशीनों के खिलाफ बोल रहे हैं तो उस सभ्यता के खिलाफ बोल रहे हैं जो आर्केमेडीज, डार्विन और साइमन को मिलाकर बनती है, जो मेकेनिकल कंस्ट्रक्शन थियरी की बात करती है, जो समाज एक उद्यम (Society is an enterprise) की बात करती है, जो जैविक विकास (Biological Evolution) की बात करती है, जिसके लिए मनुष्य और पशु के बीच मात्र मात्रात्मक और प्रक्रियात्मक भेद हैं, जिसमें मूल्यों के लिए कोई जगह नहीं बनती है। इन तीनों को मिलाकर जो सभ्यता बनती है वह यांत्रिक, व्यापारिक और पाशविक सभ्यता है और इस यांत्रिक, व्यापारिक और पाशविक सभ्यता का विरोध करते हुए गांधी उसे आसुरी सभ्यता कहते हैं। उसके विरोध में गांधी रामराज, स्वराज और लोकराज को धर्म राज्य के रूप में एकाकार करके प्रस्तुत कर रहे हैं, तो उसके पीछे भारत की परंपरा के अनेक उदाहरण हैं।

सोने की लंका से अधिक भौतिक समृद्धि की किसी राज व्यवस्था की मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता है। उनकी सभ्यता के अनुसार प्रतिपादित ईमानदारी और निष्ठा से श्रेष्ठ सभ्यता की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वह राज व्यवस्था सबसे ईमानदार और लंका के प्रति सर्वाधिक समर्पित लोगों की राज-व्यवस्था, समाज व्यवस्था है। भौतिक दृष्टि से मनुष्य जो कुछ भी सर्वोत्तम सोच सकता है उसकी प्राप्ति ही समाज व्यवस्था है लेकिन उसको भी मानवीय मूल्यों के रथ से, मानवीय मूल्यों के आयुध से करुणा, सत्य, अहिंसा, त्याग, शौच, इंद्रीय-निग्रह इन आयुधों से, जो मनुष्य में परिवर्तन के आयुध हैं, मनुष्य को दैवीय गुणों से संपन्न करने के आयुध हैं, उनसे विजित किया जाता है। इस युद्ध कथा के बाद जो उत्पन्न हुआ रामराज है गांधी बार-बार उसी को लोकराज, उसी को धर्मराज, उसी को स्वराज कहते हैं। आखिर गांधी भी उसी बात को कहते हैं जो तुलसी भी कह रहे हैं- *'दैहिक दैविक भौतिक तापा॥ राम-राज सपनेहूं नहिं व्यापा॥'* लेकिन उसमें गांधी रामराज की बात करते हुए जिसको कह रहे हैं वह हमें याद नहीं रहा। याद इसलिए नहीं रहा क्योंकि उसकी जो अगली चौपाई है जब तक उसको याद नहीं करते हैं तब तक गांधी का रामराज स्पष्ट नहीं होता है। *सब नर करहिं परस्पर प्रीती॥ चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥* स्वधर्म, श्रुति, रीति और नीति, लोकमत, साधुमत, शास्त्रमत और राजनय, इन सब पर आधारित मनुष्य के श्रेष्ठतम गुणों पर अधिष्ठित कोई समाज व्यवस्था बनती है, कोई सभ्यता बनती है तो उस सभ्यता के आधार पर ही रामराज

की संस्कृति का विधान होता है इसलिए गांधी बार-बार कहते हैं कि हमारे निरंतर प्रयत्नों के बाद भी वह स्थिति भारत में आने को शेष है लेकिन फिर भी हिंद-स्वराज की यह जो अवधारणा है दुनिया भले चाहे इसको यूटोपिया कहे मैं इसमें एक शब्द भी बदलने को तैयार नहीं हूं।

संक्षेपतः मशीन से मनुष्य को पशु बनाने की जो सभ्यता विकसित हुई है उस सभ्यता के खिलाफ खड़ा हुआ कोई व्यक्तित्व दिखता है तो वह गांधी ही है। गांधी को पश्चिम की भी उतनी ही समझ थी, जितनी पूरब की थी। इसलिए गांधी समन्वय की नहीं, संपूर्ण परिवर्तन तथा देश के धर्म की सभ्यता की वकालत करने वाले उत्तर आधुनिक हैं। जब तक हम गांधी के उपकरणों की चर्चा नहीं करेंगे तब तक यह ध्यान में नहीं आएगा कि गांधी द्वारा विकसित साधनों का प्रोटोटाइप वह है जो 1857 में ब्रितानी हुकूमत के विरुद्ध भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के कुचले जाने के बाद उस आंदोलन की आग जलती रहे, समाज में दासता के प्रतिरोध का तत्व बना रहे, इसके लिए सद्गुरु राम सिंह के नेतृत्व में कूका संतों ने विदेशी बहिष्कार और संघर्ष का जो रास्ता अपनाया था कि हाथ से काते हुए वस्त्र पहनेंगे, अंग्रेजी स्कूलों में बच्चों को नहीं पढ़ाएंगे, अंग्रेजी पोस्ट-ऑफिस का व्यवहार नहीं करेंगे, अंग्रेजी न्यायालयों का बहिष्कार करेंगे, अपनी न्याय-व्यवस्था को स्थापित करेंगे, अंग्रेजी-भाषा का बहिष्कार करेंगे और निरंतर अहिंसक प्रतिरोध के द्वारा इस सभ्यता को और इस राज व्यवस्था को खत्म करने के सगुण यत्न स्वराज की प्राप्ति तक संघर्ष करते रहेंगे का भाव जगाया था।

गांधी वहीं से अपने असहयोग आंदोलन के सूत्र को लेते हैं। गांधी बनारस से अपने आंदोलन के सूत्र को लेते हैं जहां वारेन हेस्टिंग्स को भी जन आंदोलन के कारण बनारस पर कब्जा करने के बाद बाहर जाना पड़ा था और हफ्तों तक ईस्ट-इंडिया कंपनी की सेना नागरिक प्रतिरोध के नाते प्रवेश करने की स्थिति में नहीं आई। गांधी बार-बार जब भारतीय परंपरा के अंतर्गत स्वधर्म, स्वराज और मनुष्य के गुणों की बात कर रहे हैं। रामराज को तुलसी के रामराज के शब्दों में समझाने की कोशिश कर रहे हैं तो इस सबका अवगाहन करते हुए गांधी आगे बढ़ते रहे हैं। गांधी के जाने के बाद हमने गांधी की सारी प्रक्रिया का निषेध करके एक रेडिकल गांधी बनाने की कोशिश की है। गांधी रेडिकल है तो दुनिया में सब कुछ रेडिकल हो जाएगा। गांधी निरंतर प्रयोग और प्रयोग के द्वारा श्रेष्ठतम शुभ की संभावनाओं की तलाश और उनके रंच मात्र अनुभव के साथ उसकी स्वीकृति की प्रक्रिया है, इसलिए वह प्रोटोटाइप पर भी नहीं चलता है और ब्लू-प्रिंट पर भी नहीं चलता है।

गांधी भारतीयता की तप साधना की सभ्यता और तप साधना पूर्ण मनुष्य के जीवन की चिरंतन प्रक्रिया के प्रतिपादक हैं। इस दृष्टि से जब हम विचार करेंगे तब समाज, संस्कृति और स्वराज्य के संदर्भों में भारत में या दुनिया में गांधी की समकालीन प्रासंगिकता क्या है, यह समझ में आएगी, अन्यथा गांधी स्वयं ही अपने को 1942 के आंदोलन के दबने के बाद से अप्रासंगिक सिद्ध करते हैं। और लिनलिथगो को लिखी गई चिट्ठियों में तो जिस प्रकार प्रायश्चित गांधी ने

किया है उसके पढ़ने के बाद समझ में आता है कि वस्तुतः हर समय नई संभावनाओं की तलाश गांधी हैं। भास्वर रूप में, प्रतीक के रूप में भारतीयता, भारतीय संस्कृति, भारत में जो सनातन सभ्यता सृष्टि, संस्कृति दृष्टि रही है और निरंतर नवीन संभावनाओं की प्राचीन मूल्यों पर आधारित संस्कृति दृष्टि है, उसका कोई प्रामाणिक प्रतिपादक पिछले दो सौ वर्षों में दिख रहा है तो वह गांधी ही हैं। इसलिए गांधी भारत के लिए प्रासंगिक हैं। पूरी दुनिया को अहिंसा-मूलक सभ्यता के द्वारा बचाया जा सकता है, अहिंसक बनाया जा सकता है, स्थायी प्रगति के पथ पर बढ़ाया जा सकता है। यही एकमात्र विकल्प पूरी दुनिया के लिए है, कोई दूसरा रास्ता नहीं है इसलिए पूरी दुनिया के लिए गांधी प्रासंगिक हैं।

●

✶ लेखक संस्कृति-चिंतक एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति हैं।

महात्मा गांधी के विचारों की आधार भूमि है श्रीमद्भगवद्गीता

गिरीश्वर मिश्र

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नाम के साथ 'सत्य' और 'अहिंसा' के विचार पर्यायवाची जैसे हो गए हैं। जैसा कि सर्वविदित है गांधीजी ने अपने सिद्धांत और कर्म में इन अमूर्त और असाध्य से लगने वाले विचारों को व्यावहारिक स्तर पर उतारा और अपने निजी जीवन के साथ ही सार्वजनिक जीवन में भी बड़ी संजीदगी के साथ प्रतिष्ठित किया। वे अपने सहयोगियों को भी इसी मार्ग पर ले चलने की चेष्टा करते रहे। मनसा, वाचा कर्मणा हर तरह से इन विचारों या सिद्धांतों के लिए और इनके ही द्वारा उन्होंने अपने समय की प्रबल साम्राज्यवादी शक्ति के साथ कठिन राजनीतिक लड़ाइयां लड़ीं और उनमें सफलता भी प्राप्त की। इन युगांतरकारी घटनाओं पर गौर किया जाए तो पता चलता है कि इनके प्रति गांधीजी की अकाट्य निष्ठा के मूल स्रोतों तों में 'श्रीमद्भगवद्गीता' निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण है जो महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत का एक प्रमुख अंश है। गीता के साथ उनकी निकटता पनपने की कहानी भी बड़ी रोचक है। गांधीजी के जीवन में गीता की उपस्थिति किस तरह केंद्रीय बनी और उसके क्या परिणाम हुए यह जानना आज के विकट समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गया है जब अहिंसा और असत्य की दुष्प्रवृत्तियां तेजी से सिर उठा रही हैं। यह समझना इसलिए भी जरूरी हो गया है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी स्वर और अध्यात्म को अप्रासंगिक बना रहे हैं। इन सबके बीच चौंधियाया आधुनिक भारतीय मन पंथनिरपेक्ष (सेकुलर) होने की कवायद में व्यक्ति, समाज और पर्यावरण के प्रश्नों को निरा उपभोग और उपयोगिता की दृष्टि से देखना लाजमी मान बैठा है तथापि विवेक की पुकार है कि उदात्त मानवता के धूमिलाते स्वप्न को संजोया जाए और मानवीय रचनात्मक कल्पनाशीलता को उकसाया जाए।

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रति आकर्षण का आरंभ

गांधीजी अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में बताते हैं कि गीता से उनका पहला साक्षात्कार इंग्लैंड में कुछ थियोसोफिस्ट मित्रों द्वारा एड्विन अर्नाल्ड गीता के अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से हुआ। उन लोगों ने अपने साथ संस्कृत में गीता पढ़ने के लिए गांधीजी को न्योता

दिया। इस अवसर के पहले वे मूल संस्कृत या गुजराती में गीता को नहीं पढ़े थे। गीता के साथ इस आकस्मिक संपर्क ने गांधीजी के जीवन की धारा ही बदल डाली। इस तरह की पढ़ाई के क्रम में गीता के दूसरे अध्याय के अंतिम श्लोकों में से निम्नलिखित ने उनके मन पर बड़ा गहरा असर डाला :

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणष्यति॥

गांधीजी के शब्दों में 'इन श्लोकों की भनक मेरे कान में गूंजती ही रही। उस समय मुझे लगा कि श्रीमद्भगवद्गीता अमूल्य ग्रंथ है। यह मान्यता धीरे-धीरे बढती गई और आज तत्वज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूं। निराशा के समय में इस ग्रंथ ने मेरी अमूल्य सहायता की है'। धीरे-धीरे गीता पर उनका प्रेम और श्रद्धा निरंतर बढती रही। उन्होंने महसूस किया कि उसकी गहरा में उतरने की जरूरत है। उन्होने अनुवादों की सहायता से मूल संस्कृत में गीता के अभिप्राय को समझने की कोशिश शुरू की और नित्य एक दो श्लोक कंठस्थ करने का निश्चय किया। अपनी आत्मकथा में वे बताते हैं कि 'प्रातः दातून और स्नान के समय का उपयोग गीता के श्लोक कंठस्थ करने में किया। दातून में पंद्रह और स्नान में बीस मिनट लगते थे। खड़े-खड़े करता था। सामने की दीवार पर गीता के श्लोक लिखकर चिपका देता था और आवश्यकतानुसार उन्हें देखता तथा घोटा जाता था। ये घोटे हुए श्लोक स्नान करने तक पक्के हो जाते थे। इस बीच पिछले कंठस्थ किए हुए श्लोकों को भी मैं एक बार दोहरा जाता था। इस तरह तेरह अध्याय तक कंठस्थ करने की बात मुझे याद है।

आगे गांधीजी एक रहस्य बताते हुए महत्वपूर्ण आत्म-स्वीकार साझा करते हैं : 'मेरे लिए वह पुस्तक आचार की एक प्रौढ़ मार्गदर्शिका बन धार्मिक कोश का काम देने लगी। उसके अपरिग्रह, सद्भाव आदि शब्दों ने मुझे पकड़ लिया। समभाव का विकास कैसे हो? उसकी रक्षा किस प्रकार की जाए? घर जलाकर तीर्थ करने जाऊं? तुरंत ही उत्तर मिला कि घर जलाए बिना तीर्थ किया ही नहीं जा सकता। गांधीजी कहते हैं कि 'यहां अंग्रेजी कानून ने मेरी मदद की ट्रस्टी शब्द का अर्थ विशेष रूप से समझ में आया। ट्रस्टी के पास करोड़ों रुपयों के रहते हुए भी उनमें की एक भी पाई उसकी नहीं होती। मुमुक्षु को ऐसा ही बरताव करना चाहिए। यह बात मैंने गीताजी से समझी। मुझे यह दीपक की तरह स्पष्ट दिखाई दिया कि अपरिग्रही बनने में, समभावी होने में हृदय परिवर्तन आवश्यक है'। गांधीजी को गीता में मानों अमूल्य रत्न मिल गया था। गीता का दूसरा अध्याय खास तौर पर स्थितप्रज्ञ की अवधारणा और बारहवें अध्याय में भक्त का विचार ये दोनों उनके मन में बैठ गए। उन्हें जीवन जीने का सूत्र मिल गया था।

इसका असर यह हुआ कि उन्होंने रेवाशंकर भाई को इन आशय का पत्र लिख भेजा कि 'बीमे की पालिसी बंद कर दें। कुछ रकम वापस मिले तो ले लें। न मिले तो भरे हुए पैसों को

गया समझ लें। बच्चों की और स्त्री की रक्षा उन्हें और हमें पैदा करने वाला ईश्वर करेगा। पितातुल्य भाई को लिखाः 'आज तक मेरे पास जो बचा वह मैंने आपको अर्पण किया। अब मेरी आशा आप छोड़ दीजिए। अब जो बचेगा सो यहीं हिंदुस्तानी समाज के हित में खर्च होगा।' गीता में वर्णित स्थित प्रज्ञ की भावना के अनुसार गांधीजी ने 1906 से ही ब्रह्मचर्य का पालन शुरू किया था। उनके विचार में 'शारीरिक अंकुश से ब्रह्मचर्य का आरंभ होता है परंतु शुद्ध ब्रह्मचर्य में विचार की मलिनता भी न होनी चाहिए। संपूर्ण ब्रह्मचारी को तो स्वप्न में भी विकारी विचार नहीं आते और, जब तक विकार-युक्त स्वप्न आते रहते हैं तब तक यह समझना चाहिए कि ब्रह्मचर्य बहुत अपूर्ण है।'

आहार में संयम को लेकर गांधीजी कहते हैं 'मेरा अनुभव है कि उपवास आदि से मुझ पर तो आरोग्य और विषय नियमन की दृष्टि से बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उपवास के दिनों में विषय को संयत करने और स्वाद को जीतने की सतत् भावना बनी रहने पर ही उसका शुभ परिणाम निकल सकता है।' गीताजी के दूसरे अध्याय का यह श्लोक यहां बहुत विचारणीय है :

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तते।

उपवासी के विषय उपवास के दिनों में शांत होते हैं; पर उसका रस नहीं जाता। रस तो ईश्वर-दर्शन से ही ईश्वर-प्रसाद से ही शांत होता है। तात्पर्य यह कि संयमी के मार्ग में उपवास आदि एक साधन के रूप में हैं, किंतु ये ही सब कुछ नहीं हैं और यदि शरीर के उपवास के साथ मन का उपवास न हो, तो उसकी परिणति दंभ में होती है और वह हानिकारक सिद्ध होता है। अपनी आत्मकथा के अंतिम खंड में गांधीजी जीवन के प्रति धर्म प्रधान दृष्टिकोण प्रतिपादित करते हैं जिसमें सत्य की प्रतिष्ठा है। वे कहते हैं : 'ऐसे व्यापक सत्यनारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए जीव मात्र के प्रति आत्मवत् प्रेम की परम आवश्यकता है और, जो मनुष्य ऐसा करना चाहता है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि सत्य की मेरी पूजा मुझे राजनीति में खींच लाई है। धर्म का राजनीति के साथ कोई संबंध नहीं है, वह धर्म को नहीं जानता, ऐसा कहने में मुझे कोई संकोच नहीं होता, और न ऐसा कहने में मैं अविनय करता हूं।'

बिना आत्म-शुद्धि के जीवमात्र के साथ ऐक्य सध नहीं सकता। आत्मशुद्धि के बिना अहिंसा-धर्म का पालन सर्वथा असंभव है। अशुद्ध आत्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ है। अतएव जीवन मार्ग के सभी क्षेत्रों में शुद्धि की आवश्यकता है। यह शुद्धि साध्य है; क्योंकि व्यष्टि और समष्टि के बीच ऐसा निकट का संबंध है कि एक की शुद्धि अनेकों की शुद्धि के बराबर हो जाती है लेकिन मैं प्रति क्षण यह अनुभव करता हूं कि शुद्धि का मार्ग विकट है। शुद्ध बनने का अर्थ है मन से, वचन से और काया से निर्विकार बनना, राग, द्वेषादि से रहित होना। इस निर्विकारता तक पहुंचने का प्रतिक्षण प्रयत्न करते हुए भी मैं पहुंच नहीं पाया हूं इसलिए

लोगों की स्तुति मुझे भुलावे में नहीं डाल सकती उलटे, यह स्तुति प्रायः तीव्र वेदना पहुंचाती है। मन के विकारों को जीतना संसार को शास्त्र युद्ध से जीतने की अपेक्षा मुझे अधिक कठिन मालूम होता है। हिंदुस्तान आने के बाद भी मैं अपने भीतर छिपे हुए विकारों को देख सका हूं। शर्मिंदा हुआ हूं किंतु हारा नहीं हूं। सत्य के प्रयोग करते हुए मैंने आनंद लूटा है और आज भी लूट रहा हूं लेकिन जानता हूं कि अभी मुझे विकट मार्ग तय करना है। इसके लिए मुझे शून्यवत बनना है। मनुष्य जब तक स्वेच्छा से अपने को सबसे नीचे नहीं रखता, तब तक उसे मुक्ति नहीं मिलती। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है उसी नम्रता के लिए प्रार्थना करते हुए और उसके लिए संसार की सहायता की याचना करते हुए इस समय तो मैं इन प्रकरणों को बंद करता हूं।

महात्मा गांधी ने गीता को निस्वार्थ सेवा का निष्पादन करने वाले ग्रंथ के रूप में देखा था। उनके विचार में 'कर्म करते समय यदि त्याग का भाव न हो तो उससे बंधन उपजता है। त्याग का अर्थ है दूसरों का लाभ अर्थात सेवा। यदि सेवा सेवा-भाव से की जाए तो कोई बंधन नहीं होता अतः कर्म सेवा भाव से करना चाहिए। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के साथ ही त्याग को पैदा किया और मनुष्यों से एक दूसरे की सेवा का निर्देश दिया। सभी प्राणियों में ईश्वर भाव देखो। उनकी सेवा ही ईश्वर सेवा है। गांधीजी की सोच थी कि सेवा का क्षेत्र अंततः विस्तृत होकर समस्त विश्व को आत्मसात कर लेगा। निःस्वार्थ सेवा द्वारा ही हम अलगाव की पीड़ा सह सकते हैं। सार्वभौम आत्म की अनुभूति के साथ हम किसी को भी कष्ट नहीं देंगे। जब मन, वचन और कर्म में यह भाव आ जाएगा तो हम भक्ति भाव से आजीवन सेवा करते रहेंगे।

सत्याग्रह का आविष्कार

गांधीजी को अंग्रेजी उपनिवेशी राज द्वारा किए जा रहे अत्याचारों का पता तो पहले से था परंतु इंग्लैंड में आकर उन्होंने अंग्रेजी परंपराओं की अच्छाई को भी देखा और उन्हें लगा कि निर्भय होकर वह अपनी बात कह सकते हैं और उनमें एक नई राजनैतिक चेतना का विकास हुआ। वह थियोसोफिकल सोसाइटी में शामिल हुए और ईसा मसीह के पर्वत पर व्यक्त उपदेशों (माउंट सर्मस) से भी प्रभावित हुए। जिसे उन्होंने बाद में हिंदू धर्म के अहिंसा के विचार से जोड़ दिया और 'सत्याग्रह' की अवधारणा का विकास किया जिसमें सत्य और न्याय के लिए सक्रिय चेष्टा भी सम्मिलित थी। उल्लेखनीय है कि अहिंसा का विचार भारत-भूमि पर हजारों वर्षों से विद्यमान था। विशेष रूप से बौद्ध और जैन मतों में यह बड़ी प्रमुखता से स्थापित था। गीता में गांधीजी को वह आशा और सांत्वना मिली जो कहीं अन्यत्र नहीं थी। गीता में कृष्ण ने युद्धविरत अर्जुन को युद्धरत किया था साथ ही गीता में ईश्वर की सर्वत्र उपस्थिति का भी भाव प्रखर रूप से विद्यमान था जिसे गांधीजी ने हृदय से ग्रहण किया।

अनासक्ति और त्याग का विचार

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित अनासक्ति के साथ कर्म करने के विचार की व्यावहारिकता को गांधीजी ने पहचाना और समझा। उन्होंने अनुभव किया कि जब आदमी परिणाम पर ज्यादा

ध्यान देता है और उसके बारे में निरंतर सोचता रहता है तो वह कर्म-पथ से विचलित होने लगता है। वह अधीर हो उठता है। फिर उसे क्रोध आता है। ऐसे में वह तरह-तरह के गलत काम भी कर बैठता है। इंद्रियों को समर्पित होकर वह ठीक ढंग से अपना कार्य नहीं कर पाता है। गांधीजी के शब्दों में 'जो अपना कार्य छोड़ देता है गिरता है (वह अधम कोटि का व्यक्ति होता है) और जो परिणाम त्याग देता है ऊपर उठता है' परंतु फल-त्याग का यह अर्थ कदापि नहीं है कि व्यक्ति फल से पूर्णतः तटस्थ रहे। उसे प्रत्येक कार्य के आगामी परिणाम के बारे में भी जानना चाहिए। ऐसे ही उस कार्य को सिद्ध करने के उपायों के बारे में तथा उस हेतु अपेक्षित क्षमता के बारे में भी जानकारी होनी चाहिए। इस तरह से तैयार होकर व्यक्ति फल की इच्छा न रखते हुए भी कार्य-पूर्ति में हृदय से संलग्न रहता है।

गांधीजी मानते थे कि मनुष्य तब तक शांति से नहीं रह सकता जब तक कि वह ईश्वर की ओर अभिमुख नहीं हो जाता है। उनके अनुसार यह जीवन में सर्वोत्तम स्थिति है और मन में पालने योग्य आकांक्षा हैं। यही आत्म-बोध और आत्मानुभूति है। गांधीजी मानते हैं कि गीता ज्ञान को प्रतिष्ठित करती है परंतु यह निरी बुद्धि से परे है। यह मूलतः हृदय को संबोधित है इसलिए उसे हृदय से ही समझना चाहिए। गीता आत्म-बोध का मार्ग दिखाने का कार्य करती है। गीता में त्याग ही केंद्रीय विचार है जिसके चारों ओर भक्ति, ज्ञान और अन्य सभी विचार परिक्रमा करते हैं। शरीर तो एक प्रकार की कैद है उससे छुटकारा पाने के लिए कर्म भी होना चाहिए। प्रत्येक देहधारी के लिए श्रम करना एक प्राकृतिक कर्म है। अनासक्त कार्य ही श्रेष्ठ है जिसमें फल-त्याग होता है। हर कर्म को ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए।

गांधीजी मानते हैं कि भक्ति से रहित ज्ञान निरर्थक है। भक्ति के बाद ही ज्ञान का आगमन होता है। भक्त और ज्ञानी दोनों में बड़ा साम्य है। उन दोनों में अनेक विशेषताएं एक सी हैं। गीता (अध्याय-2, श्लोक 55-64) के अनुसार स्थितप्रज्ञ (जिसकी बुद्धि स्थिर है!) कामनाओं का त्याग कर आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट रहता है, उसमें दुख के समय उद्वेग नहीं होता और सुख में स्पृहा नहीं होती, राग, भय और क्रोध से रहित; शुभ अशुभ दोनों प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त कर भी न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, कछुए की तरह इंद्रियों को विषयों से अलग कर समेट लेता है; ऐसे पुरुष का राग परमात्मा के साक्षात द्वारा निवृत्त हो जाता है। भक्त के बारे में गीता (अध्याय 12, श्लोक 13-20) का प्रतिपादन इस प्रकार हैः भक्त सभी प्राणियों से बिना द्वेष, निःस्वार्थ प्रेम करता है, वह ममतारहित सुख-दुख की प्राप्ति में सम भाव रखता है, क्षमावान होता है, ध्यानयुक्त, लाभ और हानि में संतुष्ट, मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में रखता है, परमात्मा में दृढनिश्चयी और समर्पित, न किसी को उद्विग्न करता है न स्वयं ही उद्विग्न होता है, हर्ष, अमर्ष और भय से रहित है, आकांक्षारहित, बाहर और भीतर से शुद्ध, कार्य-दक्ष, निष्पक्ष, दुख-रहित, कार्य के कर्तापन के अभिमान का त्यागी, न हर्ष, न द्वेष, न शोच, न कामना, शुभ-अशुभ कर्मों के फल का त्यागी, भक्तियुक्त, शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, सुख-दुख के द्वंद्वों में सम, सांसारिक आसक्ति से रहित, निंदा और स्तुति को समान

समझने वाला और मननशील, शरीर-निर्वाह में संतुष्ट, वास-स्थान से ममता-रहित स्थिर बुद्धि, परमात्मा को आश्रय, परम-गति, परमात्मा की प्राप्ति के लिए तत्पर तथा श्रद्धायुक्त होता है।

उल्लेख्य है कि आत्मानुभव (सेल्फ रियलाइजेशन) को ज्ञान और भक्ति से खरीदा नहीं जाता है बल्कि साधक ज्ञान और भक्ति की ही कामना करता है। उसकी चाहना में लक्ष्य और माध्यम लगभग एक हो जाते हैं। गीता का मोक्ष पूर्ण शांति है। यहां कर्म की भावना अधिक महत्वपूर्ण होती है। कार्य के प्रति नहीं उसके पीछे का भाव महत्व का होता है। गीता कहती है कि दिए हुए कार्य को करो और फल का त्याग करो। जहां भी संग्रह और आधिपत्य होता है वहां हिंसा होती है। गीता हमारे लिए निर्णय नहीं लेती परंतु यदि सामने कोई नैतिक समस्या खड़ी हो तो अहं को छोड़ निर्णय लेने से कोई हानि नहीं होगी। हर साधक के मन में कभी न कभी जीवन में कर्तव्यों को लेकर मुश्किल आती है, हृदय में उद्वेलन उठता है तब गीता राह दिखाती है परंतु गीता उनके लिए नहीं है जिनकी इसमें आस्था नहीं है। त्याग, भक्ति और इस ज्ञान की इच्छा का अभाव हो या जो गीता और ईश्वर को नहीं मानते। गांधीजी कहते हैं कि ईश्वर के अवतार भी मानव-सेवा हेतु हुए हैं। सभी शरीरी जीव यथार्थ में ईश्वरांश ही हैं पर सभी को अवतार नहीं माना जाता। वे कहते हैं आगे की पीढ़ियां उसी को ही मानती हैं जिन्होंने असाधारण धर्माचरण किया है। किसी को भी कर्म के बिना लक्ष्य नहीं मिलता, विदेह राजा जनक को भी नहीं।

अहिंसा की साधना

श्रीमद्भगवद्गीता में अहिंसा सर्व प्रमुख मूल्य के रूप में स्थापित है। शांतिकामी, एक आध्यात्मिक साधक और राजनैतिक कार्यकर्ता के रूप में अहिंसा गांधीजी की सर्वप्रमुख सीख रही। अहिंसा स्वयं अपने लिए, सभी प्राणियों के लिए, बिना शर्त प्यार है। गांधीजी ने अपने जीवन में कठिन से कठिन स्थिति में भी इसका उपयोग किया। गांधीजी कहते हैं कि 'महाभारत' युद्ध के वर्णन के लिए नहीं लिखा गया। वह वर्णन एक पूर्व रंग है। एक घटना का बड़े सत्य को सिखाने के लिए है कि युद्ध और विजय की प्राप्ति भी किसी काम की नहीं होती है। महाभारत युद्ध की व्यर्थता ही दिखाता है। इसमें विजयी से पश्चात्ताप और रुदन कराया है अतः गीता के अनुपालन से सत्य और अहिंसा की ही पुष्टि होती है। गांधीजी कहते हैं बिना अहिंसा के त्याग संभव नही है। यह मेरा चालीस साल का अनुभव बोलता है अतः अनासक्ति आवश्यक है।

जैसा कि सभी जानते हैं श्रीमद्भगवद्गीता युद्ध क्षेत्र में प्रण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश है। दर्शन, आध्यात्म और देवत्व ये सभी तत्व इसमें समाहित हैं। गांधीजी प्रण को अनुभवसिद्ध शुद्ध ज्ञान और अर्जुन को तदनुरूप आचरण के रूप में ग्रहण करते हैं। उन्होंने अपने जीवन में इसके प्रभाव को खुलकर स्वीकार किया है। उन्होंने अपने जेल जीवन में इसका गुजराती अनुवाद तैयार किया था। उन्होंने अनासक्ति योग को केंद्र माना। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रति अविचल निष्ठा ने इस लज्जाशील और कमजोर वकील को विश्व के महानतम नेताओं

में से एक के रूप में परिष्कृत कर दिया। 16 अगस्त 1908 को ट्रांसवाल में 2000 भारतीयों ने दक्षिण अफ्रीकी प्रमाण-पत्र जलाए। 'ब्लैक ऐक्ट' के इस विरोध द्वारा 'सत्याग्रह' का आरभ हुआ। बाद में भारत में आने पर गांधीजी ने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई में इसका सफल प्रयोग किया। गांधीजी ने इसे 'आत्म शक्ति' (सोल पावर) का नाम दिया। गांधीजी के जीवन में जो क्रांतिकारी परिवर्तन आया उसके पीछे गीता की खोज थी। उनके सचिव महादेव देसाई ने कहा 'गांधीजी के जीवन का प्रत्येक पल गीता के संदेश को सचेत रूप से जीना था'। वह भयहीन थे और उनमें अद्‌भुत नैतिक साहस मौजूद था क्योंकि अहिंसा और कायरता साथ नहीं चलते।

बचपन में रंभा नामक घर के सहायक की सीख कि जब डर लगे राम का नाम जपो उनका बड़ा संबल था। इससे मन और शरीर की पुष्टि होती है और चित्त में शांति-स्थिरता और समत्व का भाव पैदा होता है। 20 वर्ष की आयु में गांधीजी को गीता से निकटता मिलती है। वे पाते हैं कि मन बेहद चंचल है। उस पर नियंत्रण वायु की तरह मुश्किल काम है। नियमित ध्यान के अभ्यास और अनासक्ति से उस पर काबू पाया जा सकता है। जब मन स्थिर होता है तभी वास्तविक आत्म अपना स्वरूप व्यक्त करता है और ब्रह्म के साथ एकात्म की अनुभूति होती है। बीस साल के गांधी ने ध्यान के उपाय का जीवनपर्यंत उपयोग किया। ईश्वर की उपस्थिति सतत बनी रही। इंग्लैंड में गीता से जो भेंट हुई तो वह उनके हृदय देश में पैठ गई उन्होंने खुद को अर्जुन के रूप में देखा। मंत्र और संदर्भ ग्रंथ मिल गए फिर क्रमिक ऊर्जा का विकास हुआ और जीवन में प्रयोग शुरू किए। आहार पर नियंत्रण किया और न्यूनतम पर अपने को ले आने की सिद्धि प्राप्त की। निः स्वार्थ सेवा से सबका हित साधने की चेष्टा शुरू की। अपरिग्रह, यानी जितना जरूरी हो उतना ही अपने पास रखो इस नियम का पालन किया। अहं से रहित होकर ही आत्म बल प्राप्त हो सकता है और स्वतंत्रता मिलती है तभी रचनात्मकता आती है। सत्याग्रही को निर्भय होकर कार्य करना चाहिए।

निश्चय ही श्रीमद्‌भगवद्‌गीता गांधीजी के लिए आजीवन नैतिक मार्गदर्शिका बनी रही। इससे अपनी लोक यात्रा के लिए उन्हें सूझ और दिशा मिलती रही। वे गीता को माता कहते हैं जिसकी गोद में पहुंचकर उन्हें कठिन से कठिन क्षणों में भी स्नेह और सांत्वना मिलती है। गीता के उपासक और अनुगामी गांधी अनासक्ति और अहिंसा की राह पर चलते हुए सत्य पाने की यात्रा पर चल पड़ते हैं। अपने लक्ष्य के प्रति तथा उच्च आत्म के प्रति सत्यनिष्ठा उनके पूरे जीवन में अक्षुण्ण बनी रही। वे मानते थे कि यदि दुनियावी आसक्ति छोड़ दी जाए और अहंकार दूर हो तो मनुष्य को सच्चा आत्म-बोध हो सकेगा। कर्म की प्रक्रिया आनंददायी और संतोषदायी होनी चाहिए परंतु यह मात्र अनासक्त कर्म से ही संभव है इसीलिए अनासक्त कर्म गांधीजी के जीवन की धुरी बन गया। आज आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति ने मनुष्य के अहंकार का असीमित विस्तार किया है और ईश्वरीय सत्ता के प्रति संदेह को जन्म दिया है। अपरिग्रह और त्याग की जगह निरंतर बढ़ती आसक्ति का परिणाम हिंसा के रूप में ही प्रतिफलित हो रहा है। इससे उपजते भ्रम या माया में सभी एक अंधी दौड़ में शामिल होते जा

रहे हैं पर इसकी सीमा भी दिखने लगी है। लंबे और वास्तविक सुख और मानसिक शांति पाने के लिए लोभ, क्रोध, भय तथा आसक्तियों को छोड़ उच्च चेतना पर स्थित होना जरूरी है, तभी हम प्रेम को जीवन का आधार बना सकते हैं। दैवी सत्ता का समस्त अस्तित्व में सदैव और सर्वत्र उपस्थिति देखने की निष्ठा असफलता के दुर्बल क्षणों में भी मार्ग दिखाती है। श्रीकृष्ण भगवान के वचनों से अर्जुन को सब स्मरण में आ गया और संदेह दूर हो गए और जो कहा गया तदनुसार करने को तत्पर हो गए :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादान्मदच्युत
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥

महात्मा गांधी भी अर्जुन की तरह ही श्रीमद्भगवद्गीता(कृष्ण!) के अंग्रेजी राज के विरुद्ध धर्म युद्ध लड़े थे और ऐसे में श्री (सफलता), विजय और विभूति (ऐश्वर्य) का होना स्वाभाविक था। वर्तमान समय में भी श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्ति और समाज दोनों ही स्तरों पर जीवन की यात्रा का पाथेय है।

●

✶ लेखक प्रख्यात समाजविज्ञानी एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति हैं।

हिंद स्वराज और कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का पुनर्पाठ

(मार्क्स, गांधी और हईडेग्गर कृत आधुनिक सभ्यता की पर्यालोचना)

अंबिका दत्त शर्मा

सभ्यता के आरंभ से ही मनुष्य जीवन और जगत् के विषय में आदर्श दृष्टिकोण और परिकल्पनाओं को प्रस्तुत करता रहा है। मानव-स्तर पर आत्मचेतन हुए चेतना के लिए यह अस्वाभाविक भी नहीं है। भारतीय परंपरा में भी सभ्यता, संस्कृति और नीति विषयक आदर्श दृष्टिकोणों का न केवल समृद्ध बल्कि प्राचीनतम इतिहास मिलता है। रामायण, महाभारत, मनु, कौटिल्य, भीष्म और शुक्र तथा विदुर-कामंदक इत्यादि में एतद्विषयक चिंतन के आदर्शवादी गुण-सूत्र स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। सही अर्थों में इन्हें 'नो प्लेस' के अर्थ में UTOPIANS भी नहीं कहा जा सकता बल्कि 'गुड प्लेस' के अर्थ में इन्हें EUTOPIANS कहना ज्यादा उचित होगा। परंतु विडंबना यह है कि सभ्यता, संस्कृति और नीति विषयक पश्चिमी चिंतन का जिस तरह प्रचार-प्रसार हुआ, उसमें भारतीय चिंतकों के बुनियादी और आदर्शवादी संकल्पनाओं के लिए आज कोई स्थान ही नहीं है। इसके लिए पश्चिम के प्राच्यविदों के ओरियेंटलिस्ट मिशन को ही एकबारगी जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। जिम्मेवार तो हम सभी हैं जिन्होंने योग्य उत्तराधिकार भाव से अपनी वाङ्निधि के मूल्यवान तत्वों को दुनिया के सामने उस तरीके से प्रदर्शित ही नहीं किया। ध्यातव्य है कि सन् 2000 यानी सहस्त्राब्दि वर्ष के उपलक्ष्य में याक बारजून ने 'फ्रॉम डाउन टू डिकेडेंस : 500 हण्ड्रेड इयर्स ऑफ वेस्टर्न कल्चरल लाइफ' नामक एक महत्वाकांक्षी विश्व इतिहास ग्रंथ का प्रकाशन किया था।[1] इस विशाल ग्रंथ में नब्बे वर्षीय लेखक ने सभ्यता, संस्कृति के वैश्वीय संदर्भों पर अपने लंबे अनुभवों को बड़े विस्तार से प्रतिपादित किया है। इस ग्रंथ में एक लंबा और रोचक अध्याय है- The Eutopian जिसमें दुनियाभर के यूटोपिया चिंतन की खोज-खबर ली गई है, परंतु कहीं भारतीय चिंतकों का नामोनिशान भी नहीं है। याक बारजून ने इस अध्याय में मार्क्स-ऐंजिल्स के 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' पर विस्तार से चर्चा की है लेकिन महात्मा गांधी के 'हिंद-स्वराज' को संदर्भित भी नहीं किया है। द्रष्टव्य है कि 19वीं 20वीं शताब्दी में आदर्श परिकल्पना की दृष्टि से हिंद स्वराज

को कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो से किसी भी तरीके से कम नहीं आंका जा सकता, चाहे दोनों दस्तावेजों पर उनकी कार्य-योजनाओं अथवा सैद्धांतिक विवेचन की दृष्टि से ही क्यों न विचार किया जाये। अतएव यहां हम कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो और हिंद स्वराज को आमने-सामने रखकर दोनों दस्तावेजों की कार्य-योजना और उससे संबंधित कुछ उद्दिष्ट संकल्पनाओं के संदर्भ में तुलनात्मक विमर्श करने का प्रयास करेंगे। अवधेय है कि मार्क्स-ऐंजिल्स का कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो अपने विचार परंपरा की एक उत्तरवर्ती रचना है जिसकी अवधारणात्मक आधारशिला पहले से ही स्पष्ट की जा चुकी थी लेकिन गांधीजी का हिंद स्वराज उनकी एक प्रारंभिक रचना है और उसके निहितार्थों का स्पष्टीकरण वे आजीवन करते रहे। इसलिए दोनों दस्तावेजों पर तुलनात्मक विमर्श के लिए न केवल मार्क्स और गांधीजी के संपूर्ण चिंतन को परिप्रेक्ष्य में रखना होगा बल्कि कुछ समकालीन और बदलते हुए वैचारिक परिदृश्यों के संदर्भ में भी विचार करना अपेक्षित होगा। हम अपने इस छोटे से प्रयास में, हिंद स्वराज के सौ वर्ष पूरे होने पर, यथासम्भव ऐसा ही करने का प्रयास करेंगे।

कार्ल मार्क्स और ऐंजिल्स द्वारा जब पहली बार सन् 1848 में जर्मन भाषा में 'मैनिफेस्टो ऑफ दी कम्युनिस्ट पार्टी' प्रकाशित हुई तो दुनिया को बदलने वाली पुस्तक के रूप में इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इसने उस समय संसार की सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक के रूप में स्थान प्राप्त किया। वस्तुतः जिस आह्वान के साथ मार्क्स ने इसे प्रस्तुत किया था, तत्कालीन यूरोप में इसके स्वागत का मनस्तत्व पहले से ही तैयार हो चुका था। इसकी सैद्धांतिक पृष्ठभूमि पहले से ही एक सशक्त विचारधारा का स्वरुप ले चुकी थी। इसके विपरीत महात्मा गांधी ने सन् 1909 में जब प्रथमतया हिंद स्वराज को गुजराती भाषा में पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किया तो भारतीय जनमानस में यह उतना प्रचारित नहीं हुआ, बल्कि कुछ अंग्रेज शासकों को ऐसा अवश्य ही प्रतीत हुआ कि यदि इस छोटी सी पोथी का अधिक प्रचार-प्रसार हुआ तो भारतीय जनमानस में ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध की आग तेजी से भड़क सकती है। इसी अंदेशे में तत्कालीन बंबई सरकार ने इस पुस्तक को प्रतिबंधित कर दिया था। इस प्रतिबंध के प्रत्युत्तर में और हरमन कैलेनबैक के पढ़ने के लिए गांधीजी ने 1912 में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। वस्तुतः इस पोथी में हिंदुस्तान के स्वराज के आधारभूत ढ़ांचे को एक वैकल्पिक सभ्यता बोध के रूप में जिस सहजता और मौलिकता के साथ गांधीजी ने प्रस्तुत किया था वह तत्कालीन भारतीय जनमानस को उतने गहराई से प्रभावित कर भी नहीं सकता था। अंग्रेजों के संपर्क में आने से भारतीयों में जिस राजनैतिक अस्मिता की चेतना जगी थी, उसमें अपनी सभ्यता और संस्कृति के क्षरण की चेतना सम्मिलित ही नहीं थी। गोखले ने तो हिंद स्वराज पर टिप्पणी करते हुए यहां तक कहा था कि इस पोथी में गांधीजी के विचार इतने अनगढ़ हैं कि एक साल के बाद वे इसे स्वयं ही नष्ट कर देना चाहेंगे। दूसरी तरफ जिराल्ड हर्ड ने कहा था कि यह गांधीजी के द्वारा यह एक प्रयोग की शुरुआत है और इसका महत्व युगों तक कायम रहेगा। इस प्रकार जो भी हो, ये दोनों दस्तावेज अपने प्रस्तुत होने के साथ ही एक युगांतकारी दस्तावेज

होने के संकेत देने लगे थे। ये दोनों दस्तावेज अपनी बनावट में सैद्धांतिक विवेचन होने के साथ-साथ उसे क्रियांवित और चरितार्थ करने की कार्ययोजनाएं भी प्रस्तुत करते हैं। इनमें सैद्धांतिक विवेचन पार्श्व में है और कार्ययोजना मुखर रूप से सामने आई है। इस कारण ये दोनों दस्तावेज प्रथम दृष्टया सामान्य अदीक्षित व्यक्तियों को संबोधित करते हुए प्रतीत होते हैं। मैनिफैस्टो के पार्श्व में जो सैद्धांतिक दृष्टि कार्य कर रही थी, वह द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप में पूरे तौर से अनावृत हो चुकी थी; लेकिन हिंद स्वराज के पार्श्व में जो दार्शनिक दृष्टि कार्य कर रही थी, वह स्पष्ट रूप से अनावृत नहीं थी। वह तो एक बोधि के रूप में मानों बुद्ध-पुरुष के मुख से सहज ही प्रस्फुटित हुई थी। आज भी गांधीजी के हिंद स्वराज को उसके संपूर्ण निहितार्थों और निष्पत्तियों के साथ उद्घाटित करने के लिए एक ऐसे व्याख्याकार की जरूरत है जो वास्तव में उसपर एक महाभाष्य लिख सके। यद्यपि गांधीजी ने अपने जीवन में जो कुछ भी कहा और लिखा, वह सब कुछ हिंद स्वराज की व्याख्या ही कही जा सकती है लेकिन फिर भी वह गांधी वाङ्मय स्वयं गांधीजी की संपूर्ण अभिव्यक्ति नहीं।

द्रष्टव्य है कि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो और हिंद स्वराज के उद्देश्य, साधन और फल में कितनी भी भिन्नता क्यों न रहीं हो लेकिन दोनों में अपने-अपने नजरिए के प्रति अखंड प्रामाणिकता और प्रचंड आत्मविश्वास दिखाई पड़ता है। इसलिए तमाम टीका-टिप्पणियों के बीच और बदलती हुई परिस्थितियों के बावजूद मार्क्स अपने मैनिफेस्टो और गांधीजी अपने हिंद स्वराज में किसी प्रकार के संशोधन, परिवर्द्धन के लिए तैयार नहीं थे। मैनिफेस्टो के विविध अनुवादों और अन्यान्य संस्करणों की भूमिकाएं मार्क्स और ऐंजिल्स ने ही लिखी थीं। मार्क्स के जीवनकाल में मैनिफेस्टो का अंतिम संस्करण 1882 में प्रकाशित हुआ था। द्रष्टव्य है कि 1848 से 1882 तक यानी इन 34 वर्षों में लेखकद्वय के द्वारा मैनिफेस्टो में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। 1872 में मैनिफैस्टो के एक जर्मन संस्करण की भूमिका में लेखक द्वय ने यह लिखा भी है कि 'मैनिफेस्टो तो अब एक ऐतिहासिक दस्तावेज हो गया है जिसे बदलने का अब हमें कोई अधिकार नहीं रह गया है।' यह बात अलग है कि मार्क्स के बाद लेनिन और माओ ने मार्क्सवाद में कुछ सैद्धांतिक एवं कार्ययोजनागत परिवर्द्धन किए हैं। ऐसे में उल्लेखनीय है कि गांधीजी भी हिंद स्वराज में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता कभी भी महसूस नहीं किए। 1921 में हिंद स्वराज के हिंदी अनुवाद की प्रस्तावना लिखते हुए उन्होंने कहा था कि 'यह पुस्तक मैंने 1909 में लिखी थी। आज 12 वर्ष के मेरे अनुभव के बाद भी मेरे विचार जैसे उस समय थे, वैसे आज भी हैं। हां, मिलों के संबंध में मेरे विचारों में इतना परिवर्तन हुआ है कि हिंदुस्तान की आज की हालत में मैनचेस्टर के कपड़े के बजाय हिंदुस्तान की मिलों को ही प्रोत्साहन देकर अपनी जरूरत का कपड़ा अपने देश में ही तैयार कर लेना चाहिए।' पुनः 1938 में गांधीजी ने अपने द्वारा भेजे गए एक संदेश 2 में कहा था कि 'हिंद स्वराज पुस्तक अगर आज मुझे फिर से लिखनी हो तो कहीं-कहीं मैं उसकी भाषा बदलूंगा। इसे लिखने के बाद जो तीस साल मैंने अनेक आंधियों में बिताएं हैं, उनमें मुझे इस पुस्तक में बताए विचारों में

फेरबदल करने का कुछ भी कारण नहीं मिला।' वस्तुतः अपने विचारों के प्रति अडिग रहना और अपने विचारों में अच्छे परिवर्तन के लिए तैयार रहना, दोनों ही अपने-अपने तरीके की बौद्धिक ईमानदारी है लेकिन मार्क्स और गांधीजी दोनों ही सामान्य जन की अकादमिक ईमानदारी से ऊपर की बोध भूमि के व्यक्ति थे। गांधीजी ने तो हिंद-स्वराज के बाद भी बहुत लिखा और अवांतर प्रसंगों में बहुत कुछ कहा लेकिन उनकी प्रारंभिक रचना हिंद स्वराज को संदर्भ बनाकर उनके हिंदस्वराजोत्तर विचारों में किसी प्रकार का अंतर्विरोध दिखा पाना असंभव जैसा है। आज गांधीजी के विषय में बहुत कुछ ऐसा भी लिखा जा रहा है जो उन्हें निंदित रूप में प्रस्तुत करता है। वस्तुतः चेतना की उच्च भूमि पर स्थित व्यक्ति का मूल्यांकन जब साधारण चेतना के धरातल की कसौटियों पर किया जाता है तो ऐसी भूलें स्वाभाविक रूप से हो जाया करती हैं। हम यह भूल जाते हैं कि चेतना के दो भिन्न धरातल पर उन्मीलित दृष्टियों की अर्थवत्ता और तदनुरूप कर्म की कर्मवत्ता एक जैसी नहीं होती, भले वे उपर से देखने में कितने भी समान क्यों न लगें।

कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो और हिंद स्वराज दोनों के विचार-विधान और अपनी बातों के कहने के ताने-बाने बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। समकालीन परिस्थितियों के विश्लेषण, उनका कारणात्मक विवेचन और उनसे त्राण पाने के उपायों का संकेत दोनों विचार-प्रबंधों की शैलीगत विशेषता कही जा सकती है परंतु दोनों दस्तावेजों के निदानपरक कार्य-क्षेत्रों का संदर्भ अलग-अलग रहा है। मैनिफेस्टो का संदर्भ-कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से यूरोप है तो हिंद स्वराज का हिंदुस्तान। इस प्रसंग में यहां एक उल्लेखनीय बात यह है कि दोनों दस्तावेजों में अपनी कार्ययोजना को चरितार्थ करने के लिए द्विस्तरीय लक्ष्यों का निर्धारण किया गया है। इस दृष्टि से देखने पर मैनिफेस्टो का संदर्भ 'यूरोप' और हिंद स्वराज का संदर्भ 'हिंदुस्तान' उनके प्राथमिक लक्ष्य से संबंधित है। इनका दूसरा लक्ष्य बहुत व्यापक है जो किसी देश-काल और राष्ट्र-राज्य की सीमा का अतिक्रमण करता हुआ पूरी मानवता को अपने में समेट लेता है।

कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का प्राथमिक रूप से घोषित लक्ष्य है[3] -'प्रथम चरण में श्रमिक वर्ग द्वारा क्रांति के माध्यम से सर्वहारा को शासक के स्तर पर पहुंचना जिससे कि सही अर्थों में जनतंत्र की विजय संभव हो।' इसका उत्तर लक्ष्य है[4] 'सर्वहारा यदि बुर्जुआ वर्ग के साथ संघर्ष में परिस्थितियों के दबाव के कारण अपने को एक वर्ग-रूप में गठित करने को विवश होता है, यदि क्रांति के माध्यम से वह अपने को शासक वर्ग बना लेता है और इस प्रकार बलपूर्वक उत्पादन की पुरानी परिस्थितियों को समेट लेता है तो वह इन परिस्थितियों के साथ-साथ वर्ग विद्वेष और वर्गों के सामान्य अस्तित्व को भी समेट लेगा और तब स्वयं अपने वर्ग की प्रभुता को भी विनष्ट कर देगा।' इस तरह एक ऐसे संघ की स्थापना साकार हो सकेगी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का स्वतंत्र विकास सबके स्वतंत्र विकास का अनुषंगी होगा।' मार्क्सवादी विचारधारा में इसी को चरम लक्ष्य कहा गया है जहां राज्य सत्ता स्वयं अपना काम कर समाप्त हो जाएगी और वर्ग-विहीन, राज्य-विहीन, समाज की स्थापना होगी।

अब यदि मैनिफेस्टो के प्राथमिक लक्ष्य के क्रियान्वयन पर विचार किया जाए तो कहा जा सकता है कि वह कुछ टेड़े-मेड़े ढ़ंग से अथवा राज्यवादी ढंग से पूरा हुआ। टेड़े-मेड़े इसलिए कि मार्क्स ने 1882 में मैनिफेस्टो के एक रूसी संस्करण की भूमिका लिखते हुए यह आशा व्यक्त की थी कि यदि रूस में क्रांति होती है तो पश्चिम में सर्वहारा-क्रांति के लिए यह कार्य संकेत होगी जिससे दोनों एक दूसरे के पूरक हो सकेंगे। द्रष्टव्य है कि मार्क्स की आशा के अनुरूप ही लेनिन के नेतृत्व में रक्तरंजित रूसी क्रांति तो हुई लेकिन स्वयं रूस में ही उसका प्रभाव और अस्तित्व लगभग सात दशकों तक ही बना रहा। पश्चिम में मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुरूप कोई सर्वहारा-क्रांति नहीं हुई और पूर्वी यूरोप के देशों में मार्क्सवाद का प्रभाव जो फैला था वह भी जल्दी ही सिमट कर रह गया। इस तरह कहा जा सकता है कि मैनिफेस्टो का प्राथमिक लक्ष्य ही यदि अल्पायु सिद्ध हुआ तो उसके चरम लक्ष्य को यथार्थ से बहिष्कृत परिकल्पना के रूप में ही स्वीकार करना होगा। वास्तविकता भी यही है कि पूंजीवादी राज्य व्यवस्था के विकल्प के रूप में कम्युनिज्म आज मृत अथवा मृतप्राय ही है परंतु इसमें दो राय नहीं कि एक विचार-व्यवस्था के रूप में उसका स्थान मनुष्य की आदर्शोन्मुखी चेतना में सदैव सुरक्षित रहेगा।

अब आइये हिंद स्वराज के द्विस्तरीय लक्ष्यों पर विचार करें। इसे स्वयं गांधीजी के शब्दों में उपस्थापित करना ज्यादा उचित होगा। 1921 के यंग इंडिया के जनवरी अंक में गांधीजी ने एतद्विषयक अपने अभिप्राय को बड़े अच्छे ढ़ंग से स्पष्ट किया है- 'मैं पाठकों को एक चेतावनी देना चाहता हूं। वे ऐसा न समझें कि हिंद स्वराज सें जिस 'स्वराज' की तस्वीर मैंने खड़ी की है वैसा स्वराज कायम करने के लिए आज मेरी कोशिश भी चल रही हैं। मैं जानता हूं कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। ऐसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है कि हिंद स्वराज में जिस स्वराज की तस्वीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज पाने की मेरी नितांत निजी कोशिश जरूर चल रही है परंतु इसमें कोई दो राय नहीं कि आज मेरी सामूहिक प्रवृत्ति का ध्येय तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेंटरी ढ़ंग का स्वराज पाना है। रेलों और अस्पतालों का नाश करने का ध्येय मेरे मन में नहीं है, अगरचे उनका कुदरती नाश हो तो मैं उसका स्वागत करूंगा।' गांधीजी के इस स्पष्टीकरण से स्पष्ट है कि हिंद स्वराज का प्राथमिक लक्ष्य हिंदुस्तान में पार्लियामेंटरी ढ़ंग का राजनैतिक स्वराज पाना था, जिस पार्लियामेंटरी व्यवस्था को (ब्रिटिश पार्लियामेंट) गांधीजी ने हिंद स्वराज के प्रथम संस्करण में वैश्या पद से अभिहित किया था और बाद के संस्करणों में इस शब्द को उन्होंने हटा दिया था। हिंद स्वराज का दूसरा अर्थात् उत्तर लक्ष्य था-वास्तविक अर्थों में स्वराज यानी सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा इत्यादि सनातन मूल्यों पर आधारित एक पूर्ण सभ्यता बोध को धरती पर उतारना और इसके अवतरण के लिए प्रथम और उपर्युक्त भूमि आर्यावर्त (भारत) को बनाना, क्योंकि गांधीजी के स्वराज-परिकल्पना के मूल में जो व्यक्ति खड़ा है वह पूरे तौर से विशुद्ध भारतीय धर्म-बोध से युक्त व्यक्ति है। यह एक व्यापकतर लक्ष्य था, क्योंकि गांधीजी को इस सत्य का अभ्रांत बोध था कि हिंदुस्तान की पराधीनता वास्तव में भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध किसी एक देश की पराधीनता नहीं बल्कि एक संपूर्ण सभ्यता और संस्कृति की पराधीनता हैं। वह

भी ऐसी सभ्यता और संस्कृति जिसके लिए उन सभी मानव प्रवृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मान, मोह, मद, मत्सरादि) से भी मुक्ति काम्य है जिन्हें अन्य सभ्यताएं न्यूनाधिक रूप से मानव-स्वभाव अथवा मनुष्य का सत्य समझती हैं। यूरोपीय सभ्यता मानव-सत्य के ऐसे ही दृष्टिकोण पर टिकी हुई सभ्यताओं में अग्रणी है और पराधीन भारत इसी 'ऐंद्रिक सभ्यता' (सेंसेट कल्चर) की चपेट में चतुर्दिक रूप से दमित हो रहा था। अपने इसी बोध के कारण गांधीजी हिंदुस्तान के स्वाधीनता आंदोलन को भारत की राजनैतिक आजादी मात्र का आंदोलन नहीं मानते थे बल्कि अपने व्यापकतर लक्ष्य के संदर्भ में मानव-मुक्ति की लड़ाई कहते थे।

इस प्रकार, अब यदि, हिंद स्वराज के द्विस्तरीय लक्ष्यों के क्रियान्वयन पर विचार किया जाए तो उसका प्राथमिक लक्ष्य यानी पार्लियामेंटरी ढ़ंग का राजनैतिक स्वराज तो 1947 में प्राप्त हुआ और वह कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो के प्राथमिक लक्ष्य को तुलना में अधिक टिकाऊ भी सिद्ध हुआ है क्योंकि 1947 से लेकर आज तक पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी की जड़ें भारत में उत्तरोत्तर गहरी ही होती जा रही हैं। गांधीजी की इच्छा थी कि स्वतंत्र भारत का राष्ट्रपति कोई हरिजन स्त्री हो, वह भी निकट भविष्य में कभी न कभी पूरी ही हो जाएगी। गांधीजी की एक गहरी चिंता जो गोरे साहबों के बाद भूरे साहबों से थी वह आज भी बनी हुई ही नहीं बल्कि अपने हद को पार कर चुकी है। अब जहां तक हिंद स्वराज के उत्तर लक्ष्य का प्रश्न है तो आजाद भारत में पार्लियामेंटरी स्वराज को जिस तरह लागू किया गया वह गांधीजी के सच्चे स्वराज की परिकल्पना को चरितार्थ करने का सोपान नहीं बन पाया। गांधीजी पार्लियामेंटरी व्यवस्था को आजाद भारत में 'ग्राम स्वराज' के रूप में अपना कर उसे अपने उत्तर लक्ष्य 'संपूर्ण स्वराज' का सोपान बनाना चाहते थे परंतु एक विडंबना ने सब कुछ को अन्यथा करके रख दिया। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि पंडित नेहरू, जिन पर स्वयं गांधीजी फिदा रहते थे, उन्होंने जब इस देश की बागडोर संभाला तो उन्होंने हिंद स्वराज की कार्य-योजना को ही मिटाकर नहीं बल्कि स्वाधीनता आंदोलन की उस वैचारिक विरासत जो पश्चिमी अंतराय से मुक्त थी; उसे भुलाकर आधुनिक भारत को बिलकुल अपनी आवक्ष प्रतिमा के रूप में गढ़ने का प्रयास किया। हां, पंडित नेहरू ने गांधीजी के आदर्शों का कहीं उपयोग भी किया तो केवल 'इंटरनेशनल पीस पॉलिटिक्स' के मुखौटे के तौर पर। यशदेव शल्य ने पंडित नेहरू की इस सूरत पर टिप्पणी करते हुए उचित ही कहा है कि 'अवश्य उन्हें (पंडित नेहरू) देश से प्रेम था किंतु राजनीतिक देश से, सांस्कृतिक देश से नहीं। उनका सांस्कृतिक देश तो आधुनिक पश्चिम था- वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी संस्कृति का पश्चिम।'[5] इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्स का उत्तर लक्ष्य (वर्ग विहीन-राज्य विहीन समाज) जैसे इतिहास का सत्य नहीं बन पाया वैसे ही गांधीजी का उत्तर लक्ष्य स्वयं गांधी के स्वराज के रूप में तो पूर्णतया चरितार्थ हुआ लेकिन वह हिंदुस्तान का स्वराज नहीं बन पाया। अतएव कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो और हिंद स्वराज का केवल प्राथमिक लक्ष्य ही प्रयोगभूत हुआ।

यद्यपि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का प्राथमिक लक्ष्य 'सर्वहारा का शासन' और हिंद स्वराज का

प्राथमिक लक्ष्य 'पार्लियामेंटरी ढ़ंग का राजनैतिक स्वराज' को प्राप्त करने के तरीकों को लेकर मार्क्स और गांधीजी के बीच प्रकटत : ही बहुत विरोध है जिसे खूनी क्रांति और अहिंसक क्रांति (सत्याग्रह) के मध्य अवधारणात्मक विरोध के रूप में समझा जा सकता है। गांधीजी मार्क्स के 'साम्य' को 'सौम्य' के शर्त पर ही न्यूनाधिक रूप में स्वीकार करने के पक्षधर थे और इस शर्त पर उन्हें मार्क्स की बहुत सी बातों को यथावत मान लेने से कोई परहेज नहीं था लेकिन स्वयं मार्क्स गांधीजी के स्वराज की संकल्पना और उसे प्राप्त करने के उपायों को किस रूप में और किस सीमा तक अनुमोदन करते, इस प्रश्न के उत्तर से इतिहास वंचित रह गया। यहां द्रष्टव्य है कि एक ओर जहां दोनों दस्तावेजों में प्राथमिक लक्ष्य को प्राप्त करने के उपायों को लेकर गहरा मतभेद है वहीं उत्तर लक्ष्य से संबंधित उसके एक विशिष्ट पूर्वपक्ष की समझ और उसकी आलोचना को लेकर दोनों में गहरी समानता भी है। वह विशिष्ट पूर्वपक्ष है- तकनीकी विश्व दृष्टि और मशीनी सभ्यता की आलोचना, जो अपने हृदय में एक वैकल्पिक सभ्यता बोध को छिपाए हुए हैं। यद्यपि मार्क्स ने इस पूर्वपक्ष को उतनी गंभीरता से नहीं लिया है जितनी गहराई और गंभीरता से उसे गांधीजी ने लिया है। गांधीजी स्वयं इस बात को स्वीकार भी करते हैं कि- 'इस किताब में (हिंद-स्वराज में) आधुनिक सभ्यता की सख्त टीका की गई। 1909 में लिखी इस किताब में जो मेरी मान्यता प्रकट की गई है वह आज पहले से ज्यादा मजबूत हो गई है। मुझे लगता है कि अगर हिंदुस्तान 'आधुनिक सभ्यता' का त्याग करेगा, तो उसे लाभ ही होगा।'[6] अतएव यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यंत्र प्रधान आधुनिक सभ्यता की आलोचना तो दोनों करते हैं लेकिन कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में जहां यह आलोचना हाशिए पर है वहीं हिंद स्वराज में यह केंद्र में है। मार्क्स यंत्र प्रधान वैज्ञानिक तकनीकी दृष्टि की आलोचना करते हुए किसी वैकल्पिक सभ्यता बोध की बात नहीं करते बल्कि वे आधुनिक सभ्यता में यंत्रों के अत्याचार और तज्जन्य सभ्यता की अधिकायकता से उसे मुक्त करना चाहते हैं। गांधीजी आधुनिक मशीनी सभ्यता को उसकी पूरी ज्ञानमीमांसा के साथ निरस्त करते हैं और हमारे सामने एक वैकल्पिक सभ्यता बोध को प्रस्तावित भी करते हैं। कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में यंत्र-प्रधान उद्योगों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'आधुनिक उद्योगों ने पैतृक पद्धति से चलने वाले उस्ताद कारीगरों की छोटी सी कार्यशाला को औद्योगिक पूंजीपति के एक बड़े कारखाने में बदलकर रख दिया है। कारखाने में भरी मजदूरों की भीड़ सिपाहियों की तरह व्यवस्थित की जाती है। औद्योगिक सेना के रंगरूटों की तरह उन्हें अफसरों और सार्जेंटों की सुघड़ व्यवस्था के अंतर्गत रखा जाता है। वे न केवल बुर्जुआ वर्ग और उस बुर्जुआ राज्य के गुलाम हैं बल्कि दैनिक और घंटावार हिसाब से मशीन के दास बना दिए गए हैं।'[7] पुनः कुछ भिन्न आशय से मशीनी सभ्यता की आलोचना करते हुए कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में कहा गया है कि 'संकट के इन क्षणों में एक महामारी फैली है जो पिछले युगों में एक अनर्थकता सी लगती थी- अति उत्पादन की महामारी। समाज एकबारगी अपने को एक क्षणिक बर्बरता की स्थिति में धकेला हुआ पाता है। ऐसा लगता है जैसे किसी दुर्भिक्ष, सार्वभौम युद्ध के ध्वंस ने जीवनयापन के सभी साधनों

को नष्ट कर दिया है, उद्योग व्यापार समाप्त हुए लगते हैं। यह सब क्यों? क्योंकि सभ्यता की अधिकायत हो गई है, जीवनयापन के साधन बहुत अधिक हैं, बहुत अधिक उद्योग हैं, बहुत अधिक व्यापार।'[8]

कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो के उपर्युक्त दोनों संदर्भों से यह बात स्पष्ट रूप में समझी जा सकती है कि मार्क्स का मशीन और मशीनी सभ्यता से विरोध पूंजी के केंद्रीकरण, उत्पादन की प्रचुरता और तज्जन्य सभ्यता की अधिकायकता को लेकर है। इसे हाईपर इंडस्ट्रीयलायजेशन और मेगा टेक्नालॉजी के प्रति अंततः एक परिसीमनवादी दृष्टिकोण के रूप में समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो मशीन और मशीनीकृत औद्योगिकीकरण की मार्क्सवादी आलोचना इस बात से संबंधित नहीं है कि किस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता है बल्कि इस बात से संबंधित है कि किस तरह से वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इसके विपरीत इस संबंध में गांधीजी की आलोचना यंत्रारूढ़ उत्पादन के प्रकारों और उत्पादन के तरीकों दोनों से संबंधित है। यंत्रारूढ़ उत्पादन के तरीके पूंजीवाद को, अमीर-गरीब की खाई को, एक वर्ग-विशेष के शोषण को बढ़ाती है।

गांधीजी को इन सभी बातों को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है परंतु गांधीजी की आपत्ति मूलगामी प्रकार की है और वह यह कि यंत्रारूढ़ उत्पादन का प्रकार अंततः मनुष्य की मनुष्यता को ही बिगाड़ देता है इसीलिए गांधीजी बारंबार यह कहते थे कि आधुनिक सभ्यता और आधुनिक मशीनों का प्रयोग मनुष्य को बिगाड़ने वाला है। कुल मिलाकर मार्क्स के लिए यंत्रजनित सभ्यता की अधिकायकता एक महामारी है जिसका उपचार किया जाना चाहिए परंतु गांधी की दृष्टि में जो सभ्यता आधुनिक मशीनों के साथ पूरी दुनिया में आताल-पाताल तक फैल रही है, वह महापाप है' और उसका सर्वथा त्याग ही किया जाना चाहिए।

आधुनिक सभ्यता की आलोचना हिंद स्वराज के केंद्र में है, इसे स्पष्ट करने के लिए प्रकृत प्रश्न पर थोड़े विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। द्रष्टव्य है कि हिंद स्वराज में प्रारंभ से लेकर अंत तक गांधीजी ने आधुनिक सभ्यता की आलोचना बहुआयामी रूप से और विभिन्न प्रसंगों में की है। इसके अतिरिक्त हिंद स्वराजोत्तर लेखन में भी वे विभिन्न संदर्भों में अपने आशय को स्पष्ट करते रहे हैं। यद्यपि उनकी आलोचना में एकस्वरता और वैचारिक दृढ़ता दोनों दिखाई पड़ती है लेकिन उनकी सीधी और सपाट शैली से न तो उसका अंतरार्थ प्रकट हो पाता है और न ही उसके पीछे का सैद्धांतिक आधार। अतएव गांधीजी के तात्पर्य को खोलने के लिए उनकी आलोचनाओं पर द्विपक्षीय ढंग से विचार किया जाना चाहिए। एक पक्ष आधुनिक सभ्यता की आलोचना और दूसरा आधुनिक सभ्यता और तकनीकी के अंतः संबंध का पक्ष, साथ ही साथ यह भी देखा जाना चाहिए कि इन दोनों पक्षों पर कितने दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है।

अब यदि गांधीजी की आलोचना के प्रथम पक्ष पर विचार किया जाय तो प्रथम दृष्टया

में कोई यह कह सकता है कि हिंद स्वराज में गांधीजी ने आधुनिक सभ्यता की आलोचना जिस रूप में की है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस आलोचना के द्वारा भारतीय जनमानस में अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति स्वाभिमान जगाना चाहते थे। वे भारतीयों के मन में यह बैठाना चाहते थे कि हम जिस पश्चिमी सभ्यता को उत्कृष्ट मानकर अभिभूत हो रहे हैं, वह वस्तुतः अभिभूत होने लायक ही नहीं है। इसीलिए वे अपनी आलोचना को सर्वथा नवीन नहीं कह कर यह मानते थे कि कुछ पश्चिमी विद्वानों (टॉल्स्टॉय, कार्पेंटर, थोरो और रस्किन) ने भी हमसे पूर्व में ही आधुनिक सभ्यता की आलोचनाएं की हैं। अतः गांधीजी की आलोचना अपने आप में पश्चिमी सभ्यता की स्वतंत्र और स्वायत्त आलोचना नहीं है। इसका उद्देश्य हम भारतीयों में अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति (अंग्रेजों के संपर्क में आने से) उपजी हीन भावना से उबारना था। यह बात श्री अरविंद द्वारा लिखी गई 'फाउंडेसंस ऑफ इंडियन कल्चर' से भी समर्थित की जा सकती है जो हिंद स्वराज के आस-पास ही लिखी गई थी।

श्री अरविंद ने जहां पाश्चात्य प्राच्यविदों के भारतीय संस्कृति विषयक दुष्प्रचार के विरोध में अकादमिक ढंग से भारतीय संस्कृति के गुणों को उद्घाटित किया है वहीं गांधीजी ने सीधे-सपाट शब्दों में पश्चिमी सभ्यता की आलोचना की है। अतः इन दोनों ग्रंथों का ध्येय भारतीय नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन की सांस्कृतिक चेतना को पुष्ट करना था।

हिंद स्वराज में गांधीजी कृत आधुनिक सभ्यता की आलोचना का इस रूप से मूल्यांकन कि वह अपने आप में स्वायत्त आलोचना नहीं बल्कि किसी अवांतर उद्देश्य की पूर्ति का निमित्त मात्र है; उसके अकादमिक मूल्य का अवमूल्यन करना है। गांधीजी की आलोचना की यह प्रतिध्वनि तो हो सकती है लेकिन उसकी ध्वनि नहीं। हिंद स्वराज की ध्वनि तो यह देखने में है कि हिंदुस्तान किस तरह एक ऐसी सभ्यता के चपेट में आत्म-विस्मृति को प्राप्त हो रहा है जिसे पैगंबर मुहम्मद की पदावली में शैतानी सभ्यता और हिंदू धर्म की शब्दावली में निरा कलियुग कहने में भी कोई दोष नहीं।[10] स्वयं हिंद स्वराज पोथी की पुस्तकीय संरचना से भी इस बात को समर्थन मिलता है कि गांधीजी की आलोचना कोई अंतरिम आलोचना नहीं बल्कि पूरे तौर से आत्मचेतन आलोचना है क्योंकि इसके अंतर्गत आधुनिक सभ्यता के उन सभी पहलुओं की आलोचना की गई है जिनके माध्यम से कोई सभ्यता मनुष्य के जीवन-संस्थान को चतुर्दिक रूप से व्याप्त करती है। उदाहरण के लिए हिंद स्वराज में 'इंग्लैंड की हालत' का चित्रण करते हुए गांधीजी विशेष रूप से पार्लियामेंटरी शासन-व्यवस्था की आलोचना करते हैं और अंत में कहते है कि यह अंग्रेजों का दोष नहीं बल्कि उनकी आधुनिक यूरोपीय सभ्यता का कसूर है। इससे यह भी तात्पर्य निकलता है कि गांधीजी की दृष्टि में पार्लियामेंटरी शासन-व्यवस्था अर्थात् संसदीय जनतंत्र जो बहुमत पर आधारित होती है, वह आधुनिक सभ्यता को बनाए रखने का शासनतंत्र है; क्योंकि इसके अंतर्गत सत्यासत्य और हेयोपादेयता का एकमात्र मानदंड बहुमत से समर्थित होना होता है। इसके अतिरिक्त गांधीजी रेलगाड़ी, वकील, डॉक्टर, गोला बारूद और मशीनों की आलोचना करते हुए वस्तुतः आधुनिक सभ्यता की क्रमशः यातायात-

व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था, चिकित्सा-व्यवस्था, सामरिक-व्यवस्था और अभियांत्रिकी की भी आलोचना करते हैं तथा साथ ही साथ विकल्प के रूप में 'सच्ची सभ्यता' को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। यद्यपि गांधीजी ने सच्ची सभ्यता की रूपरेखा को विस्तार से निरूपित नहीं किया है तथापि उनके वैकल्पिक सभ्यता बोध में धर्म-नीति पर आधारित हिंदुस्तानी सभ्यता दृष्टि की श्रेष्ठता का भाव मूल रूप से निहित है।'[11] अपनी सभ्यता दृष्टि और आधुनिक सभ्यता के नैतिक बलाबल को रेखांकित करते हुए गांधीजी कहते हैं कि ''हिंद स्वराज में जिस सभ्यता बोध को प्रस्तावित किया गया है वह द्वेष धर्म की जगह प्रेमधर्म को सिखाती है, हिंसा के स्थान पर आत्मबलिदान को रखती है, पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है।[12] इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिंद स्वराज में गांधीजी ने आधुनिक सभ्यता की मूलगामी आलोचना करते हुए उसकी हेयोपादेयता की जांच-पड़ताल के लिए एक व्यापक रूप-रेखा प्रस्तुत की है। यह कोई कामचलाऊ अंतरिम आलोचना नहीं।

अब गांधीजी की आलोचना का दूसरा पक्ष-अर्थात् 'आधुनिक सभ्यता और तकनीकी का अंतः संबंध' उनके विचार का अत्यंत ही महत्वपूर्ण पहलू है। उनकी दृष्टि में यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है। इसलिए गांधीजी की आज सर्वाधिक आलोचना भी इसी बात को लेकर होती है। द्रष्टव्य है कि गांधी-चिंतन में आधुनिक यंत्रों की भर्त्सना का मूल उनके साधन की पवित्रता के सिद्धांत में ही निहित है, क्योंकि यंत्र प्रथम दृष्टया साधन ही हैं। यह बात अलग है कि यंत्र अपने मौलिक स्वरूप में तटस्थ साधन नहीं कहे जा सकते। यदि यंत्रों को तटस्थ साधन मानकर विचार किया जाए तो उनके दुष्परिणामों का प्रमुख दायित्व प्रयोक्ता की नैतिक चेतना पर चला जाता है लेकिन यंत्र यदि अपने आप में तटस्थ साधन मात्र नहीं हैं तो उसके दुष्परिणामों को यंत्रों के स्वरूप से ही संबंधित मानना पड़ेगा। अतएव गांधीजी ने आधुनिक सभ्यता में मशीनों की भूमिका पर, विभिन्न प्रसंगों में विचार करते हुए, उपर्युक्त दोनों ही दृष्टियों से मशीनों की आलोचना की है।

प्रथमतः यांत्रिक उपकरणों की बेबाक आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि 'यंत्र तो सांप का ऐसा बिल है जिसमें एक नहीं सैंकड़ों सांप रहते हैं। पुनः वे कहते हैं कि यंत्र मरते-मरते यह कह जाता है कि मुझसे आप बचिए, होशियार रहिए। मुझसे अंततः आपको कोई फायदा होने का नहीं।'[13] ऐसे वक्तव्यों की प्रतीकात्मकता से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि गांधीजी यंत्रों को स्वरूपतः उनके प्रत्यय में ही नकारने का विचार रखते थे। द्वितीयतः, उनके कुछ वक्तव्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि वे यंत्र मात्र के विरोधी नहीं थे बल्कि यंत्रों के स्वरूप और उनके उपयोग की सीमा (हद) बांधने के पक्षधर थे। इसलिए वे कहते थे कि विज्ञान का विकास और यंत्रों के आविष्कार को लोभ का साधन नहीं बनना चाहिए।[14] तृतीयतः[15] उनके कुछ हिंद स्वराजोत्तर स्पष्टीकरणों से ऐसा अभिप्राय निकलता है कि वे यंत्रों के उपयोग के प्रति चयनधर्मी और परिसीमनवादी दृष्टिकोण रखते थे। उनकी इस दृष्टि में चयनधर्मिता का विशेषार्थ यंत्रों की प्रकृति और उनके प्रकार विषयक भेद में प्रतिफलित होती हुई प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए

वे शरीर, चरखा और दांत कुरेदनी को भी एक प्रकार का यंत्र मानते हैं और पुनः आगे जोर देकर यंत्रों को परखने की भी बात कहते हैं। उनकी दृष्टि में ऐसे यंत्र नहीं होने चाहिए जो काम न करने की स्थिति में आदमी अंगों को जड़ अथवा बेकार बना दे। इसका तात्पर्य यह है कि गांधीजी मनुष्य के सहयोगी यंत्र के विरोधी नहीं थे। उनका विरोध ऐसे यंत्रों से था जो मनुष्य को विस्थापित कर अपनी स्वायत्ता स्थापित कर लेते हैं। वे कहते थे कि टेढ़े तकुवे को सीधा करने वाले यंत्र का मैं स्वागत करता हूं लेकिन लुहार के तकुवे बनाने का काम ही समाप्त हो जाय, यह मेरा उद्देश्य नहीं हो सकता। चतुर्थतः, अंत में हम यह कहना आवश्यक समझते हैं कि गांधीजी सदैव इस बात को लेकर असंतुष्ट प्रतीत होते हैं कि आधुनिक सभ्यता और यंत्रों की आलोचना द्वारा जिस बात को वे लोगों के मन में बैठाना चाहते थे, उसे बैठा नहीं पाते थे। इसलिए वे महसूस करते थे कि आधुनिक सभ्यता ने बहुतायत लोगों को अपने मोह-जाल में इस तरह जकड़ लिया है कि लोगों को उससे मुक्त कर उनकी दृष्टि को सच्ची सभ्यता की ओर उन्मीलित करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। मानो पश्चिमी विज्ञान ने मनुष्य को आधुनिक सभ्यता का वरदान देकर उसे अपने नागपाश में बांध दिया हो।

अब यदि आधुनिक सभ्यता और यंत्रों की आलोचना के संदर्भ में मार्क्स और गांधीजी के विचारों की तुलना करें तो स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि मार्क्स की आलोचना आधुनिक सभ्यता के अंतर्गत पनपी एक व्यवस्था (पूंजीवादी व्यवस्था) की आलोचना है जबकि गांधीजी की आलोचना पश्चिमी विज्ञान के नेतृत्व में विकसित हो रही पूरी आधुनिक सभ्यता की आलोचना है। ऐसा भी नहीं कि गांधीजी हिंद स्वराज में आधुनिक सभ्यता के प्रति कोई सुधारवादी दृष्टिकोण रखते हैं, बल्कि उनकी आलोचनाओं की ध्वनि उसे एक सिरे से खारिज करने की प्रतीत होती है। इसके विपरीत मार्क्स अपने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में आधुनिक सभ्यता का ही एक साम्यवादी संस्करण प्रस्तावित करते हैं। जहां तक आधुनिक सभ्यता और यंत्रों के अंतः संबंध का प्रश्न है तो एतद्विषयक मार्क्स और गांधीजी की आलोचनाओं से कुछ बिंदु जो उभरकर सामने आते हैं वे हैं तकनीकीकरण की अतिवादिता और सभ्यता की अधिकायकता का विरोध तथा मनुष्य और मशीन के मध्य मुक्त संबंध का प्रश्न। ये तीनों बिंदु दोनों की आलोचनाओं में निहित समान और साझे महत्व के कहे जा सकते हैं लेकिन तब भी दोनों की आलोचनाओं के फलितार्थ को एक नहीं कहा जा सकता। द्रष्टव्य है कि मार्क्स ने यंत्रों की भूमिका पर आलोचनात्मक रूप से विचार आधुनिक सभ्यता के एक ऐसे घटक के रूप में किया है जिसके अतिचार से पूंजीवाद को बढ़ावा मिलता है। पुनः मार्क्स अपने ई.पी.एम. में जहां चार प्रकार के एलियनेशन की बात करते हैं वहां भी एलियनेशन के मूल कारण को वे आधुनिक सभ्यता की जीवन दृष्टि में न देखकर पूंजीवादी उत्पादन की पद्धति और तज्जन्य उत्पाद्य-उत्पादक संबंध में ही देखते हैं जिसे आधुनिक अभियांत्रिकी और भी बढ़ा देती है। गांधीजी यंत्रों के उपयोग और उनके स्वरूप की आलोचना जिस तरह से करते हैं उसमें मार्क्स की आलोचना के सभी पक्ष समाहित तो हैं ही लेकिन उससे आगे उसमें पश्चिमी विज्ञान की अतिवादिता की

आलोचना भी पूर्वगृहीत है जो अंततः एक वैकल्पिक विज्ञान [16] की संभावना में प्रतिफलित होती हुई प्रतीत होती है। पश्चिमी विज्ञान की अतिवादिता से गांधीजी के अभिप्राय को इस तरह समझा जा सकता है कि मनुष्य के जैव भाव में ही अपने शरीर को संदर्भ बनाकर प्रकृति को विनियोजित करने की प्रवृत्ति मनुष्य के अविकसित से अविकसित अवस्था में भी न्यूनाधिक रूप से देखी जा सकती है। यह प्रवृत्ति भी एक प्रकार की वैज्ञानिक प्रवृत्ति है और इस वैज्ञानिकता का मनुष्य के जीवन के अन्य आयामों से कोई विरोध नहीं है।[17] परंतु पश्चिमी विज्ञान आज मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा इन तीनों आयामों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है जबकि उसे शरीर-सेवा तक ही अपने कार्यक्षेत्र को सीामित रखना चाहिए और मन तथा आत्मा के आयाम जो सत्यान्वेषण और अभीप्सा के स्वतंत्र आयाम हैं; उन्हें अपने हस्तक्षेप से मुक्त रखना चाहिए। आज पश्चिमी विज्ञान मनुष्य के तन, मन और आत्मा को सत् विषयक अपनी नितांत भौतिकवादी अवधारणा में घटित कर एक जीवन-दृष्टि का रूप ग्रहण कर लिया है और इस तरह वह सभी प्रकार के धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन दृष्टियों का विस्थापक हो गया है। आधुनिक विज्ञान यदि अपनी भूमिका शरीर-सेवा तक सीमित रखे तो धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन दृष्टियों से उसका कोई विरोध ही नहीं होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गांधीजी का विरोध वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं बल्कि वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि से है। द्रष्टव्य है कि जीवन-दृष्टि अपने आप में वैज्ञानिक दृष्टि से व्यापक होती है, अतएव वैज्ञानिक दृष्टि को जीवन-दृष्टि का एक अंग होना चाहिए, न कि संपूर्ण जीवन-दृष्टि। पश्चिमी विज्ञान के प्रति गांधीजी की ऐसी ही परिसीमनवादी दृष्टि में वैकल्पिक विज्ञान का सूत्र निहित है और इसी परिसीमा में मनुष्य और विज्ञान के तकनीकी उपकरणों के मध्य मुक्त संबंध की संभावना भी निहित है। आधुनिक यंत्रों को पहचानने और उनका हद बांधने से गांधीजी के तात्पर्य का मार्क्स से भिन्न यही गूढ़ार्थ है।

गांधीजी के अतिरिक्त 20वीं शताब्दी में कोई दूसरा व्यक्ति यदि आधुनिक विज्ञान और तकनीकी की ऐसी मूलगामी आलोचना करता हुआ दिखाई पड़ता है तो वह है मार्टिन हाईडेग्गर। एक सभ्यता-विज्ञानी के रूप में आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के सारतत्त्व की गहरी समझ हाईडेग्गर के दार्शनिक चिंतन का बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष है। मार्क्स और गांधीजी जहां तकनीकी को आधुनिक सभ्यता के एक महत्वपूर्ण उपकरणात्मक घटक के रूप में देखते है वहीं हाइडेग्गर की दृष्टि में तकनीकी अपने आप में एक नए प्रकार की विश्वसभ्यता की उद्भाविका है। ऐसी विश्व सभ्यता जो मनुष्य को उसके ही घर से बेघर कर देने वाली, दुनिया से दैवी दीप्ति को उड़ा देने वाली है।[18] इसका उद्देश्य 'रीजन' की अगुआई में जीवन और जगत् का पूरे तौर से लौकिकीकरण कर देना है और लौकिकीकृत जगत् के रंग-रोगन के लिए तकनीकी को विश्वकर्मा बना देना है। हाइडेग्गर के अनुसार तकनीक का अपना स्वरूप या निजी अर्थ स्वयं तकनीकी नहीं है। ऐसा माना जाता है कि तकनीक एक मानुषी कृति है; उसके उद्देश्यों की पूर्ति का एक तटस्थ साधन मात्र है। यह सही नहीं है और न ही इससे तकनीक के मूलतत्व का पता

ही चलता है। गणितीय विज्ञान और तकनीकी को प्रयोग मात्र मान लेना दोनों के तात्विक स्वरूप और अंतर पर पर्दा डालना है। विज्ञान स्वयं में प्रायोगिक है। वह वस्तुजगत् का साधारण निरेपक्ष ज्ञान नहीं है। वैज्ञानिक ज्ञान में जिज्ञासा का स्वरूप विशुद्ध ज्ञानमात्र के लिए नहीं बल्कि सत्ता का एक विशेष रूप में आविर्भाव और वस्तुओं का एक विशेष प्रकाश में ग्रहण है। तकनीकी, वस्तुतः सत्ता के उसी विशेष रूप को आविर्भूत करने और वस्तुओं को उसी प्रकाश में ढालने का सांचा बनती है इसलिए तकनीक का सरभूत अर्थ है 'जगत् को एक विशेष सांचे में मढ़ देना' जिसे हाइडेग्गर अपनी शब्दावली में Gestell अथवा Enframing कहते हैं। हाइडेग्गर के दर्शन का मूलभूत प्रश्न है कि 'ऐसा क्यों है कि वस्तुएं हैं, ऐसा क्यों नहीं है कि वस्तुएं नहीं हैं'? यह प्रश्न वस्तुओं के होने की, उनकी भवितव्यता का प्रश्न है। तकनीक वस्तुओं के होने की निजता को ही अन्यथा कर इतिहास की एक अभूतपूर्व गति को जन्म देती है और इसकी परिणति अंततः मनुष्य के द्वारा सत्ता की विस्मृति में होती है। तकनीक के लिए यह सारा जगत् जैसे एक संसाधन मात्र है वैसे ही मनुष्य भी एक वस्तु ही है। तकनीक का कार्य दोनों को एक विशेष सांचे में ढालकर एक दूसरे के सम्मुख प्रस्तुत होने के लिए विवश कर देना है। हाइडेग्गर विश्व के निर्बाध तकनीकीकरण को एक प्रकार की नास्तिकता (टेक्नोलॉजिकल निहिलिज्म) से अभिहित करते हैं और इस नास्तिकता से जो सर्वाधिक खतरे में है, वह है मनुष्य की प्रकृति। इसने मनुष्य की समझदारी को इस कदर बदल दिया है कि उसकी मनुष्यता ही विलुप्त प्रायः हो रही है। हाइडेग्गर हमें अगाह करते हैं कि सबसे बड़ा जोखिम परमाणविक युद्ध का नहीं और न ही इसी प्रकार के किसी अन्य विध्वंसकारी तकनीक का है, बल्कि वास्तविक खतरा इस बात में निहित है कि कहीं एक दिन ऐसा न हो जाए कि जीवन और जगत् की वैज्ञानिक-तकनीकी समझ को ही समझ का एकमात्र प्रकार स्वीकार कर लिया जाए।[19] आधुनिक सभ्यता के वर्तमान दौर में वस्तुतः ऐसी ही समझ एकरेखीय रूप से स्वीकार्य हो रही है। आज मनुष्य तकनीकी के अधिभार के समक्ष असहाय सा होकर रह गया है। यह मनुष्य की रुचि, प्रवृत्ति, प्ररेणा और समस्त अभीप्साओं को अपने ही सांचे में ढ़ालने लगा है और उसके सांचे से जो बाहर है वह सिर्फ बकवास।

अतएव हाइडेग्गर तकनीक के सार तत्त्व को समझने के उपरांत विश्व के निर्बाध तकनीकीकरण को मनुष्य की समझदारी की समस्या के रूप में देखते हैं और उनकी दृष्टि में इसका समाधान भी मनुष्य की समझदारी में ही निहित है। इसलिए हाइडेग्गर के दार्शनिक चिंतन का एक विशेष लक्ष्य विश्व के अप्रतिहत तकनीकीकरण के निहितार्थों का विश्लेषण कर तद्विषयक मनुष्य की समझदारी को बदलना है और इसके द्वारा मनुष्य को तकनीकी के साथ मुक्त संबंध के लिए तैयार करना है। हाइडेग्गर अपने एक महत्वपूर्ण आलेख 'दी क्वेश्चन कन्सरनिंग टेक्नोलॉजी' [20] में मनुष्य और तकनीकी के मध्य मुक्त संबंध को स्पष्ट करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यद्यपि विज्ञान और तकनीकीजन्य विकास की अनदेखी नहीं की जा सकती लेकिन उसे इस मूल्य पर स्वीकार भी नहीं किया जा सकता कि वह मनुष्य के मनुष्य

होने को ही अर्थहीन बना दे। मनुष्य और तकनीक के मध्य मुक्त संबंध का मतलब तकनीकी संसाधनों को मिटाना नहीं है बल्कि उनका प्रयोग उसी सीमा तक किया जाना चाहिए जिस सीमा तक उन्हें अत्यावश्यक ठहराया जा सके। तकनीकी के प्रति ऐसी परिसीमनवादी दृष्टि से ही तकनीकी के अनावश्यक बोझ से मुक्त जीवन की कला विकसित की जा सकती है। हाइडेग्गर अपने द्वारा दिए गए एक विश्वप्रसिद्ध साक्षात्कार [21] में इस बात को जोर देकर कहते हैं कि 'तकनीकी नास्तिकता' मनुष्य की कोई ऐसी नियति नहीं जिससे मुक्त होना संभव ही नहीं परंतु इससे वांछित मुक्ति किसी राजनैतिक कार्ययोजना के द्वारा संभव न हो कर 'प्रोजेक्ट ऑफ-थॉट' के द्वारा संभव है। चूंकि तकनीकी ने हमारी सोच को ही बदला है, इसलिए उस सोच को ही बदलकर जीवन और जगत् के मौलिक (ओरिजिनल) स्वरूप को आत्मासात् किया जा सकता है। इस प्रकार के वैचारिक बदलाव की संभावना हाइडेग्गर जापान, रूस, चीन और भारत की प्राचीन बौद्धिक परंपरा और जीवन शैली में देखते हैं जिसे वे अपने-अपने तरीके से क्रियान्वित कर सकते हैं। यह कहते हुए उनका यह भी मानना है कि पश्चिमी मन किसी पौर्वात्य अनुभव के सहयोग से अपने दृष्टिकोणों में इस प्रकार का आमूल परिवर्तन नहीं कर सकता जिससे कि वह निरंकुश तकनीकी नास्तिकता के चक्रव्यूह से उबर सके। यह सही है कि विचार के द्वारा विचार को बदला जा सकता है लेकिन चिंतन की प्रकृति ही ऐसी है कि उसमें रूपांतरण स्वकीय विचार परंपरा के अंतर्गत ही घटित होकर सार्थक होता है। अस्तु, पाश्चिमात्य मन की दुर्बलता और तकनीकी नास्तिकता के प्रतिरोध की अपरिहार्यता को भांपते हुए हाइडेग्गर ने उचित ही कहा है कि 'इन्हें कोई ईश्वर ही बचा सकता है।'

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना का उपसंहार करते हुए हम कह सकते हैं कि मार्क्स, गांधीजी और हाइडेग्गर तीनों ही आधुनिक सभ्यता और उसके तकनीकी पक्ष की आलोचना अपने-अपने ढंग से करते हैं। इसमें मार्क्स की आलोचना जहां पूंजी को केंद्र में रखकर की गई है वहीं गांधीजी की आलोचना मानवीयता-केंद्रित है और हाइडेग्गर की आलोचना मानव विषयिता-केंद्रित है। अपनी आलोचना के द्वारा हाइडेग्गर मर्मस्पर्शी दार्शनिक तरीके से यह बता पाने में सफल होते हैं कि आधुनिक तकनीकी सभ्यता की उपलब्धियों की चकाचौंध में मनुष्य ने अपने स्वत्व को किस प्रकार खोया है। वह यह भी मानते हैं कि संसदीय जनतंत्र का राजनैतिक एजेंडा और साम्यवाद आधुनिक सभ्यता की तकनीकी निरंकुशता का प्रतिरोध करने के लिए पर्याप्त नहीं।[22] यदि उनकी इस टिप्पणी को मान भी लिया जाए तो इस संकेतित अपर्याप्तता को गांधीजी की आलोचना और उनके वैकल्पिक सभ्यता बोध पर लागू नहीं किया जा सकता। वस्तुतः मार्क्स और हाइडेग्गर दोनों ही आधुनिक तकनीकी की आलोचना करते हुए विकल्प रूप में जीवन और जगत् की प्राक् वैज्ञानिक समझ को ही प्रस्तावित कर सकते हैं। यह उनके भारतीय न होने अर्थात् पाश्चिमात्य होने की सीमा है परन्तु यहां अवधेय है कि उनके इस प्रस्ताव के मूल में मनुष्य के जीवन का संवेगात्मक पक्ष ही पुनरोद्घाटित होता है जिसे आधुनिक युग को नेतृत्व प्रदान करने वाली 'सार्वभौमबुद्धि' के द्वारा समता और स्वतंत्रता के

नाम पर दबा दिया गया था परंतु गांधीजी आधुनिक सभ्यता की आलोचना करते हुए विकल्प रूप में जिस सभ्यता बोध को प्रस्तावित करते हैं और अपने 'ग्राम स्वराज' की संकल्पना में उसकी एक स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं, उसमें एक ओर आधुनिक तकनीकी की निरंकुशता का दबदबा नहीं है तो दूसरी ओर उसके आधार में मनुष्य का संवेगात्मक पक्ष न होकर एक उदात्त आध्यात्मिक प्रज्ञा है। गांधीजी के इस सभ्यता बोध में मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण, प्रकृति का विदोहन और तकनीकी द्वारा मनुष्य का वस्तुकरण तथा विस्थापन के लिए कोई अवकाश ही नहीं है। अतएव निष्कर्षात्मक रूप में यह कहा जा सकता है कि हाइडेग्गर ने आधुनिक तकनीकी के मूलतत्व को जिस दार्शनिक गहराई से समझा है और उसकी आलोचना की है, उससे गांधीजी की आलोचना को और अधिक समृद्ध किया जा सकता है लेकिन मार्क्स और हाइडेग्गर बदले में जिस विकल्प को प्रस्तावित करते हैं अथवा कर सकते हैं, वह गांधीजी के वैकल्पिक सभ्यता बोध से संपुटित होकर ही संपूर्ण हो सकती है।

●

संदर्भ एवं टिप्पणियां-

1. याक बारजून, फ्रॉम डाउन टु डिकेडेंस : 500 इयर्स ऑफ वेस्टर्न कल्चरल लाइफ, हार्पर कालिज्म-2000
2. आर्यन पथ, हिंद स्वराज्य विशेषांक, सितंबर 1938
3. मैनिफेस्टो ऑफ दी कम्युनिस्ट पार्टी, पृ. 70, फॉरेन लैंग्वेजेज पब्लिशिंग हाउस, मास्को-1948.
4. वही - पृ. 72
5. यशदेव शल्य, समसामयिक चिंताएं, पृ. 72, राका प्रकाशन, इलाहाबाद
6. मोहनदास करमचंद गांधी, हिंद स्वराज के बारे में, जनवरी 1921, यंग इंडिया (यंग इंडिया के गुजराती अनुवाद से)
7. मैनिफेस्टो ऑफ दी कम्युनिस्ट पार्टी, वही, पृ. 51
8. वही. पृ. 48-49
9. गांधीजी इस संदर्भ में 'महापाप' शब्द का प्रयोग हिंद स्वराज के 'मशीनें' नामक 19 वें अध्याय में इस तरह से किया है- यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है, ऐसा मैं तो साफ देख सकता हूं।
10. गांधीजी हिंद स्वराज के 13वें अध्याय में एक प्रश्न (सभ्यता कहें तो किसे कहें) के उत्तर में कहते हैं कि 'मैं यह मानता हूं कि जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखाई है, उस तक दुनिया में कोई नहीं पहुंच सकता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं, उनकी बराबरी कर सके, ऐसी चीज देखने में नहीं आई। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गई, जापान पश्चिम के शिंकजे में फंस गया और चीन का कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन हिंदुस्तान गिरा-टूटा जैसा भी हो, आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है।

11. गांधीजी ने हिंद स्वराज के छः अध्याय 'सभ्यता का दर्शन' नामक अध्याय में आधुनिक सभ्यता को शैतानी और कलियुगी पद से संबोधित किया है

12. द्रष्टव्य-'हिंद स्वराज के बारे में', जनवरी 1921, यंग इंडिया

13. संदर्भित दोनों वक्तव्य हिंद स्वराज के 'मशीन' नामक अध्याय में द्रष्टव्य हैं

14. 1924 में रामचंद्रन और गांधीजी के बीच हुए संवाद से

15. वही

16. 'वैकल्पिक विज्ञान' विषयक गांधीजी की दृष्टि के लिए द्रष्टव्य-आशीष नंदी, दी इंटीमेट एनिमी : लॉस एंड डिस्कवरी ऑफ सेल्फ अंडर कोलोनियलिज्म, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

17. गांधीजी विज्ञान के इसी स्वरूप को ध्यान में रखते हुए विज्ञान की प्रशंसा उसकी तीन महान उपलब्धियों के लिए करते हैं, जिसमें पहला है- अन्वेषण की वैज्ञानिक प्रवृत्ति, दूसरा है-प्रकृति की गहरी समझ और तीसरा है-जीवन के संगठनात्मक पक्ष का विकास। इस प्रशंसा को आधुनिक पश्चिमी विज्ञान के उस स्वरूप की प्रशंसा नहीं समझनी चाहिए जो मूलगामी रूप से ही जीवन और जगत् के प्रति एक तकनीकी समझ को लेकर विकसित हुआ है।

18. द्रष्टव्य, Martin Heidegger's "Letter on Humanism", Where Heidegger speaks of homelesness as the destiny of the modern world within the history of being and as expressd through technology.

19. Martin Heidegger, "Memorial Address", In discourse on thinking, trans. John M. Anderson and E. Hans Freund, New York : Harper colophon Books, 1969, P.56.

20. द्रष्टव्य सी.बी.के. जॉर्ज का आलेख 'टेक्नोलॉजी एंड दी मॉडर्न प्रेडिकामेंट हाइडेग्गर ऑन दी सेविंग ग्रेस', जे.आई.सी.पी.आर. XXV-1 अंक जनवरी-मार्च, 2008, पृष्ठ 95.

21. See, Martin Heidegger, "Only a God Can save us : Der spiegel's Insterview with Martin Heidegger" trans. Maria P.Alter and John D.Caputo, In The Heidegger Controversy : A Critical Reader, ed. Richard wolin, MIT press, 1993, 111-113.

22. ogh&i`- 105 Here, Heidegger states unambiguously that neither democracy nor communism could give birth to a genuine confrontation with the technological world', meaning that such a confrontation is called for.

'अछूत' में समाया गांधी दर्शन

(संदर्भ : मुल्कराज आनंद लिखित अनटचेबिल)

नमिता निंबालकर

(अंग्रेजी से लिप्यंतरण : धरवेश कठेरिया)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम महात्मा गांधी की उपस्थिति के बिना अकल्पनीय है। दक्षिण अफ्रीका में सक्रिय राजनीति के विशाल अनुभव के साथ गांधीजी ने अपनी वापसी पर भारत में न केवल स्वतंत्रता आंदोलन को दिशा दी बल्कि समाज तथा सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपना प्रभाव छोड़ा। 98 संस्करणों की 'दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी' नामक पुस्तक जिसमें 4 जुलाई, 1888 से 30 जनवरी, 1948 तक का उल्लेख है। भारत तथा विश्व की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, भाषाई, शिक्षा तक राजनीतिक ऐतिहासिक तथा दार्शनिक गतिशीलता पर गांधीजी के विलक्षण लेखन का साक्ष्य है। इसके विपरीत आजादी के पूर्व तथा पश्चात् की सामाजिक गतिशीलता से संबंधित साहित्य भी गांधीजी के आचार-विचार तथा कार्यों से प्रभावित थे फिर चाहे वह काव्य हो गद्य या नाट्य, काल्पनिक या वास्तविक साहित्य, गांधी की उपस्थिति हर कहीं महसूस होती। इसके परिणाम-स्वरूप गांधीवादी चेतना से संबंधित साहित्य का प्रकाशन हुआ। इस साहित्य में गांधीजी के विचार मंथन की छाप है। संघर्षों के मध्य मूल्य प्रणाली, सत्य तथा अहिंसा एवं अपनी पहचान की तलाश, स्वाभिमान तथा संस्कारों के साथ आधुनिकता के मुकाबले जैसी सोच शामिल है। काई निकोलसन के अनुसार महात्मा गांधी एक ऐसे चरित्र हैं जो अपने जीवनकाल तथा उसके पश्चात् भी इंडो एंग्लियन काल्पनिक साहित्य पर छाए रहे।' स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विभिन्न सामाजिक कुरीतियों जैसे अस्पृश्यता, महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु संघर्ष तथा धार्मिक एवं सामाजिक सद्भाव जागृत करने हेतु गांधीजी द्वारा विकसित सिद्धांतों ने भारतीय लेखकों में राष्ट्रीय गौरव तथा उद्देश्य की नई भावना जागृत की।

हालांकि कोई भी व्यक्ति गांधीजी द्वारा रचित साहित्यिक संस्करणों को नजरअंदाज नहीं कर सकता। गांधीजी स्वयं 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' (द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ) के द्वारा इंडो एंग्लियन साहित्य में अपना विशेष अधिकार रखते थे। (सत्य के साथ मेरे

प्रयोग) हृदय के निर्विवाद सत्यता तथा साहसिक धारणा का यकीनन एक अद्वितीय वर्णन है। गांधी का लेखन 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है' से अधिक उनके जीवन सिद्धांत तथा कार्यों ने साहित्यिक जगत के आलोचनात्मक बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया। विभिन्न भारतीय भाषाओं में लेखकों द्वारा किए गए लेखन कार्यों ने भारतीय भूमि जहां विभिन्न भाषाओं तथा रीति-रिवाजों की बहुतायत है, ने गांधीवादी दर्शन के विस्तार में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। के. आर. निवास अयंगर ने संक्षिप्त में गांधीजी को तत्कालीन लेखकों पर रचनात्मक प्रभाव बताया। अपने अहिंसा संबंधी प्रयासों द्वारा गांधीजी ने आम नागरिकों को अपनी पहचान तथा संस्कृत के प्रति जागरूक तथा गौरवान्वित होना सिखाया।

मुल्कराज आनंद, सरोजिनी नायडू, डोमिनीक लापिएर, जॉर्ज ऑरवेल, खुशवंत सिंह, वीएस नॉयपाल से लेकर गांधी युग तथा बाद के लगभग सभी समकालीन लेखकों द्वारा गांधीजी के जीवन को कहीं न कहीं अपने लेखन कार्य में शामिल किया गया। अपने कार्यों को संपादित करने के दौरान इन लेखकों ने गांधीजी के शब्दों तथा विचारों की अनेक व्याख्या की तथा उनके सिद्धांतों एवं विचारों के रचित छंदों पर अनेक काल्पनिक चरित्र गढ़े।

प्रारंभ में फ्रांसीसी लेखक रोलैंड रोमैन, दानिश लेखक एलन हॉरून तथा अमेरिकी इंग्लिश लेखकों जैसे जॉर्ज ऑरवेल, एडमंड जोंस एवं अन्य लेखकों ने गांधीजी के विचारों तथा कार्यों पर लेखन कार्य किया। रोमैन ने अपनी पुस्तक 'द मैन हु बिकेम वन विद द यूनिवर्सल बीइंग' में गांधीजी को एक आदर्श राष्ट्रवादी निरूपित करते हुए उनसे यूरोप के युवाओं का भी मार्गदर्शन करने का आग्रह किया। पर्ल एस बक ने भारत को चेताया कि वह अपने गांधी के योग्य होने की हिम्मत करे।

गांधीजी के सादा जीवन उच्च विचार के मत को भी अंग्रेजी भाषा के साहित्यिक लेखकों द्वारा अपने लेखों में शामिल किया गया। मुख्य रूप से राजा राव, मुल्कराज आनंद, आर. के. नारायण जैसे लेखक जो अपनी कलम से विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में तत्कालीन समाज की वास्तविक तसवीर उजागर करते थे। उन्होंने भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगरीय इलाकों में गांधीजी के प्रभावों को उजागर किया जो इस बात का सत्यापन है कि किस प्रकार गांधीजी ने विकास संबंधी संचार द्वारा आम जनों की विचारधारा तथा रहन-सहन के तरीकों में सकारात्मक बदलाव कर उनके जीवन को प्रभावित किया।

इन लेखकों के लगभग सभी उपन्यासों में ऐसी सत्य घटनाओं तथा विचारों के उदाहरण विशेष रूप से प्रस्तुत किए गए जो वास्तविकता में गांधीजी द्वारा उनके विभिन्न स्थानों में भ्रमण के दौरान कही गई। गांधीजी की विचारधारा तथा उसका सार जो उपन्यासों में अकसर प्रतिनिधि माध्यमों तथा घटनाओं के रूप में चित्रित होता है वह निम्नलिखित है-

1. सभी धर्मों विशेषता हिंदू तथा मुसलमानों के मध्य एकता का भाव।

2. आम जनों को विरोध प्रदर्शन के दौरान उग्र रूप धारण करने से परहेज करना चाहिए बल्कि धरना देने, लूटपाट करने तथा लाठी, धारदार या अन्य हथियारों का उपयोग न करते हुए अहिंसा का मार्ग अपनाना चाहिए।

3. छुआछूत, जातिवाद विभिन्न समुदायों के मध्य शत्रुता, नफरत, झूठ तथा द्वेष जैसी कुरीतियों को समाप्त कर भाईचारे, एकता तथा सामंजस्य की भावना को बढ़ावा देना चाहिए।

4. तंबाकू, गांजा तथा धूम्रपान के सेवन जुआ, दुर्वचनों के प्रयोग, वेश्यावृत्ति, यौन अपराध, घरेलू हिंसा तथा महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार पर रोक।

5. विदेशी वस्तुओं, विदेशी शिक्षा, आर्थिक तथा कानूनी संस्थानों का बहिष्कार।

6. कताई-बुनाई, खेती, शिक्षा, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया, यौन इच्छाओं पर नियंत्रण, परिवार नियोजन, सादा जीवन, त्याग तथा स्वःशुद्धीकरण जैसी प्रथाओं को बढ़ावा।

7. लोग मदद मांगने वालों से विश्वासघात ना करें, वे अपने देश, साधनों तथा क्षमताओं के प्रति सदा ईमानदार, प्रगतिशील सोच तथा आत्मविश्वास रखें।

8. सत्य के प्रति विश्वास, सत्य को सहन करने की शक्ति तथा जीवन में सत्य को लागू करने की क्षमता के साथ-साथ स्वराज की अनुभूति तथा समझ, ईश्वर के प्रति समर्पण एवं एकता की ताकत पर विश्वास रखें।

इस लेख में मुल्कराज आनंद के 1935 में प्रकाशित 'अछूत' में गांधीजी के सिद्धांतों के प्रभावों को समझने तथा अनुरेखन करने का प्रयास है। मुल्कराज आनंद साबरमती आश्रम में अपने प्रवास के दौरान गांधीजी के प्रभाव में आए। तदोपरांत उन्होंने अपनी अंग्रेजों जैसी वेश-भूषा और रहन-सहन का त्याग कर, सादा भारतीय जीवन और मूल्यों का पालन करना शुरू किया। साबरमती आश्रम में निवास के दौरान वे गांधीजी के संपर्क में आए, जिसके परिणाम-स्वरूप उनमें समकालीन भारतीय परिस्थितियों के प्रति गहरी समझ और सहानुभूति जागृत हुई। आनंद द्वारा अपने प्रथम उपन्यास 'अछूत' में बाखा नमक एक मेहतर बालक के जीवन को चित्रित किया गया है। अठारह वर्षीय बाखा जो कि लाखा नामक एक मेहतर का बेटा है, बीसवीं सदी का प्रतिनिधित्व करता है तथा उसका अंतर्मन नवीन विचारों का अनुसरण करता है।

मुल्कराज आनंद की भारतीय समाज में गहरी पैठ जमाए सामाजिक द्वेष को उजागर करने की प्रतिबद्धता के फलस्वरूप बाखा नामक चरित्र का सृजन हुआ। वह युवा (बाखा) की उच्च जाति के लोगों के खिलाफ अद्वितीय संवेदनशीलता प्रदर्शित करना चाहते थे जिनका मानना था कि मात्र उनके स्पर्श से वे कलुषित हो जाएंगे। अस्पर्श (अछूत) की प्रस्तावना में ई. एम. फॉस्टर ने व्यक्त किया कि बाखा एक वास्तविक व्यक्ति है जो एक स्नेही परंतु नाकाम, कभी ताकतवर, कभी कमजोर परंतु पूर्णतः भारतीय है। यहां तक कि उसकी शारीरिक काया भी विशिष्ट है। हम उसे उसके चौड़े बुद्धिमत्ता से परिपूर्ण चेहरे तथा सुंदर बनावट से पहचान सकते हैं। आनंद ने अपने असाधारण कौशल का परिचय देते हुए बाखा की बेबसी, निराशा, चिंता तथा पीड़ा को इस हद तक चित्रित किया कि वह स्वयं की रचना का एक अवतार बन गया। दूसरे शब्दों में कहें तो रचना एवं रचनाकार एक बिंदु पर आकर एक दूसरे में समाहित हो गए हैं। उपन्यास अनटचेविल अस्पर्श (अछूत) में बाखा के चरित्र के माध्यम से आनंद ने समाज

में उसके प्रति किए जाने वाले अमानवीय कृत्यों को उजागर किया है। अस्पर्श (अनटचेविल) एक निम्न जाति के लड़के बाखा के जीवन के एक दिन की घटनाओं की प्रदर्शित करता है जो उसके साथ बुलाशाह नामक नगर में घटित हुई।

यह उपन्यास 'अनटचेविल' जैसे कि नाम से ज्ञात होता है कि एक पिछड़े परिवार पर केंद्रित है जिसमें एक मेहनती पुत्री है, सपने देखने वाला एक पुत्र तथा एक लापरवाह पिता है। जिनकी बोझल जिंदगी का कोई उद्देश्य या मायने नहीं है। आनंद ने बिना किसी दिखावे के भारतीय समाज में जाति प्रथा की परिष्कृत तथा नग्न तस्वीर अपने पाठकों के समक्ष प्रदर्शित की है। इस उपन्यास का केंद्रीय चरित्र बाखा सभी जातियों द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाता है। नीची जातियों द्वारा भी वह मानव मल के समान अछूत है जिसे वह साफ करता है। सभी के द्वारा बहिष्कृत उसको शहर से अलग हटकर बनी अपनी झोपड़ी में शांति मिलती है जहां उसकी बहन सोहनी भी रहती है। बाखा एक ऐसे युवा का प्रतिनिधित्व करता है जो अंग्रेजों तथा चरण सिंह के माध्यम से अपने पारिवारिक परिवेश से परे सोचता है।

मुल्कराज आनंद ने निम्न जातियों तथा अछूतों के लिए शिक्षा के अभाव से संबंधित सामाजिक समस्याओं पर प्रकाा डाला है। बाखा के अंदर पढ़-लिखकर शिक्षित बनने तथा अंग्रेजी बाबू जैसा जीवन यापन करने की प्रबल इच्छा है परंतु उसके परिणाम-स्वरूप उसे निराशा हाथ लगती है। वह स्कूल जाने की अनुमति प्राप्त करने हेतु बहुत लड़ता है, रोता है, परंतु उसके पिता उसे कहते हैं कि स्कूल बाबू के लिए है, ना कि भंगियों को शिक्षित करने के लिए। वह एक मेहतर का पुत्र है और कभी बाबू नहीं बन सकता। ऐसी कोई शाला नहीं है जहां उसे दाखिला मिल सके क्योंकि दूसरे माता-पिता कभी भी अपने बच्चों को एक मेहतर के पुत्र के स्पर्श से कलुषित नहीं होने देंगे। उसने स्वयं को शिक्षित करने की कोशिश की। अंग्रेजी की पुस्तक खरीदने के बावजूद वह अक्षरों को पहचानने से आगे नहीं बढ़ सका। मुल्कराज आनंद ने बड़ी ही चतुराई से बाखा के मित्रों के माध्यम से बचपन की मासूमियत तथा अशिक्षा के प्रभाव को चित्रित किया है। उसके मित्र बड़ों द्वारा पालन की जाने वाली जाति प्रथा तथा वर्ण प्रथा को नहीं मानते। वे औपचारिक शिक्षा हेतु स्कूल ना जाने तथा साथ-साथ खेलने और मौज करने से बेहद खुश हैं।

एक बार बाखा अपने मेहनत से कमाए पैसे से मिठाई खरीदता है परंतु उसके अछूत होने के कारण हलवाई उसे जलेबी का पैकेट फेंककर देता है ताकि वह उसके स्पर्श से दूषित ना हो जाए। बाखा इस अपमान को जो उसके जैसे लोग सदियों से सहते आए हैं पर ध्यान दिए बगैर जलेबियों का आनंद लेने में मस्त हो जाता है साथ ही वह अंग्रेजी के पाठ के बारे में सोचने लगता है जो उसे बाबू के बेटे से सीखना है। इन सबके बीच वह यह नहीं जान पाता कि कब उसने एक उच्च जाति के लालाजी को स्पर्श कर दिया जो अब उस पर बरस रहे हैं।

सड़क के एक तरफ रहो नीची जाति के दरिंदे, तूने मुझे बताया क्यों नहीं, सूअर तुझे पता है, तूने मुझे स्पर्श करके कलुषित कर दिया है भंगी अब मुझे अपने-आपको पवित्र करने के लिए स्नान करना पड़ेगा और यह नई धोती और कमीज मैंने आज सुबह ही पहनी थी।'

जब आनंद अपने उपन्यास में यह बताते हैं कि किस प्रकार निम्न जाति के लोग भी मेहतरों से अमानवीय व्यवहार करते हैं जो मानव मल साफ करते हैं, तब स्थिति और भी दुःखद हो जाती है। गुलाबो, रामचरण की मां जो जाति से खुद एक धोबिन है, सोहिनी को नापसंद करती है, क्योंकि एक नीची जाति का होने के बावजूद सोहिनी एक आकर्षक काया की धनी है। गुलाबों को अपने पुत्र रामचरण की बाखा से मित्रता पर भी आपत्ति है। सोहिनी से जलन के कारण गुलाबो उसे कुएँ की दीवार से टकराने की कोशिश करती है परंतु वजीरो उसे रोककर शांत करती है।

बाखा आनंद के उपन्यास का नायक है जबकि सोहिनी जो अपने भाई की पीड़ा को समझती है और हमेशा उसका साथ देती है। दूसरी मुख्य भूमिका को चरितार्थ करती है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में धर्म तथा संस्कृति दो महत्वपूर्ण ताकतें हैं और बाखा दोनों ही ताकतों के समक्ष खरा नहीं उतरता। उसके लिए गांधीजी उसकी एकमात्र उम्मीद है कम से कम गांधीजी ने उसे एक ऐसे समाज का स्वप्न दिखाया है जहां एक दिन निम्न जाति के लोगों के प्रति अलगाव की भावना तथा अमानवीय व्यवहार नहीं किया जाएगा। बाखा का दर्द अपनी पराकाष्ठा पार कर रहा है परंतु उसने उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा है। जब पंडित कालीनाथ उसकी बहन को यह इल्जाम लगाकर दंडित करते हैं कि उसने उन्हें तथा मंदिर को दूषित कर दिया है तब बाखा को थप्पड़ से भी ज्यादा दर्द होता है जो उसे एक हिंदू ने मारा था। दर्द उसके जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बन चुका है जो एक चक्र की भांति हर दिन खुद को दोहरा रहा है जैसे कोई भारी वस्तु उसके पैरों से बंधी हो और उसे लगातार नीचे खींचती हो। उसी प्रकार बाखा को प्रतिदिन हिंदू समाज द्वारा खुद को खारिज किए जाने के एहसास से गुजरना पड़ता है। संपूर्ण मानवता द्वारा किनारा किए जाने के बावजूद बाखा जंग हारने को तैयार नहीं है। आखिर में आनंद द्वारा यह साबित किया जाता है कि वह समाज की गंदगी को साफ करने का एक अत्यंत कठिन कार्य कर रहा है। वह उसे साफ कर रहा है परंतु खुद पर हावी नहीं होने देगा। अस्पृश्यता के खिलाफ उसकी जंग जारी रहेगी हालांकि जब भी उसका विवेक उससे उत्तर चाहता है, यह सवाल उसके मन पर भारी पड़ता है।

'उन लोगों के लिए मैं एक मेहतर हूं मेहतर एक अछूत यही उचित शब्द है अछूत मैं एक अछूत हूं।'

आनंद ने एक दूसरे सामाजिक मुद्दे को पूरी गंभीरता से उठाया है धर्मांतरण का मुद्दा। कर्नल हचिंसन हमेशा बाखा को सांत्वना देने की कोशिश करते। वह क्रिश्चियन साल्वेशन आर्मी का हिस्सा है जो अछूतों के धर्मांतरण की कोशिश कर रही है। बाखा एक कर्नल के मुख से खुद के प्रति सांत्वना से भरे शब्द सुनकर अचंभित है। कर्नल उससे यीशु की बातें करता है। जब बाखा ने पूछा यीशु कौन है? तो उसने कहा कि वह इस बारे में चर्च में बताएगा। उसने बाखा को चर्च की तरफ घसीटना शुरू कर दिया। वह यीशु की महिमा मंडित करने वाले गीत गाता परंतु यह सब बाखा की सोच से परे था। यीशु, राम तथा दूसरे देवताओं के मध्य भिन्नता

उसे अचंभित करती है। जल्द ही वह उन मंत्रों से ऊब गया परंतु वह यह सब सहन करता क्योंकि एक अंग्रेज का सानिध्य उसे पसंद आ रहा था। बाखा कर्नल की तरह ट्राउजर पहनने के स्वप्न देखने लगा।

बाखा की अरुचि इस बात का प्रमाण थी कि वह कर्नल की बातों से इत्तेफाक नहीं रखता था कि यीशु ने मानव जाति के पापों के परिणाम स्वरूप प्राण त्यागे हालांकि बाखा हचिंसन की एक बात से तुरंत आकर्षित हो गया कि यीशु ब्राह्मणों तथा अछूतों दोनों के प्रति समानता का व्यवहार करते हैं परंतु जब बाखा हचिंसन के साथ चर्च कंपाउंड पहुंचा तो उसकी पत्नी ने 'काला' शब्द के संबोधन से अपमानित किया। उसने भंगियों तथा दलितों के बारे में अपमानजनक शब्द उपयोग किया जिससे बाखा ने महसूस किया कि उसकी परिस्थिति के बदलने की बहुत ही कम संभावनाएं हैं और वह तुरंत कर्नल के शिकंजे से भाग निकला।

आनंद ने बाखा के माध्यम से उस नायक को सफलतापूर्वक चरितार्थ किया है जिसे गांधीजी के अहिंसावादी सूत्रों तथा दयालुता पर अब भी विश्वास है। बाखा जैसे लाखों व्यक्तियों के लिए गांधीजी आशा की एक किरण लेकर आए थे परंतु गांधीजी के द्वारा अछूतों के अपने जीवन का शुद्धिकरण करने साफ-सफाई की आदत जागृत करने तथा अपने-आप को शराब पीने तथा सड़े तथा जूठे खाद्य का सेवन करने की आदतों से मुक्त करने के आवाहन ने बाखा को असमंजस में डाल दिया। वह गांधीजी के इन विचारों से सहमत नहीं हुआ परंतु जब गांधीजी ने उन्हें (अछूतों) उच्च जाति द्वारा दी गई जूठन न स्वीकार करने तथा शिष्टतापूर्वक दिया हुआ अच्छा अनाज ही लेने की बात कही तो बाखा खुद को सहज तथा उठा हुआ महसूस करने लगा। उपन्यास में गांधीजी ने घोषित किया कि मैं पुनर्जीवन नहीं चाहता परंतु अगर मुझे पुनर्जीवित होना पड़े, तो मैं एक अछूत के रूप में जन्म लेना चाहूंगा ताकि मैं उनके दुःख पीड़ा तथा समाज द्वारा उनके प्रति किए जा रहे अमानवीय आचरण को साझा कर सकूं साथ ही मैं स्वयं को तथा अन्य अछूतों को दयनीय तथा पीड़ादायक परिस्थितियों से मुक्त करने का प्रयास कर सकूं।

यह सर्वविदित है कि गांधीजी उपन्यास में जरूरी सुझाव देने तथा बदलाव करने हेतु प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करते थे। मुल्कराज आनंद ने इस हस्तलिपि से लगभग 300 पृष्ठ हटाए तथा मुख्य चरित्र में जरूरी परिवर्तन किए। इन सभी परिवर्तनों ने बाखा और गांधीजी के मध्य मुलाकात में बहुत सहयोग किया। बाखा को जब स्वयं के घर तथा समाज यहां तक कि नए धर्म में शांति प्राप्त नहीं हुई तब गांधीजी के वचनों से उसे सांत्वना मिली हालांकि उसे अपनी समस्याओं का तात्कालिक समाधान नहीं मिला और अभी भी उसे मल सफाई का काम करना पड़ता है।

इन कठिन परिस्थितियों में तीसरा समाधान सामने आया, जिसे एक आधुनिकतावादी कवि से कहलवाया गया है। यह समाधान नीरस है, लेकिन सीधा-सादा व स्पष्ट है और अत्यंत विश्वासोत्पादक। अछूतों को बचाने के लिए किसी देवता की आवश्यकता नहीं है और न ही किसी आत्म-बलिदान अथवा त्याग की जरूरत है। आवश्यक है सीधे-सादे और एकमात्र साधन

फ्लश सिस्टम की। शौचालय बनवाकर और जल निकासी का उचित प्रबंध करके पूरे भारत में अछूत समस्या जैसी बुराई को समाप्त किया जा सकता है।

हालांकि बाखा के जीवन में सब कुछ खराब नहीं है। आनंद ने यह भी प्रदर्शित किया है कि भारत में जातिवाद की जो भी स्थिति हो, परंतु भारतीयों की मूल प्रकृति संवेदनापूर्ण तथा सकारात्मक होती है। चाहे वो जुलाहे की पत्नी वजीरो हो, धोबी का बेटा रामचरण या हवलदार चरत सिंह, इनसे कोई भी बाखा के प्रति अपनी भावनाओं को प्रदर्शित होने से नहीं रोक सका। ये सभी भली-भांति जानते हैं कि पीड़ा सहने की हर मनुष्य की अपनी एक सीमा होती है तथा इसलिए वे बाखा के प्रति सहानुभूति रखते हैं। वे उस पर तरस नहीं खाते बल्कि उसके भीतर छिपे उस नायक को पहचानते हैं जो बहुत ताकतवर है और सभी नकारात्मक परिस्थितियों को बिना किसी भय के संभाल सकता है। हवलदार चरत सिंह पहले उस पर रुष्ट होता है परंतु बाद में उसे एक नई हाकी स्टिक उपहार स्वरूप देता है जैसे बाखा उसका छोटा भाई या शागिर्द हो।

निष्कर्ष

आनंद ने इस उपन्यास को आस्था तथा आदर्शवादिता जैसे मूल्यों के साथ समाप्त किया है। बाखा कि वापसी,उसके हृदय के उस उम्मीद को परिभाषित करती है कि जल्द ही एक 'फ्लश सिस्टम' मेहतरों तथा उसके जैसे लोगों के लिए भी बनेगा। जो उन्हें अछूत होने के कलंक से मुक्ति दिला पाएगा तथा जाति व वर्ग विहीन समाज में उनकी मान्यता एक उपयोगी सदस्य के रूप में स्थापित कर सकेगा। बाखा पूरे उत्साह से अपने कार्य स्वरूप की स्वीकार्यता तथा बिना अछूत के तमगों के समाज में अपनी प्रासंगिकता के प्रति आश्वासन है। आनंद ने बारीकी से बाखा के आंतरिक जीवन को उजागर किया है जो कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में लाक्षणिक छुआछूत के प्रति उनकी बढ़ती चिंता को प्रदर्शित करता है। प्रमिला पॉल ने टिप्पणी करते हुए कहा कि उपन्यास वास्तव में एक सामाजिक रूपों को शुद्ध करने के आनंद के प्रयास को प्रस्तुत करता है जो कि हिंदू संस्कार से संबंधित विभिन्न तत्वों की सफाई जैसा है। यह एक प्रकार का द्वंद्वात्मक कार्य है जो कि कृत्रिम अथवा आध्यात्मिक पुनर्स्थापना के संभावनाओं की खोज पर केंद्रित है।

भारतीय परिस्थितियों के तथ्यों पर आधारित गांधीवादी विचारधारा ने आनंद को आकर्षित किया। वह भाव विभोर होकर गांधी के बारे में कहते हैं कि- 'गांधीजी अलौकिक ढंग से जनता से मिलते तथा एक नई ग्रामीण सभ्यता से संबंधित उनके विचारों को साझा करते हैं।' गांधीजी द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बसी विरोध करने के निश्चित सहज तरीकों की खोज को वे पश्चिम की हिंसा के प्रति उनकी अवधारणाओं से प्रभावित होकर, उन्हें एक नई राह निकलती प्रतीत होती है।

काव्य रचनाओं में यह हेरीर्मोन मौरर का कार्य एवं लेखन है जिसने सबसे अधिक ध्यान आकर्षित किया है। मौरर ने गांधी के जीवन के बारे में संक्षेप में लिखा- 'ठहराव की दूसरी

अवधि के दौरान गांधीजी अपनी शिक्षा के साथ चले गए, पूर्व और पश्चिम उनकी ओर देखते रहे, उनका अनुसरण किया और फिर भी उन्हें गलत समझा।'

●

संदर्भ सूची-

1. Nicholson, Kai. (1972), A Presentation of Social Problems in the Indo-Anglian & the Anglo-Indian Novel. Delhi: Jaico Publishing House, p.239.
2. Iyengar, K. R. Srinivasa, (1985)Indian Writing in English. New Delhi: Sterling Publishers Pvt. Ltd, P.249.
3.https://www.hindustantimes.com/books/remembering-the-mahatma-here-s-how-writers-through-the-ages-have-interpreted-gandhi/story-EEO492 otpdh9 m0MWntJ.html, accessed June 05, 2019.
4.https://www.hindustantimes.com/books/remembering-the-mahatma-here-s-how-writers-through-the-ages-have-interpreted-gandhi/story-9bm EEO492 otp dh9m0MWntJ.html, accessed June 05, 2019.
5.https://www.mkgandhi.org/articles/g_writing.htm, accessed June 05, 2019.
6.https://www.mkgandhi.org/articles/g_writing.htm, accessed June 05, 2019.
7.https://www.scipress.com/ILSHS.30.47.pdf, accessed June 09, 2019.
8.https://classicalartsuniverse.com/anand-untouchable-summary-analysis/ assessed June 09, 2019.
9.Anand, Mulk Raj (2001) Untouchable, Delhi: Penguin Books India, p. 45.
10.Anand, Mulk Raj (2001) Untouchable, Delhi: Penguin Books India, p. 100.
11.https://notesmatic.com/2017/03/character-of-bakha-in-anands-untouchable /accessed June 04, 2019.
12.http://www.languageinindia.com/aug2015/rasadyalamandamulkrajuntouchablesfinal.pdf, accessed June 01, 2019.
13.Anand, Mulk Raj (2001) Untouchable, Delhi: Penguin Books India, p. 162.https://www.scipress.com/ILSHS.30.47.pdf, accessed June 09, 2019.
14.https://notesmatic.com/2017/03/character-of-bakha-in-anands-untou chable/accessed June 04, 2019.
15.https://www.scipress.com/ILSHS.30.47.pdf, accessed June 09, 2019.
16.https://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/175213/9/09chapter%203.pdf, accessed May 29, 2019.
17.https://www.hindustantimes.com/books/remembering-the-mahatma-here-s-how-writers-hrough-the-ages-have-interpreted-gandhi/story-mEEO492otpdh9m0MWntJ.html, accessed June 05, 2019.

गांधी की पत्रकारिता और राष्ट्रीयता

कमल किशोर गोयनका

गांधी के बैरिस्टरी की शिक्षा के लिए इंग्लैंड जाते समय उसके मन में कुछ स्वप्न रहे थे,- बैरिस्टरी करके धन-संपत्ति अर्जित करना, भाई का कर्जा, उतारना तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना, आदि। उस समय अट्ठारह-उन्नीस वर्ष के एक भारतीय युवक के लिए इंग्लैंड जाकर बैरीस्टरी करने की कल्पना भी असंभव-सी ही थी, जबकि आर्थिक साधन न हो, पारिवारिक संस्कार आज्ञा न देते हों तथा बिरादरी से निष्कासन का भय हो, लेकिन जब ऐसे युवक का इंग्लैंड जाना संभव हो जाए तो उसकी कल्पनाओं का ऊंची उड़ान भरना स्वाभाविक था। गांधी ने लिखा भाषा कि इंग्लैंड जाने की संभावना से ही वे 'हवाई किले बनाने लगे और जाना तय होने पर विलायत के ही सपने आने लगे।'[1] गांधी के इन सपनों में विलायत जाने का आकर्षण एवं एक दुनिया को देखने-समझने की प्रबल अकांक्षा थी, परंतु इस समय उनके मन-संसार में अपने समाज और देश के प्रति दायित्व का भाव भी था जो निश्चय ही उनके भावी कर्म-क्षेत्र तथा विचार-क्षेत्र की ओर स्पष्ट रूप से संकेत कर रहा था। गांधी ने अल्फ्रेड हाईस्कूल, राजकोट से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उनके विलायत जाने के समाचार पर हाईस्कूल में एक विदाई-समारोह हुआ जिसके संबंध मे गांधी ने अपनी आत्मकथा में बस इतना लिखा कि वे जो कुछ लिखकर ले गए थे, उसे बड़ी मुश्किल से पढ़ पाए, लेकिन उन्होंने जो कुछ कहा था, वह 'काठियावाड़ टाइम्स' के 12 जुलाई, 1888 के अंक में छपा। गांधी ने कहा था, 'मुझे आशा है कि दूसरे भी मेरा अनुसरण करेंगे और इंग्लैंड से लौटने के बाद हिंदुस्तान में सुधार के बड़े-बड़े काम करने में सच्चे दिल से लग जाएंगे।'2 गांधी का यह वाक्य बहुत महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट है कि गांधी बैरिस्टरी करके अपने देश लौटेंगे, इंग्लैंड जाते समय उन्हें अपनी सुख-समृद्धि की नहीं, 'हिंदुस्तान' की चिंता है और यह हिंदुस्तान उनकी दृष्टि में ऐसा जिसमें बड़े-बड़े सुधार करने हैं और सच्चे मन से करना हैं तथा उन सभी को करने हैं जो इंग्लैंड से शिक्षा प्राप्त करके अपने देश लौटेंगे। इस प्रकार गांधी के अचेतन में ही नहीं चेतन जगत में भी हिंदुस्तान का एक ऐसा चेहरा उभरता है जो विदेशी-दासता, सामाजिक विषमता तथा निर्धनता में जी रहा है और इस समाज में बड़े-बड़े सुधारों की आवश्यकता है। गांधीजी एक नवयुवक के रूप में अपने समाज के सुधारने की यह आकांक्षा उसी नवजागरण का परिणाम था जो उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू हो गया था और देश के कोने-कोने में उसका प्रभाव पड़ रहा

था। विदेश जाते समय वहां का आकर्षण तो था ही, लेकिन अपने देश और समाज की एवं संस्कृति की भी चिंता थी। नियमित अपना काम कर रही थी। गांधी अपने देश की चिंता और उसे सुधार कर एक नया रूप देने की कामना के साथ इंग्लैंड के लिए विदा हो रहे थे। यह गांधी के राष्ट्र-प्रेम का आरंभ था।

गांधी अपने इंग्लैंड के प्रवास-काल में कुछ महीनों तक अंग्रेजी की रीति-नीति, वेशभूषा आदि के प्रभाव में अवश्य आए, परंतु वे अपनी माता को दिए गए तीन वचनों कि वे मांस, मदिरा का सेवन तथा परस्त्री गयन नहीं करेंगे, पालन करते रहे। गांधी ने 'आत्मकथा' में लिखा कि वे हिंदुस्तान लौट जाएंगे पर मांस नहीं खाएंगे। उन्हें देश की याद खूब आती, माता का प्रेम मूर्तिमान होता और रात होती तो रोना शुरू कर देते। विलायत उन्हें अच्छा नहीं लगता था, लेकिन देश भी लौटा नहीं जा सकता था। गांधी के संस्कार और अपना देश था, इसलिए माता को दिए गए वचनों पर चले, अन्नहार का प्रचार किया, 'गीता' का अध्ययन किया और अंग्रेजी संस्कारों तथा विचारों के स्वयं को बचाकर रखा। गांधी भारत लौटे तो वकालत जमाने में कई प्रकार की समस्याएं आईं कि इसी बीच उन्हें दक्षिण अफ्रीका का प्रस्ताव मिला तो गांधी ने तुरंत स्वीकार कर लिया। गांधी अपने झंझटों से मुक्त होकर हिंदुस्तान छोड़ना चाहते थे और नया देश देखने और अनुभव प्राप्त करने का उन्हें अवसर मिल ही रहा था।[3] गांधी अप्रैल, 1983 को दक्षिण अफ्रीका में अपना भाग्य आजमाने के लिए रवाना हुए, परंतु उन्हें प्रवासी भारतीयों के बीच ही काम करना था। गांधी ने पाया कि हिंदुस्तानी लोग मुस्लिम, पारसी, हिंदू आदि में बंटे हैं। मुसलमान व्यापारी अपने को 'अरब' से जोड़ते हैं, पारसी परसिया से और तमिल-तेलुगु तथा उत्तर हिंदुस्तान के हिंदू 'गिरमिटिया' कहलाते हैं। ये 'गिरमिटिया' 'हिंदुस्तानी' 'कुली' के नाम से पहचाने जाते है, इस कारण गांधी 'कुली बैरिस्टर' तथा व्यापारी 'कुली व्यापारी' कहलाते थे। गांधी को एक वर्ष में अपनी पगड़ी, प्रथम श्रेणी में रेल-यात्रा करने, घोड़ों की सिकरम में जाने आदि में गोरों के हाथों से अपमानित होना पड़ा जिसके कारण उनमें भारतीय होने का स्वाभिमान जागृत हुआ। पगड़ी के प्रसंग में तो देशाभिमान के कारण ही गांधी ने मजिस्ट्रेट के कहने पर भी अपनी पगड़ी नहीं उतारी। गांधी नेटाल से जब प्रिटोरिया पहुंचे तो उन्होंने वहां के हिंदुस्तानियों से संपर्क किया और सेठ हाजी मुहम्मद हाजी जूसब के यहां आयोजित हिंदुस्तानियों की सभा में उन्होंने कहा कि प्रदेश में आने पर उनकी जिम्मेदारी देश की अपेक्षा अधिक हो जाती हैं, क्योंकि मुट्ठी भर हिंदुस्तानियों के रहन-सहन से हिंदुस्तान के करोड़ों लोगों को नापा-तौला जाता है। गांधी ने अंत में हिंदुस्तानियों के एक मंडल की स्थापना का प्रस्ताव किया जो उनके कष्टों और कठिनाइयों का इलाज अधिकारियों से मिलकर तथा अर्जियां भेजकर करेगा। वे स्वयं यथाशक्ति इसके लिए अवैतनिक काम करेंगे।[4] गांधी ने इस प्रकार इस मंडल के द्वारा प्रिटोरिया के प्रत्येक हिंदुस्तानी का परिचय प्राप्त किया और ट्रांसवाल एवं ऑरेंज फ्री स्टेट के हिंदुस्तानी समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति को गहराई से देखा और समझा। गांधी की हिंदुस्तानियों के अधिकार तथा स्वाभिमान की लड़ाई में इस अध्ययन ने उनकी बड़ी मदद की। गांधी को तब इसका ज्ञान न था, परंतु नियति तो

अपना काम कर रही थी। गांधी पर ईसाई धर्म तथा इस्लाम के अध्ययन और स्वीकार करने का दबाव था। गांधी ने ईसाई, इस्लाम, तथा हिंदू धर्म के ग्रंथों का अध्ययन किया, मित्रों से परामर्श किया और अंत में उनके भारतीय मन ने हिंदू धर्म को श्रेष्ठ पाया गांधी का स्थायी रूप से भारत जाने पर विभिन्न धर्मों का अध्ययन चलता रहा और ईसाई मिशनरियां भी उन्हें ईसाई बनाने आती रहीं, किंतु उनकी हिंदू धर्म से आस्था अटूट बनी रही, बल्कि वे उसे सर्वश्रेष्ठ धर्म मानने लगे। गांधी ने 3 मई, 1933 को जवाहरलाल नेहरू को पत्र में लिखा था- 'हिंदुत्व को मुझसे ले लो तो मेरे पास कुछ नहीं रह जाता। इस हिंदुत्व के माध्यम से ही मैंने ईसाई, इस्लाम आदि सब पंथों को प्यार किया है।'

गांधी का दक्षिण अफ्रीका से कार्य पूरा होने पर लौटने का कार्यक्रम बना तो अब्दुल्ला सेठ ने उन्हें विदाई-भोज दिया तो गांधी की दृष्टि 'दि नेटाल मर्करी' अखबार के इस समाचार पर पड़ी कि हिंदुस्तानियों से नेटाल की धारा सभा के लिए सदस्य चुनने का मताधिकार छीन लिया जाए। इस छोटे-से-समाचार ने इतिहास की रचना की। गांधी का इससे देश-प्रेम जागृत हुआ, वहां उपस्थित हिंदुस्तानियों में राष्ट्रीय चेतना को उत्पन्न किया तथा गांधी ने प्रवासी भारतीयों के अधिकारों तथा स्वाभिमान की लड़ाई आरंभ की और इस राष्ट्रीय चेतना ने दक्षिण-अफ्रीका में उनके स्थाई निवास को संभव बनाया। गांधी को इस प्रसंग से यह स्पष्ट हो गया कि हिंदुस्तानियों के मताधिकार को छीनने का अर्थ है कि हिंदुस्तानियों की आबादी को मिटा दिया जाए। वह गांधी तथा प्रवासी हिंदुस्तानियों के हिंदुस्तानी होने के स्वाभिमान पर गहरी चोट थी। गांव के नेतृत्व में एक समिति बनी और हिंदुस्तानी प्रवासियों के अधिकार तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिए लड़ाई शुरू हुई। गांधी ने इस सार्वजनिक कार्य के लिए कोई फीस नहीं ली, परंतु व्यापारियों ने उनके एक वर्ष रहने का खर्च देने का निर्णय किया। गांधी ने अपनी आत्मकथा में इस हिंदुस्तानी समाज के बारे में लिखा- 'उपस्थित संकट के सामने नीच-ऊंच, छोटे-बड़े, मालिक-नौकर, हिंदू-मुसलमान, पारसी, ईसाई, गुजराती-मद्रासी-सिंधी आदि भेद समाप्त हो चुके थे। सब भारत की संतान और सेवक थे।[6] गांधी का यह मताधिकार-युद्ध एक प्रकार से हिंदुस्तानी जाति का युद्ध बन गया। जाति, भाषा, क्षेत्र तथा धर्म आदि के सभी भेद समाप्त हो गए और हिंदुस्तानी समाज, एक कौम के रूप में संगठित हो गया। गांधी का प्रयास यद्यपि सफल नहीं हुआ, परंतु हिंदुस्तानियों में एक ही देश की संतान होने का भाव उत्पन्न हुआ। गांधी ने इस राष्ट्र-प्रेम पर लिखा- 'सब जानते थे कि यही नतीजा निकलेगा, पर कौम में नवजीवन का संचार हुआ। सब कोई यह समझे कि हम एक कौम हैं, केवल व्यापार-संबंधी अधिकारों के लिए ही नहीं, बल्कि कौम के अधिकारों के लिए लड़ना हम सबका धर्म है।'[7] इस प्रकार गांधी के राष्ट्रीय स्वाभिमान ने दक्षिण अफ्रीका के अपमानित, तिरस्कृत एवं अधिकारविहीन गिरमिटिया हिंदुस्तानियों के मन में देश-प्रेम एवं संस्कृति बोध का भाव उत्पन्न किया और फिर दोनों मिलकर गोरों की सत्ता के विरुद्ध सत्याग्रह करके अहिंसक युद्ध किया। गांधी का उद्देश्य अब राजनीतिक और शैक्षणिक था। [8] क्योंकि इससे ही वे हिंदुस्तानी समाज को जागृत एवं प्रबुद्ध बना हिंदुस्तानी के रूप में उनके अस्तित्व तथा स्वाभिमान को सुरक्षित

कर सकते थे, परंतु उनकी अपनी कोई निजी राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं थी। गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में मतदाता-सूची में इसलिए अपना नाम नहीं लिखाया, यद्यपि तीन बार उनके चुने जाने की पूरी संभावना थी। गांधी के लिए यह धर्म की लड़ाई थी जो अपनी कौम तथा देश-हित में ही लड़ी जा सकती थी। गांधी की राष्ट्रीयता ऐसी ही थी जिसमें सार्वजनिक हित की सर्वोपरि था। राष्ट्र के सम्मुख व्यक्ति की हिताकांक्षा का कोई महत्व न था।

गांधी के दक्षिण अफ्रीका पहुंचने और वहां से 'इंडियन ओपिनियन' का पहला अंक 4 जून,1903 (पहले अंक पर यही तारीख है, पर बाजार में 6 जून, 1903 को पहुंचा) तक लगभग दस वर्ष का समय व्यतीत हो चुका था। इन दस वर्षों में गांधी के कार्यो की सूची काफी लंबी है, जिसमें वकालत करके धन कमाने के स्थान पर प्रवासी हिंदुस्तानियों के अधिकार के लिए संघर्ष की घटनाएं ही अधिक हैं। गांधी ने मताधिकार के मामले में हिंदुस्तानियों को जोड़कर एक सूत्र में बांध लिया था और अब उन्हें राजनीतिक रूप में संघर्षशील बनाना आवश्यक था। इसके लिए उन्होंने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' से प्रेरित होकर 22 मई, 1834 को 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना की जो उनकी राष्ट्रीयता का ज्वलंत प्रमाण है। गांधी ने लिखा भी है कि दक्षिण अफ्रीका के कंजर्वेटिव इसे पसंद नहीं करेंगे, पर कांग्रेस पर कांग्रेस तो हिंदुस्तान की प्राण है। उसकी शक्ति तो बढ़नी ही चाहिए। उस नाम को छिपाने में अथवा अपनाते हुए संकोच करने में नामर्दी की गंध आती थी अतएव मैंने अपनी दलीलें पेश करके संस्था का नाम 'कांग्रेस' की रखने का सुझाव दिया और सन् 1894 के मई महीने की 22 तारीख को 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' का जन्म हुआ।[9] इस प्रकार गांधी ने हिंदुस्तान के प्राण-तत्व को ही 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' के रूप में स्थापित किया और 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के दादा भाई नौरोजी जैसे अध्यक्षों के साथ बराबर पत्र-व्यवहार एवं संपर्क रखा। गांधी जुलाई, 1996 में भारत गए और राजकोट में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हरी पुस्तिका' प्रकाशित की और बंबई, पूना, मद्रास, कलकत्ता आदि नगरों में उसे वितरित किया और दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों की दुःख भरी तथा अपमानजनक स्थितियों की जानकारी दी। इस यात्रा के बाद जब गांधी दक्षिण अफ्रीका लौटे तो इस 'हरी पुस्तिका' के विवरणों से क्रुद्ध गोरों की भीड़ ने पहले तो जहाज से उतरने नहीं दिया और फिर उन पर जान-लेवा हमला किया। गांधी की बड़ी मुश्किल से जान बची, किंतु गांधी ने हमलावर गोरों को क्षमा करके हिंदुस्तानियों के प्रति सम्मान में वृद्धि कर ली। गांधी फिर भारत गए और 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के कलकत्ता अधिवेशन में 27 दिसंबर, 1901 को दक्षिण अफ्रीका के संबंध में प्रस्ताव रखा और वह स्वीकृत हुआ। गांधी के सम्मुख दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी हिंदुस्तानियों की दुर्दशा को सुधारना तथा उन्हें अधिकार दिलवाना ही प्रमुख कार्य था। इसके लिए वे हर दृष्टि से प्रयास करते रहे-भारत जाकर उनकी दुर्दशा की कहानी बताई, संपादकों से संपर्क करके प्रवासी हिंदुस्तानियों की स्थिति की जानकारी भारत की जनता को दिलवाई, स्वयं इस संबंध में पुस्तकें लिखीं, गोखले, दादाभाई, नौरोजी आदि से मिलने तथा उन्हें रिपोर्ट भेजी, चेंबर लेन से मिलने प्रतिनिधि-मंडल के साथ गए, 'फीनिक्स आश्रम' की स्थापना की तथा 'इंडियन ओपिनियन' समाचार-पत्र को आरंभ कराने और फिर उसके संपादक

बनने में हिंदुस्तान (इंडियन) का दृष्टिकोण (ओपिनियन) उसका राष्ट्र-बिंब एवं अस्तित्व-बोध उनके मन में विद्यमान था। अब भारत-दर्शन ही उनका दक्षिण अफ्रीका में मार्ग-दर्शक, प्रेरणा-स्रोत एवं विचार-संघर्ष का शक्ति-केंद्र था।

गांधी के सभी समाचार-पत्रों के नामकरण में यह भारतीय विचार-दृष्टि ही केंद्र में रही। 'इंडियन ओपिनियन' में तो स्पष्टतः भारतीय दृष्टिकोण तथा भारतीय विचार था ही, सन् 1919 में निकाले गए समाचार-पत्रों में 'यंग इंडिया' में युवा भारत था और 'नवजीवन' में भारत के नए युग में प्रवेश करने का विचार था तथा 'हरिजन' में भी सभी भारतीय समाहित थे, क्योंकि सभी ईश्वर (हरि) के प्रिय (जन) थे। इन नामकरणों से ही सिद्ध हो जाता है कि गांधी की पत्रकारिता की बुनियादी भारत-प्रेम और राष्ट्रीयता थी। दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' गांधी के दो सहयोगियों ने आरंभ किया-मदनजीत व्यावहारिक तथा मनसुख लाल नाजर। नाजर 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' के सेक्रेटरी थे और गांधी के साथ थे। नाजर इसके पहले संपादक बने। मदनजीत के पास छापखाना था और समाचार-पत्र का विचार भी उन्हीं का था। नाजर संपादक थे परंतु संपादन का सच्चा बोझ तो गांधी पर ही था। नाजर के संपादकत्व में इसका पहला अंक 4 जून, 1903 (प्रकाशित 6 जून को हुआ) को निकला, लेकिन लगभग एक वर्ष के उपरांत गांधी के पूर्णतः नियंत्रण में आ गया यद्यपि आरंभ से ही उनकी देखभाल में छप रहा था। गांधी ने 'फीनिक्स आश्रम' से जब इसका अंक प्रकाशित किया तो उन्होंने इसके मुद्रण एवं वितरण की कठिनाइयों का रोचक विवरण 'पहली रात' शीर्षक से अपनी आत्मकथा-1में दिया। गांधी ने इस अंक से लेकर वर्ष 1914 के अंत तक जब वे स्थायी रूप से भारत गए, कोई ही ऐसा अंक होगा जिसमें गांधी ने लिखा न हो तथा जिसमें गांधी ने अपनी आत्मा को उड़ेलकर न रखा हो। 'इंडियन ओपिनियन' का पूर्ण रूप से उपयोग दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों के हितों के लिए था। उसमें उनकी दुर्दशा के प्रसंग थे, प्रतिकूल कानूनों की व्याख्या तथा विरोध था, पंजीकरण के सफल विरोध के समाचार थे, 'साप्ताहिक डायरी' थी जिसे पाठक रुचि से पढ़ते थे। सत्याग्रह के संबंध में विचारों का प्रकाशन था, भारत तथा विश्व की महत्वपूर्ण खबरें थीं, हिंदुस्तानियों की एकता तथा जागृति का संदेश तथा हिंदुस्तानियों के देश-प्रेम की प्रशंसा थी। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' के जो उद्देश्य स्पष्ट किए वे दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों के कल्याण तथा एकता के लिए थे। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) के 28 अप्रैल,1906 के अंक में इसके तीन हेतुओं की चर्चा करते हुए लिखा, 'एक तो हमारे दुःख शासनकर्ताओं के सामने, गोरों के सामने इंग्लैंड में, दक्षिण अफ्रीका में और भारत में जाहिर करना। दूसरा यह कि हम में जो भी दोष हों उन्हें बताना और उन्हें दूर करने के लिए लोगों से कहना। तीसरा, और कहें तो सबसे बड़ा उद्देश्य हिंदू-मुसलमानों के बीच का भेद तोड़ना और साथ ही गुजराती, तमिल, कलकत्ते वाले जैसी खाइयों को पाटना। भारत में राजकर्ताओं की विचारधारा दूसरे प्रकार की मालूम होती है। वहां यह नहीं दिखता है कि वे हम में एकता पैदा होने देना चाहते हैं। दक्षिण अफ्रीका में हम सब थोड़े-थोड़े हैं, हम पर एक-सी मुसीबतें हैं, कोई-कोई बंधन भी यहां ढीले हो गए हैं, इसलिए हम एक-दिल होने का प्रयोग यहां बहुत

आसानी से कर सकते हैं। इस विचारों को प्रजा में दृढ़ करना भी इस पत्र का हेतु है। XXX पत्र शिक्षा का बड़ा साधन है। यह समझना बहुत जरूरी है कि यह अखबार मेरा नहीं, बल्कि हर एक भारतीय भाई का है।'[10] इसके लगभग डेढ़ वर्ष के बाद गांधी ने लिखा कि हमारा उद्देश्य सेवा करना और शिक्षा एवं स्वाभिमान में वृद्धि करना है।[11] वे 23 अप्रैल,1910 को 'इंडियन ओपिनियन' में फिर लिखते हैं कि समाचार-पत्र का उद्देश्य राज्य और प्रजा दोनों का सुधार तथा लोक-सेवा है।'[12] इसके ढाई वर्ष उपरांत उन्होंने लिखा, 'ब्रिटिश भारतीयों की शिकायतों को लोगों के सामने लाना और उन्हें दूर करने के उपाय करना तथा साथ ही जीवन को ऊंचा करने वाली पाठ्य-सामग्री प्रकाशित करके जनशिक्षण का कार्य करना।'[13] गांधी इसके उद्देश्य की फिर चर्चा करते हैं, 'इस अखबार के प्रकाशन के केवल दो उद्देश्य हैं- एक तो यह कि इस देश में भारतीयों को जो कष्ट सहने पड़ते हैं उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाए और दूसरा यह कि सुनीति की शिक्षा का प्रचार किया जाए। यह दूसरा कार्य मुख्यतः हमारी अपनी जीवन-पद्धति सुधारने पर निर्भर है।'[14] गांधी के विचार में पत्रकारिता का उद्देश्य आजीविका कमाना नहीं है, बल्कि लोक-शिक्षा ही उसका मुख्य कार्य है।'[15]

गांधी के इन विभिन्न उद्देश्य-कथनों के मूल में दक्षिण अफ्रीका का भारतीय समाज है। गांधी स्वयं भारतीय हैं और भारत के सांस्कृतिक नवजागरण से परिचित हैं कि किस प्रकार समाज के सुधारक, राजनेता, धार्मिक गुरु, साहित्यकार आदि सोए भारतीय समाज को जागृत करने में लगे हैं। अंग्रेजी सभ्यता संस्कृति की श्रेष्ठता का अहंकार, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का दबाव, अंग्रेजों की घृणा एवं अपमान आदि से विह्वल तथा उद्वेलित भारतीय समाज इस जागरण से अपने मध्ययुगीन संस्कारों तथा विश्वासों से मुक्त होकर आधुनिक समाज बनने के प्रयत्न में था। गांधी अपने देश की इसी राष्ट्रीय चेतना को दक्षिण अफ्रीका के गिरमिटिया भारतीय मजदूरों, व्यापारियों आदि के जीवन का अंग बनाने के लिए 'इंडियन ओपिनियन' समाचार-पत्र का संपादन प्रकाशन कर रहे थे। इस कारण समाचार-पत्र 'विचार-पत्र' ही नहीं 'जागरण-पत्र' भी था, जिसके केंद्र में विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं, तथा क्षेत्रों से आया मिला-जुला भारतीय समाज था। यह एक प्रकार से 'मिनी भारत' ही था जिसे गांधी ब्रिटिश उपनिवेश में सम्मानपूर्वक अपने अधिकारों तथा अपने जीवन- दर्शन के साथ जीने की व्यवस्था के लिए संघर्ष कर रहे थे और इस भारतीय समाज की जागृति तथा शिक्षा के लिए 'इंडियन ओपिनियन' निकाल रहे थे। गांधी की यह स्वदेशाभिमान की भावना उनमें ही नहीं थी, बल्कि उनके सहयोगी कर्मचारियों में भी थी, तभी गांधी ने 28 अप्रैल, 1906 को 'इंडियन ओपिनियन' में लिखा, 'हमारा ख्याल है कि इसकी मदद करना हर एक भारतीय का फर्ज है। पत्र के प्रकाशन से संबंधित सभी लोगों की स्थिति ऐसी है कि वे पत्र के साथ इसलिए बंधे हुए हैं कि वे अपने हृदयों से स्वदेशाभिमान की चिनगारी जगाए रखते हैं।'[16] गांधी की राष्ट्रीयता और देश-भक्ति उन्हें तथा उनके साथियों को लोक-सेवा में प्रवृत्त करती है। उस युग में स्वामी विवेकानंद और कुछ बाद में प्रेमचंद इसी सेवा-भावना को उत्थान एवं जागरण का मंत्र बता रहे थे। गांधी ने 16 नवंबर, 1906 को लंदन से लिखा था कि मैंने पिछले 13 सालों में अपने देशवासियों के लिए

जो कुछ किया है, केवल सेवा-भावना से किया है और उसमें मुझे बहुत आनंद मिला है।[17] गांधी इसी कारण दक्षिण अफ्रीका के अपने 'फीनिक्स आश्रम' और वहां से प्रकाशित 'इंडियन ओपिनियन' के संबंध में लिखते हैं कि जो लोग भारत की सेवा करना चाहते हैं उनके लिए फीनिक्स महान क्षेत्र है।[18] इसी कारण गांधी 'इंडियन ओपिनियन' को सभी भारतीयों की सार्वजनिक संपत्ति मानते थे।[19] गांधी ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा कि 'इंडियन ओपिनियन' मेरे जीवन के कुछ अंश का निचोड़ है तथा इस अखबार ने हिंदुस्तानी समाज की अच्छी सेवा की है। XXX इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़ाई चल नहीं सकती थी। पाठक समाज इस अखबार को अपना समझकर इसमें लड़ाई का और दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों की दशा का सही हाल जानता था। XXX (निष्कर्ष था) कि समाचार-पत्र सेवा-भाव से ही चलाने चाहिए (तथा) समाचार-पत्र एक जबरदस्त शक्ति है।'[20] गांधी ने इस तरह लोक-शिक्षा और लोक-सेवा के साथ लोक-जागृति एवं लोक-संघर्ष को जोड़कर 'इंडियन ओपिनियन' को संपूर्ण हिंदुस्तानियों और हिंदुस्तान के अपने देश-बंधुओं को एक मंच पर लाकर उनकी मुक्ति का संघर्ष एवं दर्शन किया। गांधी ने अपनी पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' में लिखा, 'इंडियन ओपिनियन' के होने से हमें कौम को आसानी से शिक्षा दे सकने और संसार में जहां-जहां हिंदुस्तानी रहते थे, वहां-वहां हमारी हलचलों की खबरें भेजते रहने में आसानी हुई। यह सब काम कदाचित् किसी दूसरी रीति से नहीं किए जा सकते थे इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लड़ाई के साधनों में 'इंडियन ओपिनियन' भी एक बहुत उपयोगी और सबल साधन था।'[21]

गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' (1904-1914 तक) की बुनियाद और उसके भवन की संरचना अपनी अपराजेय राष्ट्रीयता, देशभक्ति और भारतीयता पर स्थापित की। इसका सबसे ज्वलंत प्रमाण उनकी विश्व प्रसिद्ध पुस्तक पाठकों के लिए गुजराती में लिखी गई थी और उसके सभी बीस परिच्छेद, सिलसिलेवार लेखों के रूप में 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती स्तंभ में छपे थे। गांधी वर्ष 1909 में लंदन गए थे तो वहां क्रांतिकारी स्वराज्य-प्रेमी भारतीय युवकों जिनमें वीर सावरकर भी थे, से मिले थे। गांधी की इन नवयुवकों से जो बातचीत हुई थी वही 'हिंद-स्वराज' की प्रेरणा-भूमि थी। गांधी ने 'हिंद-स्वराज' की भूमिका में लिखा था, '1909 में लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए जहाज पर हिंदुस्तानियों के हिंसावादी पंथ को और उसी विचारधारा वाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को दिए गए जवाब के रूप में यह लिखी गई थी। लंदन में रहने वाले हर एक नामी अराजकतावादी हिंदुस्तानी के संपर्क में मैं आया था। उनकी शूरवीरता का असर मेरे मन पर पड़ा था, लेकिन मुझे लगा कि उनके जोश ने उलटी राह पकड़ ली है। मुझे लगा कि हिंसा हिंदुस्तान के दुःखों का इलाज नहीं है और उसकी संस्कृति को देखते हुए आत्म-रक्षा के लिए कोई अलग और ऊंचे प्रकार का शास्त्र काम में लाना चाहिए। XXX यह (पुस्तक) द्वेष-धर्म की जगह प्रेम-धर्म सिखाती है। हिंसा की जगह आत्म-बलिदान को रखती है, पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्म-बल को खड़ा करती है। XXX हिंदुस्तान अगर प्रेम

के सिद्धांत को अपने धर्म के एक सक्रिय अंश के रूप में स्वीकार करे और उसे अपनी राजनीति में शामिल करे, तो स्वराज्य स्वर्ग से हिंदुस्तान की धरती पर उतरेगा।'[22]

गांधी का यह वक्तव्य आंशिक सत्य का ही प्रतीक है और 'हिंद स्वराज्य' केवल हिंसा के विरुद्ध अहिंसा एवं आत्मबल की श्रेष्ठता का ही आख्यान नहीं है, वह भारतीय संस्कृति, जीवन-पद्धति मानवीय मूल्यों की श्रेष्ठता एवं युग के नवजागरण का शंखनाद है। गांधी वर्ष 1915 में भारत आने से लगभग छह वर्ष पूर्व की स्वराज्य के साथ स्व-संस्कृति, स्व-शिक्षा, स्व-भाषा तथा स्व-मूल्यों की स्थापना के संबंध में चिंतन कर रहे थे तथा एक प्रकार से वे अपने जीवन-दर्शन को ही रूप दे रहे थे। यहां उनके कुछ विचार-सूत्र 'हिंद-स्वराज' से प्रस्तुत हैं जिनसे उनका राष्ट्र, संस्कृति-प्रेम, देशाभिमान तथा भारत-भक्ति स्पष्ट होती है :

1. कांग्रेस ने हिंदुस्तानियों में 'हम एक राष्ट्र है' ऐसा जोश पैदा किया।[23]

2. बंग-भंग से देश में सही जागृति आई और अब जागा हुआ देश सोएगा नहीं। इस जागृति ने अंग्रेजी जहाज में हमेशा के लिए दरार डाल दी है।[24]

3. मेरी कल्पना के स्वराज्य में हिंदुस्तान अंग्रेज नहीं बनेगा।[25]

4. यूरोप की सभ्यता अधर्म है, अनीतिपूर्ण है, स्वयं नाशवान एवं दूसरों का नाश करने वाली है।[26]

5. हिंदुस्तान अंग्रेजों ने लिया सो बात नहीं है, बल्कि हमने उन्हें दिया है।[27]

6. मुझे धर्म प्यारा है और हिंदुस्तान धर्म-भ्रष्ट होता जा रहा है।[28]

7. मैकॉले ने हिंदुस्तानियों को नामर्द माना, वह उसकी अधम अज्ञान दशा को बताता है। हिंदुस्तानी नामर्द कभी नहीं थे।[29]

8. जब अंग्रेज हिंदुस्तान में नहीं थे तब हम एक राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। XXX जिन दूरदर्शी पुरुषों ने सेतुबंध रामेश्वरम, जगन्नाथपुरी और हरिद्वार की यात्रा ठहराई, XXX उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिंदुस्तान को एक देश बनाया है, इसलिए वह एक राष्ट्र होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अलग-अलग स्थान तय करके लोगों को एकता का विचार इस तरह दिया, जैसा दुनिया में और कहीं नहीं दिया गया है।[30]

9. हिंदुस्तान में चाहे जिस धर्म के आदमी रह सकते हैं, उससे वह एक-राष्ट्र मिटने वाला नहीं है।[31]

10. मैं मानता हूं कि जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखाई है, उसको दुनिया में कोई नहीं पहुंचा सकता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए है, उनकी बराबरी कर सके ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आई। XXX हिंदुस्तान के हित-चिंतकों को चाहिए कि वे हिंदुस्तान की सभ्यता से बच्चा जैसे मां से चिपटा रहता है वैसे, चिपटे रहें।[32]

11. स्वदेशाभिमान का अर्थ मैं देश का हित समझता हूं। XXX मेरा स्वदेशाभिमान (मुझे सिखाता है) कि मैं देशी राजाओं के जुल्म के खिलाफ और अंग्रेजी जुल्मों के खिलाफ जूझूंगा।'[33]

12. सत्याग्रह सबसे बड़ा-सर्वोपरि बल है। XXX आत्म-बल ही सत्याग्रह है और उसमें अपना ही बलिदान है।[34]

13. मैकॉले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। XXX हमें अपनी भाषा में शिक्षा लेनी चाहिए।[35]

14. सारे हिंदुस्तानियों के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उससे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए।[36]

15. स्वराज्य गोला-बारूद से नहीं सत्याग्रह से ही मिलेगा।[37]

ये वर्ष 1909 की पुस्तक के अंश में है। इसके लेखक दक्षिण अफ्रीका के बहुसंख्यक गुजराती भाषी हिंदुस्तानियों के लिए लिखे गए थे, परंतु इनमे कहीं भी दक्षिण अफ्रीका का वर्णन नहीं है। ये लेख भारत की गुलामी, समाज, की दुर्बलताओं, यूरोप की सभ्यता के कुप्रभावों, भारतीय जीवन-शैली एंव संस्कृति की श्रेष्ठता तथा स्वराज्य की धारणा को सबल तर्कों के साथ प्रस्तुत करते हैं। यह वास्तव में, हिंद के स्वराज्य-दर्शन का एक जीवंत बिंब है, जिसमें भारत के अतीत की प्रशंसा है, वर्तमान जीवन की आलोचना है और भविष्य का स्वप्न है। इस चिंतन-धारा में गांधी अकेले नहीं हैं। स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, बंकिमचंद्र चटर्जी आदि युग के अन्य मनीषी तथा लेखक आदि इस चिंतन-दृष्टि को स्थापित कर रहे थे। गांधी का वैशिष्ट्य यह था कि उन्होंने अपने राजनीतिक लक्ष्यों और गतिविधियों का मूलाधार इस भारतीय-दर्शन को बनाया और राष्ट्र-हित एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष को सर्वोपरि माना। गांधी के 'हिंद-स्वराज' के सामने ही 'सत्यार्थ प्रकाश', 'आनंदमठ', 'सोजेवतन', 'भारत दुर्दशा', 'भारत-भारती' आदि कृतियां इसी मार्ग की पथिक थीं, बल्कि यह कहना उपयुक्त होगा कि उस समय गांधी के समान अन्य अधिकांश भारतीय चिंतक अंग्रेजी गुलामी और अंग्रेजी सभ्यता से व्यथित होकर एक भारतीय-बिंब अर्थात् आधुनिक भारत के स्वरूप को परिभाषित करने में लगे थे। स्वामी विवेकानंद अमेरिका में दिए गए अपने व्याख्यानों से, भारतेंदु हरिश्चंद्र- मैथिलीशरण गुप्त-प्रेमचंद आदि अपनी साहित्यिक कृतियों से तथा गांधी विदेश में बैठकर धारावाहिक लेखों से भारत के स्वराज्य तथा नए युग की भारतीयता को अपनी पत्रकारिता के द्वारा उद्घाटित कर रहे थे। गांधी की पत्रकारिता में राष्ट्रीयता ही ऐसा मूलाधार है जो भारतीय पत्रकारिता की आधारशिला रखता है और पराधीन भारत में पत्रकारिता के लिए सबसे प्रबल एवं स्वीकार्य विचार-स्तंभ एंव प्रतिमान बनता है। गांधी ने वैसे तो 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती पाठकों के लिए 'हिंद-स्वराज' के लेख लिखे थे, परंतु उसका अंग्रेजी अनुवाद करके उन्होंने भारत की विशाल जनता को ही नहीं विश्व के मानव-समुदाय के सम्मुख अपने राष्ट्रीय चिंतन एवं प्रतिबद्धताओं को सहज सुलभ बना दिया। गांधी ने 'हिंद-स्वराज' के चिंतन को ही भारत में आकर अपने स्वाधीनता संग्राम का आधार बनाया और उसमें संशोधन की उन्हें कभी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। इस प्रकार गांधी की पत्रकारिता से ही भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष की विचार-भूमि तैयार हुई और पूरा राष्ट्र गांधी के साथ खड़ा हुआ।

गांधी ने दक्षिण अफ्रीका से भारत आकर वर्ष 1919 में 'नवजीवन' (गुजराती) तथा 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) साप्ताहिक समाचार-पत्र निकाले और इनके उपरांत 'हरिजन' साप्ताहिक-पत्र निकाला। ये भी 'इंडियन ओपिनियन' के समान समाचार-पत्र न होकर 'विचार-पत्र थे। और

इनका मूलाधार भी राष्ट्रीयता ही थी। 'इंडियन ओपिनियन' के संपादन-प्रकाशन में राष्ट्रीयता के जिन तत्वों की प्रधानता थी, इन साप्ताहिक पत्रों के जन्म और प्रकाशन में भी वे ही तत्व प्रेरक तथा सक्रिय थे। गांधी की पत्रकारिता का मंच बदला था, विचार नहीं बदले थे, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका और भारत दोनों के स्थानों पर प्रवासी भारतीयों एवं भारत को दासता एवं अन्याय से मुक्त करके स्वतंत्र जीवन प्रदान करने का महान लक्ष्य था। भारत के निवासी दोनों ही देशों में अंग्रेजों के गुलाम थे और अंग्रेजी क्रूरता, दमन और अन्याय के शिकार थे। अतः गांधी की भारत में पत्रकारिता का आधार देश-भक्ति और राष्ट्रीयता ही हो सकती थी। 'नवजीवन' गुजराती का मासिक समाचार-पत्र था और इंदुलाल कन्हैयालाल याज्ञिक इसके संपादक थे। याज्ञिक ने 'नवजीवन' गांधी को सौंप दिया और गांधी ने 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) के साथ अपनी गुजराती भाषा के समाचार-पत्र का दायित्व भी स्वीकार कर लिया, क्योंकि भारतीय भाषा के समाचार-पत्र से ही वे जनता तक पहुंच सकते थे। गांधी के विचार में देश की सेवा करने वाले, समाचार-पत्र ही 'राष्ट्रवादी' अखबार' थे।[38] वे 'इंडेपेंडेंट' को राष्ट्रवादी अखबार मानते हैं और स्वाभाविक है कि वे अपने 'जवजीवन', 'यंग इंडिया' को भी इस कोटि में रखते हैं। इसीलिए वे 'नवजीवन' के उद्देश्यों की चर्चा में जनता की सेवा का ही संकल्प लेते हैं। वे 'नवजीवन' (गुजराती) के 7 मार्च, 1920 के अंक में लिखते हैं कि 'नवजीवन' को प्रकाशित करने का उद्देश्य व्यवसाय करना नहीं है, अपितु उसके माध्यम से जनता की थोड़ी बहुत सेवा करना और जनता में नवजीवन का संचार हो जाने पर उसे यथाशक्ति सरल और सीधी राह बताते हुए जटिल प्रश्नों को सुलझाने में मदद करना है।[39] गांधी का मुख्य धर्म ही जनता की सेवा है। गांधी भारत माता के पुत्र हैं और अपनी मातृ-भूमि की सेवा करना उनका धर्म है। यह उनका स्वदेशी धर्म है कि भारत माता स्वतंत्र हो और वे उसके लिए सेवक बनकर प्रयत्न करें। गांधी ने 3 अप्रैल, 1924 को यरवदा जेल से मुक्त होकर लिखा, 'मैं भारत की आजादी के लिए जी रहा हूं और उसी के लिए मरूंगा, क्योंकि यह सत्य का ही अंग है। स्वतंत्र भारत की उस सच्चे ईश्वर की पूजा करने के योग्य हो सकता है। मैं भारत की आजादी के लिए प्रयत्न क्यों कर रहे हैं? इसलिए कि मेरा स्वदेशी धर्म मुझे सिखाता है कि इस देश में मेरा जन्म हुआ है। इस देश की संस्कृति मुझे विरासत में मिली है, इसलिए मैं अपनी माता की सेवा करने का ही अधिक-से-अधिक पात्र हूं और मेरी सेवा पर पहला हक इस जन्म-भूमि का है, परंतु मेरी स्वदेश-भक्ति मुझे दूसरे देश की सेवा से विमुख नहीं करती।[40] गांधी के इस दर्शन पर संस्कृत के महान ग्रंथों, 'आनंदमठ' के 'वंदेमातरम्' गीत, विवेकानंद, अरविंद घोष, सुब्रह्मण्य भारती आदि का सीधा प्रभाव है जिन्होंने भारत माता को जन्मभूमि के नाते पूजनीय माना और सर्वोच्च स्थान पर स्थापित किया। गांधी की राष्ट्रीयता और देश-भक्ति में अपने जन्म-देश से उनका संबंध माता-पुत्र का है जो उन्हें इस देश की हिंदू संस्कृति से मिला है। यह उनका निजी धर्म है, स्वदेश-धर्म है, राष्ट्र-धर्म है तथा ऐसा मानवीय धर्म भी है। जो उन्हें किसी भी देश की सेवा करने पर अंकुश नहीं लगता। गांधी अपने इस राष्ट्र-धर्म को 'स्वच्छ देश-सेवा'[41] में रूपायित करते हैं और अपने समाचार-पत्रों से वे जनता के कल्याण हेतु अपना संदेश देना

चाहते हैं। वे 'नवजीवन' के प्रकाशन पर लिखते हैं, 'मुझे हिंदुस्तान को कुछ संदेश देकर उसकी सेवा करनी है। मेरे मन में जो कुछ विचार आए हैं, वे कल्याणकारी हैं। मैं इन सब विचारों को आपको समझाने का प्रयत्न कर रहा हूं और ऐसा करने का सबसे बड़ा आधुनिक साधन समाचार-पत्र है।'[42] गांधी इसी मंतव्य के साथ प्रसिद्ध पत्रकार एवं 'हिंदू' के संपादक एस. कस्तूरी रंगा अयंगार को श्रद्धांजलि देते समय कहते हैं कि पत्रकारिता देश के लिए तभी उपयोगी और कारगर होगी और उचित स्थान प्राप्त करेगी जब वह निःस्वार्थ भाव से चलाई जाएगी, जब उसकी अधिकांश शक्ति संपादकों को या स्वयं पत्र-पत्रिकाओं पर आने वाली किसी भी विपत्ति का विचार किए बिना देश की सेवा में लगेगी और जब संपादक परिणामों की परवाह छोड़कर देश की जनता के विचारों को व्यक्त करेंगे। मैं समझता हूं कि हमारे देश में इस तरह की पत्रकारिता पनप रही है। XXX पत्रकार का खास काम तो देश की जनता के मनोभाव को समझना और उसे निश्चयात्मक शब्दों में निर्भयता के साथ व्यक्त करना ही है।'[43] गांधी पत्रकार के रूप में जनता के मनोभाव को जानते हैं, अतः वे 'नवजीवन' में समाचारों को महत्व न देकर 'शांतिपूर्ण स्वराज्य' के लिए सत्याग्रह, अहिंसा आदि का प्रचार करते हैं [45] और स्पष्ट घोषणा करते हैं कि 'नवजीवन' का उद्देश्य स्वराज्य-प्राप्ति है।[45] अतः गांधी की दृष्टि में 'नवजीवन' खरीदने का मतलब है- स्वराज के मार्ग में प्रवृत्त होना, नवजीवन खरीदने का मतलब है- चरखे का स्तवन करना तथा 'नवजीवन' का ग्राहक होना तो सत्य और अहिंसा का सौदा है।[46] गांधी को ज्ञात है कि 'नवजीवन' के ग्राहक गुजराती-भाषी हैं इससे वे भारतीय भाषा में समाचार-पत्र निकालने के महत्व को समझते हैं। वे इस वास्तविकता को 'इंडियन ओपिनियन' के संपादन-कला में भी जानते थे, जब वे अंग्रेजी के साथ गुजराती, हिंदी तथा तमिल में भी स्तंभ प्रकाशित करते थे। गांधी की राष्ट्रीय पत्रकारिता में राष्ट्र की भाषाओं में समाचार-पत्रों के प्रकाशन की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण थी, क्योंकि वे जानते थे कि देशी भाषाओं के माध्यम से ही वे देश के किसान-मजदूरों की विशाल जनता तथा अंग्रेजी न जानने वाले बहुसंख्यक समाज तक पहुंच सकते हैं। असल में, भारतीय भाषाओं वाला समाज ही वास्तविक भारत था [47] और इस भारत-लोक की सेवा तथा 'लोक-शिक्षा'[48] इसी राष्ट्रीयता के अंग थे।

'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) का वैचारिक आधार भी राष्ट्रीयता ही है। समाचार-पत्र की भाषा बदलने से उसके पाठक तो बदलते हैं, लेकिन गांधी के विचार पूर्ववत् रहते हैं। गांधी शिक्षित-अशिक्षित तथा अंग्रेजी भाषा एवं भारतीय भाषा-भाषियों को संदेश तो एक जैसा ही देना चाहते हैं, अतः वे जब यरवदा जेल से लौटकर 'यंग इंडिया' का संपादन पुनः शुरू करते हैं तो लिखते हैं कि 'यंग इंडिया' के पृष्ठों में कोई नई रीति या नीति नहीं मिलेगी तथा मेरे पास कोई नया कार्यक्रम या पैगाम भी नहीं है।[49] गांधी के लिए 'यंग इंडिया' का संपादन-प्रकाशन का कारण यह था कि वे देश के अंग्रेजी में ही समझने-पढ़ने वाले हिंदुस्तानियों, अंग्रेजी सरकार तथा विश्व तक अपने विचारों तथा गतिविधियों को परिचय कराते रहना चाहते थे। गांधी मानते थे कि अंग्रेजी अखबार निकालना उनके लिए कोई बहुत प्रसन्नता की बात नहीं है, लेकिन वे ये भी स्वीकार करते हैं कि वे अपने अंग्रेजी समाचार-पत्र को छोड़ नहीं सकते, क्योंकि अंग्रेज

मानते हैं कि उनकी अंग्रेजी में कुछ खूबी है और पश्चिम से भी मेरा संबंध बढ़ा है।[50] गांधी इन आकर्षणों के बावजूद 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) समाचार-पत्र को अपनी भारतीय दृष्टि से ही चलाते हैं और अपनी रीति-नीति की घोषणा करते हैं। 'यंग इंडिया' के अपने पहले संपादकीय में गांधी 'देश की सेवा' एवं 'पत्रकारिता की शुद्धता' पर बल देते हुए इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- 'यह व्यक्तियों के प्रति होने वाले अन्यायों की ओर ध्यान आकृष्ट करने का अपना कर्तव्य तो निभाएगा ही, साथ ही रचनात्मक सत्याग्रह और यदा-कदा परिशोधक सत्याग्रह की ओर भी शक्ति लगाएगा।'[51] गांधी का यह रचनात्मक सत्याग्रह वास्तव में 'लोकमत के जागरण' और 'स्वराज्य' के लिए ही था। गांधी 'यंग इंडिया' के 12 जनवरी, 1922 के अंक में एक महत्वपूर्ण लेख 'अखबारों की स्वतंत्रता' शीर्षक से लिखते हैं और स्वराज्य, खिलाफत आंदोलन तथा पंजाब के हिंसक संहार एवं प्रतिबंधों के विरुद्ध लोक-मत को जागृत करने वाली भाषण, सभा-सम्मेलन तथा मुद्रण की त्रिविध स्वतंत्रता की मांग करते हैं और इस स्वतंत्रता को ही स्वराज्य का नाम देते हैं। गांधी मानते हैं कि अन्याय का विरोध करने के लिए भाषण, सभा-सम्मेलन तथा मुद्रण की स्वतंत्रता शक्तिशाली और महत्वपूर्ण है और इन तीनों अधिकारों की पुनः स्थापना लगभग पूर्ण स्वराज्य के सामने है।[52] इसी कारण गांधी लोक-मत को बड़ा महत्व देते हैं और मानते हैं कि पत्रकारिता लोक-मत को उत्पन्न करने का एक साधन है।[53]

गांधी 'यंग इंडिया' के अपने संपादकीयों में दो और महत्वूपर्ण बातें कहते हैं- 'एक तो यह पत्रकारिता उनके जीवन का ध्येय नहीं बल्कि साधन है तथा दूसरी कि वे अपने आदर्शों को समाचार-पत्र के द्वारा जन-समुदाय तक पहुंचाना चाहते हैं।' गांधी 2 जुलाई, 1925 को 'यंग इंडिया' में लिखते हैं, 'मैंने पत्रकारिता को पत्रकारिता की खातिर नहीं अपनाया है, बल्कि जिसे मैंने अपने जीवन का ध्येय समझा है, उसे सहायक के रूप में अपनाया है। मेरे जीवन का ध्येय है -अत्यंत संयमपूर्ण जीवन और संयत उपदेश के द्वारा सत्याग्रह के अद्‌भुत अस्त्र का प्रयोग सिखाना-सत्याग्रह, सत्य और अहिंसा से सीधा फलित होने वाला व्यवहार है।'[54] इसी उद्देश्य को वे अंग्रेजी भाषा को जानने वाले पाठकों तक पहुंचाना चाहते हैं। वे 'यंग इंडिया' के 30 अप्रैल, 1925 के अंक में लिखते हैं, 'यंग इंडिया' का अपना निश्चित उद्देश्य है। मैं इसके माध्यम से उन आदर्शों को, जिनका मैं प्रतिनिधित्व करने की कोशिश करता हूं, उस विशाल जन-समुदाय में सर्वप्रिय बनाना चाहता हूं, जो केवल अंग्रेजी ही जानते हैं, हिंदी और गुजराती नहीं।'[55] गांधी ऐसे समाचार पत्रों को, राष्ट्रवादी अखबार[56] कहते हैं और अपने इस कार्य को 'स्वदेशी धर्म' जो उन्हें भारत-माता की सेवा का अधिकार देता है।[57]

गांधी ने 'हरिजन' का संपादन-प्रकाशन कुछ भिन्न रूप में किया। उन्होंने 'हरिजन' को अपने अन्य समाचार-पत्रों के समान ही 'विचार पत्र'[58] बनाया, परंतु उसकी विषय-परिधि को सीमित करके उसे अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन का मुख-पत्र बनाया। गांधी का विचार था कि यह आंदोलन हिंदू समाज तक सीमित होते हुए भी इसका विश्व-व्यापी महत्व है तथा इसे सारी मानव-जाति की सहानुभूति की आवश्यकता है, अतः इसके फलितार्थ एवं इसकी प्रगति की जानकारी विश्व को देना आवश्यक है।[59] गांधी ने 'हरिजन' को 'हरिजन-सेवा' के लिए ही

प्रकाशित किया और इसे 'राजनीति-विषयक सामग्री' से दूर रखा। उनका विश्वास था कि छुआछूत का भूत जब तक हम में भरा है, तब तक स्वराज्य आकाश-पुष्प सा रहेगा।[60] इस प्रकार 'हरिजन' का उद्देश्य 'अस्पृश्यता निवारण' एक 'जबरर्दस्त सामाजिक सुधार' बना। गांधी ने इसे 'सत्य का पक्षपोषक' कहा तथा यह विश्वास प्रकट किया कि यदि सुधारकों ने धीरज रखा तो आज के विरोधी कल के सुधारक बन जाएंगे।[61] इस प्रकार गांधी का मूल उद्देश्य तो स्वराज्य ही था, अतः समाज सुधार के लिए समर्पित होने पर भी 'हरिजन' बंद करने का निर्णय किया, क्योंकि सरकारी आज्ञा की अवज्ञा अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन का अंग नहीं था। गांधी लगभग इसी समय 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन तथा 'करो या मरो' के शंखनाद से देश की स्वतंत्रता का आह्वान कर रहे थे। ऐसे राष्ट्र-हित के आंदोलन के समय गांधी ने समाचार-पत्रों के राष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा राष्ट्रीय दायित्व को रेखांकित करते हुए एक प्रश्न के उत्तर में 3 अगस्त, 1942 को कहा कि कड़ी परीक्षा का समय आने पर हिंदुस्तान के समाचार-पत्र निर्भयता-पूर्वक राष्ट्रीय हित का प्रतिपादन करेंगे तथा राष्ट्रीय-हित की भावना से परिपूर्ण भारतीयों को यह चेतावनी देते रहेंगे कि ऐसा कोई काम न करें जिससे अंग्रेजों के खिलाफ या आपस में हिंसा को प्रोत्साहन मिले, क्योंकि ऐसी हिंसा से अपने ध्येय (स्वराज्य-प्राप्ति) की दिशा हमारी प्रगति अवश्य ही रुक जाएगी।[62] इसी कारण स्वतंत्रता के मिलने के बाद गांधी की दृष्टि में 'हरिजन' समाचार पत्र की आवश्यकता समाप्त हो गई।[63]

गांधी की पत्रकारिता के मूलाधार एवं सर्वोच्च प्रतिमान के इस विस्तृत विवेचन से तथा मूल उद्देश्यों के साथ-साथ स्पष्टीकरण से यह स्पष्ट होता है कि मूलाधार तो राष्ट्रीयता ही थी और उद्देश्यों का निर्धारण भी राष्ट्रीयता तथा देश-हित को ही केंद्र में रखकर हुआ था। गांधी के युवा होते समय बैरिस्टरी के लिए इंग्लैंड जाते समय देश में नवजागरण का दौर चल रहा था और भारत की जनता 'हम क्या थे, हम क्या हैं तथा क्या होंगे अभी' के द्वारा अपने राष्ट्रीय बिंब की खोज में थी। यह विशुद्ध रूप से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण था जो अंग्रेजी साम्राज्यवाद, औपनिवेशिक कुशासन एवं दमन तथ पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठता तथा चमत्कारों के दबाव में अपने राष्ट्रीय स्वरूप को पारिभाषित करके अपनी स्वतंत्रता एवं संस्कृति के लिए जनता को जागृत कर रहा था। इस राष्ट्रीय चेतना की पहली आवश्यकता यह थी कि पहले अपने समाज को सुधारा जाए, अपनी परंपराओं, प्रथाओं और रीतियों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए और उन्हें सुधार कर आधुनिक तर्कों एवं ज्ञान-विज्ञान के अनुकूल बनाया जाए। गांधी जब बैरिस्टरी के लिए इंग्लैंड गए तो राष्ट्रीयता तथा सांस्कृतिक चेतना का यही मनोभाव उनके मन में था और माता को दिए गए वचनों के पालन में अपने भारतीय संस्कारों तथा भारतीय आत्मा की रक्षा का संकल्प था। गांधी के दक्षिण अफ्रीका जाने पर उन्हें कुछ समय में यह बोध हो गया कि भारतीय यहां अपमान तथा दास का जीवन जी रहे हैं और गोरों ने उन्हें अधिकारों से वंचित किया हुआ है। गांधी ने यह भी देखा कि भारतीय समाज धर्म, जाति, क्षेत्र तथा भाषा के आधार पर बंटा है। ऐसे अनुभवों से उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान जागृत हुआ और उन्होंने भारतीयों का मंडल बनाया, उन्हें संगठित करके एकता स्थापित की,

सरकारी कानूनों का उल्लंघन किया, भारतीयों की स्वाभिमान और अधिकारों की लड़ाई लड़ी, स्वयं जेल यात्राएं की, 'इंडियन ओपिनियन' समाचार पत्र निकालकर विश्व के सम्मुख भारतीयों का पक्ष रखा एवं भारतीय समाज को जागृत किया तथा 'हिंद-स्वराज' के लेख लिखकर दक्षिण अफ्रीका के भारतीय समाज में अपने देश एवं संस्कृति के प्रति प्रेम तथा भावी संघर्ष का विचार-दर्शन प्रस्तुत किया। इस प्रकार 'इंडियन ओपिनियन' समाचार-पत्र दक्षिण अफ्रीका के भारतीय समाज को जागृत, संगठित तथा अधिकारों के लिए संघर्षशील बनाने तथा उन्हें अपनी मातृभूमि के साथ जोड़े रखने के लिए ही प्रकाशित किया गया था। 'इंडियन ओपिनियन' परदेश में भी स्वदेशानुभूति एवं स्वदेशाभिमान से परिपूर्ण था तथा गांधी की राजनीतिक- सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों तथा राष्ट्र-दर्शन का यह समाचार-पत्र एक प्रकार से दर्पण बना। गांधी ने सही लिखा था कि 'इंडियन ओपिनियन' में उन्होंने अपनी आत्मा उड़ेलकर रख दी थी। यह आत्मा भारतीय ही थी जिसने गांधी से 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना कराई, 'हरी पुस्तिका' तथा 'हिंद-स्वराज' लिखा, 'इंडियन ओपिनियन' का लगभग दस वर्ष तक संपादन कराया तथा जेल-यात्राएं कीं। गांधी के दक्षिण अफ्रीका के सारे कार्यों के मूल में राष्ट्रीय भावना ही थी, जो उनकी आत्मा का अंग थी और जो उन्हें लोक-सेवा, लोक-शिक्षा तथा हिंदुस्तानी भाई-बंदों की मुक्ति के लिए संघर्षशील बनाती थी। गांधी की दक्षिण अफ्रीका की पत्रकारिता का यह भी वैशिष्ट्य है कि उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' के संपादन तथा उसमें प्रकाशित अपने संपादकीयों एवं लेखों से स्वाधीनता का एक विचार-दर्शन विकसित किया और पत्रकार होकर भी उसे दक्षिण अफ्रीका के मुक्ति-संघर्ष में प्रयोग किया तथा भारत आने पर उसे ही अपने सत्याग्रह एवं स्वराज्य-संघर्ष का आधार बनाया। अतः दक्षिण अफ्रीका तथा भारत की उनकी पत्रकारिता में स्थानगत एवं परिस्थितिगत भेद होने पर भी विचारगत भेद नहीं है।

गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' निकाला, अर्थात् भारतीय दृष्टिकोण और विचार-पक्ष को केंद्र में रखा और भारत में भी 'यंग इंडिया' (युवा-भारत) 'नवजीवन' (भारत का नवजीवन) तथा 'हरिजन' (ईश्वर के प्रिय भारत के नागरिक) में भारत ही केंद्र में था। इस एकरूपता का कारण यही था कि दोनों देशों में हिंदुस्तानी ही गुलाम थे और वे ही अंग्रेजों के दमन अन्याय कुशासन तथा साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा और क्रूरता के शिकार थे। अतः समाचार-पत्र, देश-स्थान आदि बदलने पर भी गांधी का मुक्ति-संघर्ष तो एक ही हिंदुस्तानी समाज के लिए था। गांधी तो दोनों ही स्थानों पर एक ही थे, उनका विचार-दर्शन भी एक ही था, बस इतना अंतर था कि दक्षिण अफ्रीका में अन्यायी कानून, भेदभाव से मुक्ति एवं स्वाभिमान प्राप्ति की लड़ाई थी, वहां भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समूल नष्ट करके भारत में स्वराज्य की स्थापना करना था। इस स्वराज्य के लिए गांधी ने अपनी पत्रकारिता का उपयोग लोक-सेवा, लोक-शिक्षा, लोक-जागरण और लोक-स्वराज्य के लिए करके उसे राष्ट्रीयता के उच्चतम् शिखर तक पहुंचा दिया। अपनी इसी राष्ट्रीयता के कारण गांधी ने देशी भाषाओं का अपनी पत्रकारिता के लिए उपयोग किया और देश की अंग्रेजी न जानने वाली बहुसंख्यक

जनता को निद्रा से जगाया, उन्हें अपना सत्याग्रह-अहिंसा-स्वराज्य का दर्शन समझाया और उनमें देश-प्रेम उत्पन्न करके अपने स्वाधीनता एवं सांस्कृतिक संघर्ष का अंग बनाया। गांधी का ध्येय तो स्वराज्य था, जिसमें स्वशासन, स्व-संस्कृति, स्व-भाषा आदि के साथ अभिव्यक्ति एवं प्रकाशन की स्वतंत्रता थी और पत्रकारिता इस राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति का साधन थी। गांधी का उद्देश्य पवित्र था, अपने देश को स्वतंत्र करना था। अतः इसे प्राप्त करने के साधन के रूप में पत्रकारिता को भी पवित्र और शुद्ध होना था। गांधी की राष्ट्रीय चेतना ने जिस पत्रकारिता की रूप-रचना की थी उसमें पूर्णरूप से पवित्रता, शुद्धता, लोक-हित, लोक-सेवा, नैतिकता, स्वार्थ-विसर्जन तथा मानवीयता विद्यमान थी। गांधी स्वयं को 'शौकिया संपादक'[64] कहते थे, पर वे वास्तव में 'राष्ट्रीय संपादक' थे और अपनी राष्ट्रीयता एवं पवित्र उद्देश्यों से उन्होंने भारतीय पत्रकारिता में एक उच्चकोटि की परंपरा का विकास किया और जिसे गांधी ने 'पत्रकारिता की सर्वोत्तम परंपरा' कहा था।[65] गांधी की इस सर्वोत्तम पत्रकारिता में राष्ट्र-हित, नैतिकता, सत्यता, निःस्वार्थता आदि श्रेष्ठ मानवीय गुण थे जो आचरणमूलक थे। गांधी ने इस पत्रकारिता को अपने जीवन में उतारा, उसका आचरण किया और तभी, वास्तव में तभी, पत्रकारिता में एक सर्वोत्तम प्रतिमान एवं परंपरा का विकास हुआ।

●

★ XXX : संदर्भित पुस्तक से उद्धृत अंश।

संदर्भ सूची-

1. 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा' पृ. 29 तथा 32
2. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-1 पृ. 1
3. 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा' पृ. 83-84
4. वही, पृ. 103-05
5. वही, पृ. 111-13
6. वही, पृ. 116, 7. वही, पृ. 117
8. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-1 पृ. 352, 'नेशनल एडवर्टाइजर की 4 जून, 1986 को हुई भेंटवार्ता
9. 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा' पृ. 122
10. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-5, पृ. 300
11. वही, खंड-7 पृ. 278
12. वही, खंड-10, पृ. 242, 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) के 14 सितंबर, 1912 के अंक से।, 13. वही, खंड- 11 पृ. 323
14. वही, खंड- 11 पृ. 326, 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) के 14 सितंबर, 1912 के अंक से।, 15. वही, खंड- 14, पृ. 83

16. वही, खंड-5, उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' के 16 मई, 1907 के अंक में भी लिखा, 'उनमें (कार्यकर्ताओं में) देश-भक्ति का कुछ-न-कुछ जोश है इसीलिए यह समाचार-पत्र चल रहा है।' (देखें 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-6, पृ. 384)

17. वही, खंड-6, पृ. 176, 18. वही, खंड-12, पृ. 476

19. वही, खंड-12, पृ. 485, 'इंडियन ओपिनियन' के 16 जुलाई, 1914 के अंक से

20. 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा', पृ. 238-39

21. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-29, पृ. 109-10

22. 'हिंद-स्वराज', 'हिंद-स्वराज के बारे में' से पृ. 25-27, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद पुनर्मुद्रण-सितंबर, 2004

23. 'हिंद-स्वराज' पृ. 6

24. वही, पृ. 7, 25. वही, पृ. 12, 26. वही, पृ. 19-20, 27. वही, पृ. 21,28. वही, पृ. 24

29. वही, पृ. 26, 30. वही, पृ. 29, 31. वही, पृ. 31, 32. वही, पृ. 45, 33. वही, पृ. 50

34. वही, पृ. 61-66, 35. वही, पृ. 72, 36. वही, पृ. 74, 37. वही, पृ. 80

38. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-22, पृ. 85 'यंग इंडिया के 22 दिसंबर, 1921 के अंक से

39. वही, खंड-17, पृ. 77

40. वहीं, खंड-23, पृ. 363, 'यंग इंडिया' के 3 अप्रैल, 1924 अंक से

41. वहीं, खंड-25, पृ. 222, 'नवजीवन' (गुजराती) के 3 सितंबर, 1924 अंक से

42. वहीं, खंड-15, पृ. टिप्पणी संख्या - 380 तथा जुलाई, 1919 की टिप्पणी

43. वहीं, खंड-26, पृ. 364-66

44. वहीं, खंड-26, पृ. 222 तथा खंड- 41, पृ. 77

45. वहीं, खंड-41, पृ. 220, 'नवजीवन' (गुजराती) के 14 जुलाई, 1929 में प्रकाशित संपादकीय 'नवजीवन के बारे में'

46. वहीं, खंड-28, पृ. 107, 'नवजीवन' (गुजराती) के 23 अगस्त, 1925 अंक से प्रकाशित टिप्पणी 'मालिकों में से एक' से

47. वहीं, खंड-28, पृ. 171 व 229; 'यंग इंडिया' में 24 सितंबर एवं 8 अक्टूबर, 1919 को प्रकाशित टिप्पणी से

48. गांधी ने गुजराती पत्रकारों को दिए अपने संदेश में 2 नवंबर, 1924 को लिखा था कि संपादक का पद आजीविका के लिए नहीं, बल्कि लोक-सेवा के लिए है। देखें- 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-25, पृ. 298; इसी प्रकार अपने लेख 'समाचार-पत्र' में लिखा था कि सभी समाचार-पत्रों का कार्य लोक-शिक्षा है। देखें- संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-17, पृ. 83, 'महात्मा गांधीनी विचार- सृष्टि' (गुजराती) में संकलित लेख 'समाचार-पत्र' से

49. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' खंड-23, पृ. 363

50. वही, खंड-90, पृ. 427; गांधी ने यह बात 'हरिजन' (अंग्रेजी) के संबंध में 18 जनवरी, 1948 को नई दिल्ली की प्रार्थना-सभा में कही थी

51. वही, खंड-16, पृ. 230; 'यंग इंडिया' के 8 अक्टूबर, 1919 के अंक में प्रकाशित टिप्पणी 'ग्राहकों और पाठकों से'
52. वही, खंड-22, पृ. 188-90
53. वही, खंड-27, पृ. 334
54. वही, खंड-27, पृ. 334
55. वही, खंड-26, पृ. 557
56. वही, खंड-22, पृ. 84
57. वही, खंड-23, पृ. 363
58. वही, खंड-53, पृ. 289; 'हरिजन' (अंग्रेजी) के 11 फरवरी, 1933 को प्रकाशित पहले अंक से
59. वही, खंड-53, पृ. 289
60. वही, खंड-72, पृ. 501
61. वही, खंड-53, पृ. 289; 'हरिजन' (अंग्रेजी) के 11 फरवरी, 1933 के अंक से
62. वही, खंड-76, पृ. 402
63. वही, खंड-89, पृ. 94
64. वही, खंड-30, पृ. 148; 'यंग इंडिया' के 25 मार्च, 1926 के अंक से
65. वही, खंड-26, पृ. 366; 'हिंदू' के संपादक कस्तूरी रंगा आयंगर की श्रद्धांजलि-सभा में दिए गए भाषण से।

हिंदी साहित्य में गांधीजी की अनुगूंज

शिवदयाल

अपने समय का नायक साहित्य से प्रभावित होता है, साथ ही अपने युग के साहित्य को प्रभावित करता भी है। नई जमीन कोड़ने वाला नायक एक नया मूल्यबोध, एक नई संवेदना समाज को देता है, अपने लोगों को एक नई परिवर्तनकामी ऊर्जा से ऊर्जस्वित करता है। यह एक पुराने पेड़ पर नई बहार आने सरीखा दृश्य होता है, जिसमें पीले पत्ते झड़ते हैं और नई कोंपले टहनियों पर उगने लगती हैं। यह पूरी स्थिति साहित्य सृजन के लिए कच्चे माल की तरह होती है, बल्कि साहित्य समेत समस्त कलाओं को ऐसे वातावरण में एक नया उन्मेष मिलता है। प्रायः हर काल और हर समाज के लिए यह एक प्रमाणभूत सच्चाई है। एक महान रचना ही नहीं, महान नायक का नायकत्व भी सृजनहारों के लिए उपजीव्य बनता है। जो नायक कितना बड़ा होता है, यह परिघटना उसी अनुपात में देशकाल घेरती है।

सन् 1917 का साल विश्व इतिहास में एक मील का पत्थर है। इसी साल दुनिया में दो बड़ी, युगांतरकारी घटनाएं घटीं जिन्होंने दुनिया को दो रास्ते दिखाए मानव-मुक्ति के। पहली घटना, माइक्रो स्तर की क्षेत्रफल के हिसाब से, चंपारण सत्याग्रह, और दूसरी माइक्रो यानी वृहद स्तर की, नवंबर में रूस की बोल्शेविक क्रांति।

चंपारण सत्याग्रह कहने को तो एक स्थानीय आंदोलन था, किंतु इसका प्रभाव जल्द ही बहुत व्यापक हो गया। दोनों घटनाएं दमनकारी सत्ताओं के खिलाफ सशक्त प्रतिरोध के रूप में घटीं, लेकिन पहली, यानी चंपारण आंदोलन विदेशी, औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ था, तो रूसी क्रांति स्वदेशी जार-शासन के खिलाफ। सौ साल बाद भी दुनिया पर इन दोनों घटनाओं का प्रभाव है। दुनिया को अपने हिसाब से बेहतर बनाने के दो रास्ते तय हो गए-एक गांधीजी का मनुष्य की अंतर्जात सद्प्रवृत्तियों-करुणा, प्रेम और मेलमिलाप का, सत्य को परिनिष्ठित रास्ता; और दूसरा अन्यायी वर्ग के समूल नाश का क्रांतिधर्मी मार्ग।

1915 में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटे तो उनके साथ वहां के सफल अहिंसक सत्याग्रह की कीर्ति थी। वे कांग्रेस से जुड़े तो उसे जन सरोकारों से जोड़ा। स्वतंत्रता आंदोलन की अनेक धाराएं उस समय विद्यमान थीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने सबसे बड़ी धारा, यानी मुख्यधारा का निर्माण किया और स्वतंत्रता आंदोलन के सर्वप्रमुख नेता बन गए। वे नई चीजों से लैस होकर आंदोलन में उतरे और उसकी बागडोर थामी। 1909 में उन्होंने हिंद स्वराज्य

में लिखा था और देश-दुनिया और औपनिवेशिक शासन के बारे में, अपनी राय कायम करते हुए सभ्यतामूलक विमर्श में शामिल हुए थे। उनका विजन नया था, अस्त्र और रणनीति नई थी जो सीधे आम जन ही नहीं अंतिम जन से जुड़ती थी। गांधीजी इतिहास के पहले राजनीतिक नेता हुए जिन्होंने सत्य और अहिंसा का अस्त्र के रूप में उपयोग राजनीतिक लड़ाई में किया। इसके पहले ऐसे संज्ञा-पदों का उपयोग धर्म और अध्यात्म तथा नीतिशास्त्र में ही हुआ था। सत्य- अहिंसा, साधनों की शुद्धता, आत्म-शुद्धि व परिष्कार, स्वयं आगे बढ़कर कष्ट सहने की तत्परता, दीन-दुःखियों की सेवा का व्रत-राजनीति के क्षेत्र में ये संकल्पनाएं इतनी मौलिक और सर्वस्पर्शी थीं कि सहज ही लोग उनसे जुड़ते चले गए। उनकी एक देशव्यापी अपील तो बनी ही, दुनिया भर में लोगों ने जिज्ञासा और कौतुक से उन्हें देखा। उनके विचार केवल राजनीति नहीं, शिक्षा, अर्थव्यवस्था और व्यापक रूप में सांस्कृतिक बदलाव को भी लक्षित थे। एक साथ उन्होंने दो मोर्चे संभाले-एक ब्रिटिश सत्ता को निर्मूल करने के लिए राजनीतिक संघर्ष, और दूसरा भारतीय समाज की अंतर्निहित उत्पीड़क संरचनाओं के खिलाफ सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्ष। उन्होंने शारीरिक श्रम को मानवीय गरिमा से जोड़ा। अस्पृश्यता, जातिभेद, तथा स्त्री समाज की दुर्दशा को दूर करने के लिए उन्होंने लगातार कार्यक्रम लिए।

भारतीय समाज की विडंबनाओं और अंतर्विरोधों पर बोलने वाले और इनसे मुक्ति की पहल करने वाले वे पहले व्यक्ति नहीं थे, लेकिन उन्होंने इसे अपने राजनीतिक संघर्ष का हिस्सा बनाकर सीधे स्वतंत्रता संघर्ष से जोड़ दिया-यह जरूर पहली बार हुआ। उन्होंने भारतीय समाज के अत्यंत साधारण मानव समूहों, शोषित-दमित वर्गों को, और महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ दिया-उनकी मुक्ति को ही स्वराज का लक्ष्य बना दिया। यह उनकी महान देन मानी गई। स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने को गांधीजी ने प्रत्येक भारतीय की एक नैतिक, बल्कि आध्यात्मिक जरूरत बना दिया। उन्होंने सत्य-अहिंसा को ईश्वरत्व की उपलब्धि से जोड़ा, और एक प्रकार से राजनीति और धर्म को परस्पर संयुक्त कर राजनीति को धर्मसिद्धि का साधन बना दिया।

गांधीजी के भारत की राजनीति में अवतरण के समय तक हिंदी एक भाषा के रूप में एक ओर तो अपना एक मानक स्वरूप ग्रहण कर रही थी, तो दूसरी ओर उसमें साहित्य रचना में लोक जीवन का यथार्थ अपनी स्थाई जगह बना रहा था। एक और बड़ी, और एक अर्थ में युगांतरकारी परिघटना यह थी कि भारतीय जन को औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के लिए जिस एक भाषा की तलाश थी, हिंदी उसकी पूर्ति कर रही थी। हिंदी में भारत की मुक्ति के स्वप्नों और संघर्षों की गूंज थी जिसे गांधीजी सहित उस समय देश के लगभग सभी प्रमुख नेताओं ने स्वीकार किया और हिंदी को राष्ट्रभाषा होने का स्वाभाविक अधिकारी माना जाने लगा। हिंदी राष्ट्रव्यापी संपर्क भाषा के रूप में कार्य कर रही थी और राष्ट्रीय आंदोलन की संवाहक बन रही थी। हिंद स्वराज में गांधीजी ने लिखा-'हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं बल्कि हम पर पडेगी।' यह 1909 की बात है। 1947 में जब वे नोआखाली में शांति के लिए जूझ रहे थे, एक विदेशी पत्रकार ने उनसे पूछा-आप आजादी के जश्न में शामिल नहीं हैं, क्या कहना चाहते हैं, क्या संदेश है? गांधीजी

ने जवाब दिया-दुनियावालों से कह दो गांधी अंग्रेजी नहीं जानता। 'यानी उनका 1909 का एजेंडा अब भी कायम था। भाषा और उपनिवेशवाद के अंतर्संबंधों को वे किस गहराई से समझ रहे थे कि भाषा किस प्रकार उपनिवेशवाद के साथ मूलबद्ध है। वे जान रहे थे कि अंग्रेजी रह गई तो अंग्रेज के जाने के बाद भी आजाद भारत में उपनिवेशवाद बना रहेगा।

हिंदी के महत्व और इसमें अंतर्निहित संभावना को देखकर अनेक रचनाकार ब्रज भाषा और हिंदी क्षेत्र की अन्य भाषाओं से हिंदी में रचना को प्रवृत्त हुए। यही वह समय था जब प्रेमचंद ने उर्दू को छोड़ हिंदी को अपनाया और आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की चौरस आधारभूमि तैयार की। बाद में इसी जमीन से और इसके समांतर भी दूसरी कथा-प्रवृत्तियों का विकास हुआ। यहां यह कहना जरूरी लगता है कि गांधीजी जिन आधारभूत मूल्यों को लेकर राजनीति में आए थे, हिंदी पहले से ही उन्हें आत्मसात कर आगे बढ़ चुकी थी-विशेषकर सामाजिक समता, सांप्रदायिक एकता और स्त्री-अधिकार के प्रश्न। राष्ट्रभक्ति की भावना को तो हिंदी रचनाओं में अभिव्यक्ति मिल ही रही थी। हिंदी रचनाकारों और संपादकों पर उन्नीसवीं सदी के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष और सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों, और बीसवीं सदी के आरंभ में ही बंगभंग और उसके बाद की घटनाओं का पर्याप्त प्रभाव था। एक बहुत महत्वपूर्ण बात जो आज की पीढ़ी को मालूम होनी चाहिए कि स्वदेशी और असहयोग आंदोलन के दौर में गांधीजी ने 1920 में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई थी जबकि उसके 46 वर्ष पूर्व ही 1874 में एक चौबीस वर्षीय हिंदी साहित्यकार, आधुनिक हिंदी के प्रणेता बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने पत्र 'कविवचन सुधा' में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिए एक प्रतिज्ञा-पत्र छापते हैं और लोगों से उस पर हस्ताक्षर करने की अपील करते हैं। वे एक ओर इस कार्य से उपनिवेशवादी अर्थतंत्र को चुनौती देते हैं, तो दूसरी ओर राष्ट्र की उन्नति और जनजागरण के लिए निज भाषा के महत्व को अलग से रेखांकित करते हैं। अब देखिए कि चंपारण सत्याग्रह के तीन-साल पहले 1914 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' में दानापुर, पटना के हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' छाप रहे हैं जो मूल रूप में भोजपुरी में लिखी है। 'एक टोकरी-भर मिट्टी' (माधवराव सप्रे) सन् 1900 में ही लिखी जा चुकी है। प्रथम विश्वयुद्ध को पृष्ठभूमि पर 'उसने कहा था' 1915 में ही छप गई होती है जिसने अपने ढंग से हिंदी कहानी का टोन सेट किया। यह आत्मोत्सर्ग की विलक्षण कहानी है।

1919 में प्रेमचंद के उर्दू उपन्यास 'बाजारे हुस्न' का हिंदी तर्जुमा 'सेवासदन' छप जाता है जिसका मुख्यपात्र एक स्त्री सुमन है जो पारिवारिक-सामाजिक परिस्थितियों के दबाव में वेश्यावृत्ति के दलदल में फंस जाती है। 1917 में चंपारण सत्याग्रह के दो साल बीतते न बीतते अमृतसर का जालियांवाला बाग हत्याकांड होता है जिसने हर हिंदुस्तानी को क्षोभ और ग्लानि से भर दिया। इसकी भयानक हिंसक प्रतिक्रिया भी हो सकती थी, लेकिन इतना जरूर हुआ कि स्वतंत्रता आंदोलन की क्रांतिकारी धारा इसी घटना के बाद से परवान चढ़ी। इन घटनाओं का प्रभाव परवर्ती साहित्यिक रचनाओं पर स्पष्ट दिखता है। गांधीजी और उनके अनूठे आंदोलन की पहुंच भारत के सुदूर ग्रामीण अंचलों तक बनती चली गई। उन पर स्थानीय भाषाओं में जनगीतों की रचनाएं होने लगीं। सियारामशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी जैसे

रचनाकारों और नंददुलारे वाजपेयी सरीखे आलोचकों को भी गांधीजी ने बहुत प्रभावित किया। गांधीजी की नैतिक अपील इतनी जबरदस्त थी कि इससे कोई भी तबका अछूता न रह सका। हिंदी रचनाकारों पर इसका प्रभाव यह हुआ कि उस दौर की रचनाओं में दमित-शोषित जनों की पीड़ा और आक्रोश, साथ ही एक प्रकार का आदर्शवाद भी स्थान पाने लगा।

प्रेमचंद की कथा रचनाओं में यथार्थवाद और आर्दशवाद का मेल साफ लक्षित किया जा कसता है। वे 1921 के असहयोग आंदोलन में सरकारी नौकरी छोड़ पूर्णकालिक लेखक व साहित्यिक पत्रकार और प्रकाशक बन जाते हैं। उनके उपन्यास 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'प्रेमाश्रम' पर असहयोग आंदोलन और गांधीवादी विचार का पूरा प्रभाव है। दूसरी ओर वे 'ठाकुर का कुआँ', 'मंदिर', 'कफन', 'सद्गति', के साथ ही 'ईदगाह' जैसी कहानियां हिंदी बल्कि भारतीय साहित्य को देते हैं। वे कुल तीन सौ कहानियां और एक दर्जन उपन्यासों की रचना करते हैं जिनमें भारत के किसान जीवन पर 'गोदान' जैसा महाकाव्यात्मक उपन्यास शामिल है। वास्तव में गांधीजी जो राजनीति और समाज में कर रहे थे, प्रेमचंद साहित्य में वही कर रहे थे। दोनों की सोच और दृटि में बहुत साम्यता है। दोनों अपने-अपने ढंग से पूंजीवाद, उपनिवेशवाद, वर्चस्ववाद, धर्मवाद और जातिवाद पर प्रहार करते हैं। गांव और किसान दोनों के दिलों में बसते हैं। दलितों और महिलाओं की दुःसह्य स्थिति के प्रति दोनों चिंतित और संवेदित हैं। गांधीजी राजनीति को जिन श्रमजीवी जन-गण, अभावग्रस्त, उत्पीड़ित स्त्री-पुरुष तक ले जा रहे थे, प्रेमचंद के कथा-साहित्य में उन्हीं वर्ग-समूहों के पात्र स्थान पा रहे थे, नायकत्व पा रहे थे।

हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचंद के समानांतर धारा का निर्माण करने वाले जैनेंद्र की मूल चिंता वैयक्तिक एवं सामाजिक नैतिकता को लेकर थी। जैन परिवार से आए जैनेंद्र का स्वाभाविक झुकाव अहिंसा के प्रति है और चिंतन में जो सूक्ष्मता दिखाई देती है, उसका एक कारण यह भी माना जाता रहा है। ऐसे में गांधीजी का भारतीय राजनीति और जनजीवन में प्रादुर्भाव जैनेंद्र के लिए अवश्य ही अतिरिक्त आकर्षण और झुकाव का कारण बना हो। वे भी असहयोग आंदोलन में शामिल हुए (और 1932 में जेल भी गए थे) लेकिन उसी दौर में पूर्णकालिक लेखक बन गए। लेखन में वे जिन प्रश्नों से जूझते हैं और जिन निष्पत्तियों पर पहुंचते हैं, वे सर्वथा मौलिक हैं, तब भी गांधीवादी मूल्य और विचार उनके लिए अवश्य ही उत्प्रेरक का कार्य करते रहे। सुखदा, व्यतीत, विवर्त, सुनीता और जयवर्द्धन जैसे उपन्यासों में यह साफ लक्षित किया जा सकता है। जैनेंद्र तलछट के यथार्थ को अपना विषय नहीं बनाते। पात्रों की पारिवारिक-सामाजिक पृष्ठभूमि को भी वे प्रायः अलग से रेखांकित नहीं करते। वैयक्तिक स्वायत्तता को रचना के केंद्र में लाने वाले वे पहले रचनाकार हैं। त्यागपत्र की अमर पात्र मृणाल को जीवन से जो कुछ मिलता है उसे इस प्रकार ग्रहण करती है, मानो वह उसका अनिवार्य दाय हो-ऐसे में उसका एक प्रकार का आत्मोत्सर्ग ही समाज-व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध का पर्याय बन जाता है। व्यवस्था की जकड़न और क्रूर अमानवीयता ही आखिरकार उभरकर सामने आती है और प्रमोद जजी से त्यागपत्र देकर मृणाल के मूक प्रतिरोध में शामिल हो जाता है। इस छोटे-से असाधारण उपन्यास में गांधीवादी दर्शन खोजा जा सकता है। वस्तुतः जैनेंद्र का सारा तत्व चिंतन व्यक्ति और समाज के बीच के संबंध और अंतः क्रियाओं में एक

ऐसी समस्थिति की खोज में प्रवृत्त होता है जिसमें दोनों एक-दूसरे के लिए स्पेस छोड़ें और अपने को एक-दूसरे से पूर्ण करें। स्त्री उनकी दृटि में संस्कृति की धुरी है, व्यवस्था की मानवीयता की कसौटी भी, लेकिन वह एक स्वायत्त हस्ती भी है। जयवर्द्धन एक अलग ही ढंग का राजनीतिक उपन्यास है जिस पर गांधी-युग के राजनीतिक-सांस्कृतिक विमर्शों की छाया है। इसके पात्र भी उस युग के नायकों की प्रतीति कराते हैं, यदि प्रतिनिधित्व नहीं करते तब भी। हालांकि जैनेंद्र को गांधीवादी तो क्या गांधीजी का अनुयायी कहलाने में भी संकोच होता था, ऐसा 'अकाल पुरुष गांधी' की प्रस्तावना में धर्मवीर ने लिखा है। उस काल के जिन अन्य कथाकारों पर गांधी विचार और दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उनमें सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी (युगावतार गांधी) भगवती प्रसाद वाजपेयी, सुभद्राकुमारी चौहान तथा प्रतापनारायण श्रीवास्तव महत्वपूर्ण हैं। गुप्तजी की कथा रचनाओं से आज की पीढ़ी शायद ही परिचित हो। अन्य लेखकों की भी रचनाएं मालूम नहीं उपलब्ध हैं भी या नहीं। विष्णु प्रभाकर वेश और आचार-विचार से गांधीवादी थे। उनकी 'उस रात' और 'वापसी' जैसी अनेक कहानियां प्रमाण हैं। गांधी-दर्शन का प्रभाव स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य पर भी बना रहा। रेणु के 'मैला आँचल'(1954) में बिहार के सुदूर ग्रामीण अंचल मेरीगंज में स्वतंत्रता आंदोलन पहुंचा है, गांधीजी पहुंचे हैं (सदेह भले नहीं)। पूरा कथानक इसी पृष्ठभूमि पर बुना गया है-स्वतंत्रता आंदोलन का अंतिम दौर और स्वतंत्रता-प्राप्ति। उपन्यास का नायक डॉक्टर प्रशांत गांधीवादी आदर्शवाद के प्रभाव में ही गांव में रहकर लोगों के दुःख-क्लेश हरने का संकल्प लेता है।

'नाच्यो बहुत गोपाल' (1975-76) अमृतलाल नागर का अत्यंत चर्चित और महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसकी ब्राह्मणी से भंगिन बनी नायिका अंत में लेखक (कथा सूत्रधार) से कहती है-स्वतंत्रता, आजादी बड़ी चीज हैं। इस दुनिया में दो ही पुराने से पुराने गुलाम हैं भंगी और औरत। जब तक ये आजाद नहीं होते, आप की आजादी सौ प्रतिशत झूठी है।' निर्गुनिया देवी अब अस्सी बरस की हो चली है और मेहतरों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए स्वयं को समर्पित कर चुकी है। मॉरीशस के हिंदी लेखक अभिमन्यु अनत ने तो अपने यहां भारतवासियों द्वारा अपने शोषण-दोहन के खिलाफ चले आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखे अपने उपन्यास का शीर्षक ही दे दिया है-'गांधीजी बोले थे'। उसी प्रकार गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास पर गिरिराज किशोर ने एक बहुचर्चित उपन्यास लिखा-'पहला गिरमिटिया'। रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों- 'किस्सा गुलाम' और 'गोबर गणेश' में गांधीवादी पात्र हैं जो कथानक में पर्याप्त जगह घेरते हैं। यहां अमरकांत के उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' की चर्चा जरूरी है जिसमें स्वतंत्रता आंदोलन के मूल्यों में आज की त्रासदी और विडंबनाओं का हल तलाशने की कोशिश दिखाई देती है। इसमें गांधीजी को साम्राज्यवाद के विरोध में सबसे बड़ा स्तंभ बताया गया है। लेखक ने गांधी का पुनर्मूल्यांकन किया है। अपने अंतिम वर्षों में अकेले पड़ते गए महानायक, युगपुरुष गांधी की पीड़ा और वेदना को मार्मिकता से उजागर करने वाला नंद किशोर आचार्य का नाटक 'बापू' भी खासा चर्चित है। नाटक की जब बात चली है तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नौटंकी शैली के राजनीतिक नाटक 'बकरी' की चर्चा अनिवार्य है। नाटक में दिखाया गया

है कि कैसे स्वतंत्रता आंदोलन के मूल्यों का स्वार्थी, सत्तालोलुप नेता गला घोंट रहे हैं। बकरी की सर्वेश्वर ने गांधीजी की बकरी से सदृश्यता स्थापित की है-जो वास्तव में देश की भोली-भाली जनता है। यह नाटक गांधीजी और गांधीवाद के नाम पर चल रहे छल-प्रपंचों को बेनकाब करता है।

यह तो रही कथा-साहित्य की बात। हिंदी कविता पर भी गांधीजी के व्यक्तित्व और विचारधारा का बहुत प्रभाव रहा। उनके समय, यानी गांधीयुग का शायद ही कोई कवि उनके प्रभामंडल से अछूता रहा हो। सियारामशरण गुप्त की कविता 'बापू', रामनरेश त्रिपाठी की 'पथिक' माखनलाल चतुर्वेदी की 'निःशस्त्र सेनानी' बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'तुम युग परिवर्तन कालेश्वर' जैसी रचनाएं कालजयी हैं। 1921 के असहयोग आंदोलन की पहली गिरफ्तार महिला सत्याग्रही थीं सुभद्राकुमारी चौहान जो पति के साथ आंदोलन में शामिल हुई थीं उनकी इस गिरफ्तारी पर भी एक कविता है-गिरफ्तार कर लो। वे कई बार जेल गईं और यातनाएं सहीं और लगातार लिखती भी रहीं। उनके दो कविता संग्रहों और तीन कथा संग्रहों में उस पूरे दौर की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति और द्वंद्व दर्ज है, स्त्री-प्रश्न सहित। उनमें से अनेक रचनाएं गांधीजी पर केंद्रित, या उन्हें लक्षित हैं, प्रभाव तो है ही, जैसे-लोहे को पानी कर देना, विजयादशमी, गिरफ्तार कर लो, सभा का खेल आदि। कुछ पंक्तियों पर नजर डालते हैं -

छिड़ा आज यह पाप-पुण्य का
युद्ध अनोखा एक सखी
मर जावें पर साथ न देंगे
पापों का, है टेक सखी
पंद्रह कोटि असहयोगिनियां
दहला दें ब्रह्मांड सखी
भारत-लक्ष्मी लौटाने को
रच दें लंका कांड सखी
छेड़ दिया संग्राम, रहेगी
हलचल आठों याम सखी!
असहयोग सर तान खड़ा है
भारत का श्रीराम सखी! (विजयादशमी)
'सतयुग त्रेता देता बीता, यश-सुरभि राम की फैलाता,
द्वापर भी आया, गया, कृष्ण की नीति-कुशलता दरशाता
कलियुग आया, जाते-जाते उसके गांधी का युग आया।

गांधी की महिमा फैल गई, जग ने गांधी का गुण गाया।' (लोहे को पानी कर देना) इनके अलावा सोहनलाल द्विवेदी, 'सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, गुलाब खंडेलवाल, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंश राय 'बच्चन', भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल ने भी गांधीजी पर केंद्रित या उनसे प्रभावित कालजयी रचनाएं कीं। गांधीयुग लगभग छायावाद

का ही काल है। छायावादी कवियों में मुख्य रूप से पंत और महादेवी पर गांधीवादी दर्शन का प्रभाव झलकता है। लेकिन इस मुद्दे पर दो राष्ट्रकवियों समेत तीन कवियों को अलग छांटा जा सकता है। पहला नाम आता है राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जो आजीवन गांधीजी से प्रभावित रहे। स्वतंत्रता के लिए जनजागरण करनेवाली कृति 'भारतभारती' के अलावा 'साकेत' और 'पंचवटी' तो मानो गांधीजी के अराध्य राम के चरित्र की झांकी प्रस्तुत करने वाली कृतियां है। 'यशोधरा' और 'उर्मिला' जैसी पौराणिक दुःखी व उपेक्षित स्त्री पात्रों को भी उन्होंने मानो राष्ट्रीय चेतना की धारा में सजीव खड़ा कर दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैथिलीशरणजी ने अपने समय में अपने शब्दों से परतंत्र भारत में स्वातंत्र्य चेतना भरने का अद्‌भुत, अपूर्व पुरुषार्थ किया। इसी कारण स्वयं गांधीजी ने उन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित किया।

रामधारी सिंह दिनकर स्वतंत्रता पूर्व ही विद्रोही कवि के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। स्वतंत्रता जब सन्निकट थी, जून 1947 में उन्होंने 'बापू' शीर्षक से चार कविताओं का एक संकलन प्रकाशित किया। उस समय देश सांप्रदायिक हिंसा की आग में जल रहा था, और दुनिया ने अभी-अभी द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका झेली थी। घृणा और हिंसा के इस माहौल में दिनकर को गांधीजी में ही आशा की किरण दिखाई दे रही थी लेकिन छह माह पश्चात ही उनकी जघन्य हत्या से दिनकर इतने क्षुब्ध और मर्माहत हुए कि मई 1948 में 'बापू' शीर्षक से उन्होंने दूसरा संग्रह प्रकाशित किया, जिसकी पंक्तियां हैं -

'लौटो, छूने दो एक बार फिर अपना चरण अभयकारी
रोने दो पकड़ वही छाती, जिसमें हमने गोली मारी'
'बापू ने राह बना डाली, चलना चाहे संसार चले
डगमग होते हों पाँव अगर, तो पकड़ प्रेम का तार चले।'

गांधीजी के जीवन-दर्शन को साधने वाले तीसरे कवि हैं सतपुड़ा के घने जंगलों की नमी में सिंचे-पगे भवानी प्रसाद मिश्र। वे मन से, विचार से, कर्म से, वेशभूषा और जीवन-व्यवहार से गांधीवादी हैं। यहां तक कि गांधीजी की उज्ज्वल सादगी भवानी भाई की भाषा में भी उतर आई है - 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख/और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख' दिनकर की राय में भवानी प्रसाद मिश्र शुद्ध गांधीवादी कवि हैं। गद्य में जिस प्रकार गांधीजी का प्रतिनिधित्व जैनेंद्र कुमार ने किया, काव्य में वही काम पहले सियारामशरण गुप्त और अब भवानी प्रसाद मिश्र कर रहे हैं।' 'गांधी पंचशती' में भवानी दादा ने गांधीजी पर केंद्रित पांच सौ कविताएं लिखीं, और इनके बारे में स्वयं उनका मानना है कि उन्होंने गांधीजी के व्यक्ति के स्थान पर उनके विचार-सूत्रों को ही पकड़ने की कोशिश की है। भवानी प्रसाद मिश्र ने इस पंचशती में गांधीजी के जीवन-प्रसंगों और सरोकारों के साथ-साथ सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, प्रेम, करुणा, विश्वबंधुत्व के दर्शन-तत्वों को पकड़ने और साधने की कोशिश की है, वह भी एकदम आमफहम भाषा में। एक बानगी देखिए-

'है शपथ तुम्हें करुणाकर की
है शपथ तुम्हें उस नंगे की,
जो स्नेह की भीख मांग-मांग

मर गया कि उस भिखमंगे की!
हे सखा, बात से नहीं
स्नेह से जरा काम लेकर देखो
अपने अंतर में नेह
अरे, देकर देखो'
फिर उन्होंने यह भी लिखा -
'आजादी का हमारा मसीहा
उदास हो गया और अकेला हो गया
कल तक के उसके पिछलगुए
तोप हो गए, वह माटी का ढेला हो गया।'

वैसे रमेशचंद्र शाह की कविता 'सपने में वायसराय' में गांधीजी निराले अंदाज में प्रकट होते हैं- 'सच यह भी है/हमने जो-कुछ किया/तुम्हारे भले के लिए/बेशक, इसमें कुछ तो लाभ हमारा भी होना था आखिर/बीज फूट के सभी/तुम्हारी मिट्टी में थे।/हां, हम सचमुच ही बनिए थे/इसीलिए तो हुए पराजित/अपने से भी बड़े एक बनिए से/जिसे बनाने में/थोड़ा-सा योग हमारा निश्चय था/तुम/मानो/ना मानो।' समकालीन हिंदी कविता के युवतर हस्ताक्षर दिनकर कुमार अपनी कविता 'पांच सौ के नोट पर गांधी' में व्यंग्योक्ति का उपयोग कर विडंबना को चित्रित करते हैं- 'जब यह कागज का टुकड़ा/रौंद डालता है सत्य को/आदर्श को, जीवन मूल्यों को/जब यह कागज का टुकड़ा/निगल जाता है/भविष्य की संभावनाएं/गांधी तब भी खिलखिलाते रहते हैं।' गांधीजी पर न मालूम कितने लेख-निबंध हैं, उनकी जीवनियां हैं, गांधी चरित्र मानस (विद्याधर महाजन, 1954) भी हैं। हिंदी के विचार साहित्य में गांधी नामक चरित्र, उसका चिंतन और कर्म बहुत बड़ी जगह घेरता है। हजारों किताबों में उनके संदर्भ हैं, उद्धरण हैं, व्याख्याएं और भाष्य हैं। हिंदी साहित्य में गांधीजी की अनुगूंज इतनी विराट है कि वह ऐसे लेख में समा नहीं सकती है, उसका अंदाजा भर लगाया जा सकता है।

उनके साथियों, पथबंधुओं ने भी उन पर कितना-कुछ लिखा है। डॉ. राजेंद्र प्रसाद की एक किताब ही है -'बापू के चरणों में'। अपनी 'आत्मकथा' में भी उन्होंने गांधीजी के बारे में उनके जादुई व्यक्तित्व के बारे में काफी कुछ लिखा है। इसी प्रकार विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, दादा धर्माधिकारी, धीरेंद्र मजूमदार, किशन पटनायक, धर्मपाल जैसे अनेक विचारकों की रचनाओं में गांधीजी उपस्थित हैं। हिंदी के अनेक संस्मरण लेखों में भी उनकी प्रभावशाली उपस्थिति है। यहां 'अकाल पुरुष गांधी' का उल्लेख किए बिना यह तुच्छ लेखकीय उद्यम पूरा नहीं होगा। 'अकाल पुरुष गांधी' जैनेंद्र कुमार के गांधी पर लिखे लेखों-निबंधों-संस्मरणों का संकलन है, जिसका आमुख स्वयं जैनेंद्र ने लिखा है, जबकि प्रस्तावना धर्मवीर ने लिखी है। इस पुस्तक का पहला संस्मरण लेख 'महात्मा गांधी' एक अद्‌भुत, असाधारण रचना है जिसमें लेखक ने गांधीजी से अपनी पहली भेंट से लेकर उनके महाप्रस्थान तक की घटनाओं को आख्यान के रूप में अत्यंत मर्मस्पर्शी ढंग से लिखा है-विचार और संवेदना के आवेग पाठक को झकझोर कर रख देते हैं। स्वयं जैनेंद्र के ही शब्दों में- 'मुझे निज को उस

कुंजी की खोज रही है जो उनके अनंत वैचित्र्य और रहस्य को मानों आकाश की भांति खुला कर दे।' 'महात्मा गांधी' लेख का अंत इन शब्दों से होता है- 'तब अर्थी उठी और सड़कों पर, मैदानों में, जितने समा सके आदमी साथ हुए और उसको भस्मीभूत कर आए जो आत्मीभूत हो गया था!'

महात्मा गांधी केवल एक महान राजनीतिक नेता नहीं थे, संस्कृति उन्नायक भी थे जिन्होंने लाखों-करोड़ों लोगों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल दिया। उन्होंने विचार और कर्म का भेद मिटा दिया। जो कुछ कहा, वह कहने के लिए नहीं कहा, स्वयं करके दिखाया। उन्होंने साधन और साध्य का अंतर मिटा दिया। सत्य और अहिंसा के जरिए सत्य और अहिंसा की उपलब्धि। परिवर्तन के गतिशास्त्र के हिसाब से देखें तो यह विचार इतना मौलिक, इतना क्रांतिकारी है कि मानों व्यष्टि और समष्टि को समूल बदल देने का सामर्थ्य इसमें है। सत्य और अहिंसा पर आधारित समाज-अब इससे दिव्य और पावन और कौन-सा लक्ष्य, कौन-सा स्वप्न मनुष्य समाज का हो सकता है! इस परिकल्पना के पीछे गांधीजी का यह अटल विश्वास था कि मनुष्य मात्र में किंचित मात्र में ही सही मनुष्यता होती है। मनुष्य पूरी तरह मनुष्यता रहित नहीं हो सकता। मनुष्य के अंदर की इस मनुष्यता को-करुणा, दया, प्रेम को पाशविक बल से नहीं जगाया जा सकता। इतिहास-पुराण ऐसे प्रसंगों से भरे पड़े हैं। उनकी एक और बड़ी कोशिश प्रकृति और मनुष्य की सायुज्यता को बनाए रखने, उसे और विकसित करने की रही है। आज इसकी सबसे अधिक जरूरत महसूस की जा रही है। उसी प्रकार ट्रस्टीशिप के विचार की जैसी प्रासंगिकता आज है, पहले कभी नहीं थी। उन्होंने दिखाया कि कमजोर से कमजोर व्यक्ति और समाज भी बिना हथियार उठाए सत्य और न्याय की लड़ाई लड़ सकता है इसीलिए गांधी जीते जी दमित मानवता की मुक्ति के प्रतीक बन गए, आज भी बने हुए हैं। वे इस हिंसक, अन्यायी, प्रकृतिद्रोही, आत्मघाती सभ्यता का वास्तविक और विश्वसनीय, साथ ही देशी विकल्प प्रस्तुत करते हैं। गांधीजी को खंड-खंड में अपनाने की जगह समग्रता में स्वीकार करना होगा। सबसे पहले तो सत्य को जीवन में जगह देनी होगी-निजी तौर पर भी और सामाजिक तौर पर भी।

गांधीजी स्वयं मानो एक रचनाकार थे एक बेहतर रचनाकार की तरह वे कभी अपने काम से संतुष्ट नहीं हुए, सदा अपने को कसौटियों पर कसते रहे। उनका जीवन एक परीक्षार्थी का जीवन भी रहा। पर-विचार, विरोधी विचार को समझने और विरोधियों के साथ संवाद की जैसी सहज तत्परता उनमें थी, वह कहीं देखने को नहीं मिली। गांधीजी का साहित्य और सृजनशीलता पर जो स्पष्ट और स्थूल प्रभाव पड़ा, वही बहुत व्यापक है, लेकिन उनके होने का जो सूक्ष्म और परोक्ष प्रभाव है, उसकी तो थाह लेना भी असंभवप्राय है। उनका यह 'अनंत वैचित्र्य' आपको उनसे बाहर नहीं होने दे सकता, हिंदी का एक कवि सतपुड़ा के बचे-खुचे जंगलों से आवाज लगाकर कह रहा है -

'उससे हटकर कदापि नहीं होगा कुछ
जो कुछ होगा सो होगा उसके पास जाने से।'

गांधी विचार में मानव की अवधारणा

रामजी सिंह

गांधी न तो कोई शास्त्रीय तत्त्वचिंतक थे और न किसी संसदीय दर्शनतंत्र के पुरस्कर्त्ता। मूलतः और अंतर से वे एक आध्यात्मिक और धार्मिक व्यक्ति थे, हां बारह से वे एक महत्वपूर्ण सामाजिक राजनैतिक कर्ता-पुरुष बने रहे। यों गांधी के व्यक्तित्व में अंतर और बाह्य व्यक्तित्व भी है भी नहीं। उसके लिए तो मानव जीवन एक समग्रता है, जिसे हम सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक बिलकुल बंद एवं अलग-अलग घरौंदों में रखकर नहीं समझ सकते। दैनिक जीवन से अलग अध्यात्म कोई अमूर्त्त कल्पना नहीं, यह तो जीवन का यथार्थ है। यही कारण है कि बापू ने आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन, धर्म और राजनीति, अर्थतंत्र और नैतिकता में कोई आत्मविरोध नहीं पाया। उन्होंने न अर्थनीति को अस्पृश्य माना, न राजनीति को गर्हित समझा बल्कि आजीवन एक वैकल्पिक अर्थ-व्यवस्था और नीतिमान राजनीति प्रवर्त्तनकर्ता रहे हैं। उनका तो मानना था कि 'जब तक हम जन साधारण के साथ अपने को एकात्म नहीं कर लेते तब तक हमारी धार्मिकता कोरी कल्पना है और जन समूह के साथ जुड़ने के लिए हमें राजनीति से जुड़ना ही होगा। फिर राजनीति तो सर्प की वह कुंडली है जिसके बीच से हम निकल नहीं सकते अतः हमें तो उससे जूझना ही होगा। उसी तरह गांधी के लिए सच्चे अर्थशास्त्र का नैतिकता से कोई विरोध नहीं है। सच्चा अर्थतंत्र सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करते हुए समाज के अंतिम व्यक्ति को ध्यान में रखकर 'सर्वजन हिताय सब जन सुखाय' के सिद्धांत को चरितार्थ करता है। उसी तरह सच्ची शिक्षा, मानव के अंतर्निहित असीम और अनंत संभावनाओं और अच्छाइयों के विकास से जुड़ी है।

असल में प्रत्येक सामाजिक-राजनैतिक विचारधारा का मूलाधार उसकी अपनी मानव की अवधारणा पर निर्भर करती है। गांधीजी की मानव- अवधारणा उनके समस्त सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक और शैक्षिक विचारधारा सौर मंडल में सूर्य की तरह केंद्र-बिंदु है। यदि हम बापू के मानव की अवधारणा को अंगीकार कर लें तो फिर उनके रामराज्य की कल्पना, ट्रस्टीशिप की योजना, बुनियादी शिक्षा तथा प्राकृतिक चिकित्सा की भावना स्वतः उनके मूल सिद्धांत से निःसृत पाएंगे। यह एक पहेली है कि बौद्धधर्म की भांति ही प्रायः गांधीवाद भी भारत में पूजित होकर निर्वासित हो गया। गांधी के बाद गांधीवाद के प्रति मौखिक प्रशस्तियों का अभाव नहीं रहा लेकिन कुछ निष्ठावान व्यक्तियों को छोड़कर गांधीवाद एक गगन-विहारी

स्वप्नदर्शी अवास्तविक सिद्धांत प्रतीत होने लगा है। गांधी केवल औपचारिक कर्मकांड, निहित स्वार्थ एवं राजनैतिक शोषण की दयनीय सामग्री बन गए। दूसरी ओर भारत से बाहर आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक, टायनबी और सोरोकिन जैसे समाजशास्त्री, और एटनबरो जैसे फिल्म निर्माताओं को अणुयुग के अँधकार में गांधी ही एकमात्र प्रकाश की किरण के रूप में दीख रहे हैं। लगता है कि विज्ञान ने हमें जो अपार शक्ति प्रदान की है, शायद हम उसके अधिकारी नहीं हैं। एक ओर तो हमने विज्ञान में अत्युच्च प्रवीणता एवं परिपक्वता प्राप्त की है किंतु दूसरी ओर सत्ता की लिप्सा, आर्थिक अभीप्सा और दार्शनिक संकीर्णता हमारे लिए नित्य नवीन समस्याएं खड़ी करता जा रहा है। यही कारण है महाविध्वंस के उपकरण निर्माण करने में हमने तो कुशलता प्राप्त कर ली है लेकिन परस्पर सहयोग एवं शांति-पूर्वक साथ रहना नहीं सीख पाए हैं। मानो हम आशान्वित भीम और नैतिक वामन के युग में जी रहे हैं। हमारी बौद्धिक कुशलता अवश्य विकसित हुई है लेकिन उस अनुपात में हमारा विवेक विकसित नहीं हो सका है। दिक् एवं काल पर विजय प्राप्त कर हम प्रकृति के ऊपर अवश्य हावी हुए हैं, लेकिन मानव-प्रकृति पर ही हमारा अंकुश ढीला होता जा रहा है फलस्वरूप मानवीय गरिमा के प्रति हमारे आदर का ह्रास हुआ है। भौतिक उत्पादन की क्षमता अवश्य बढ़ी है, लेकिन हम उसे परस्पर बांटकर उपभोग करने की अपेक्षा पाशविक प्रतियोगिता में उलझते जा रहे हैं। इन्हीं सब कारणों से भौतिक विपुलता एवं समृद्धि तथा ज्ञान-विज्ञान के अत्यधिक विस्तार के बावजूद भी मानवता दुख एवं दुर्भाग्य में जी रही है इसलिए हमारा यह प्रश्न है कि मानव-समाज के पुर्ननिर्माण की दिशा क्या हो?

संभवतः विख्यात समाजशास्त्री पिटरिम सोरोकिन ने 'मानव का निर्माण' (Reconstruction of Humanity) लिखकर उसे मोहनदास कर्मचंद गांधी को समर्पित कर दिया। इतिहासज्ञ टायनबी ने सभ्यता के संकट को समझते हुए कहा था-' विज्ञान और प्रौद्योगिकी मानव की यदि दो महान उपलब्धियां हैं तो मानवीय संबंधों में उसकी महान असफलता है और इसका सबसे अँधकारमय क्षेत्र राजनीति का है। किंतु गांधी ने बिना अपने दामन पर कोई दाग लगाए बिना और सत्ता से अलग रहकर राजनीति का भी अध्यात्मीकरण कर दिया।' व्यक्ति समाज में रहता है, असल में समाज के बाहर वह नहीं रह सकता है लेकिन प्रश्न है कि वह वहां संशय, अविश्वास उसके जीने का आधार होगा? संशय और अविश्वास, घृणा और भय के वातावरण में रहना चाहेगा या पारस्परिक प्रेम और विश्वास उसके जीने का आधार होगा? संशय और अंधविश्वास ही हिंसा की जननी है और हिंसा विवेक शत्रु है। हिंसा और चिंतन दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते क्योंकि हिंसा कोई युक्तिवाद नहीं यह विशुद्ध रूढ़िवाद है।

मानव-धारणा के अध्ययन के संदर्भ में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं-

(क) मानव-प्रकृति और उसके स्वभाव का वास्तविक स्वरूप क्या है?

(ख) गांधी की मानव की अवधारणा में क्या कोई दार्शनिक असंगति है अथवा नहीं?

जहां तक पहला प्रश्न है कि मानव-प्रकृति का स्वरूप क्या है, वह विवरणात्मक एवं मनोविज्ञान का विषय है। मैक्डूगल जैसा मूल प्रवृत्तिवादी मनोवैज्ञानिक मानव को मूल-प्रवृत्तियों का संगठन मानता है। फ्रायड ने 'काम-प्रवृत्ति' को प्रमुखता दी है और एडलर ने 'अहंभाव' के

द्वारा मानव जीवन की व्याख्या करने की कोशिश की है। हाब्स आदि विचारकों ने मानव-प्रकृति में स्वार्थ-वृत्ति को स्थान दिया है। अतः यह कहकर कि मानव-प्रकृति का अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है, हम उसे दार्शनिक चिंतन से सर्वथा अलग नहीं कर सकते। आखिर समाज-दर्शन कोई अमूर्त-चिंतन नहीं, और न वह शून्य से ही उद्‌भूत होता है। वास्तविकता की उपेक्षा कर जो दर्शन और चिंतन निर्मित होता है, वह अंततोगत्वा गगन विहार तो होता ही है, साथ-साथ सैद्धांतिक असंगतियों का भी शिकार हो जाता है। विचार और आचार, सिद्धांत और व्यवहार को अलग-अलग बंद प्रकोष्ठों में देखना सम्यक् चिंतन का लक्षण नहीं है।

गांधी की दृष्टि में मानव केवल जैविक या आर्थिक यांत्रिक इकाई ही नहीं है बल्कि वह बहुआयामी है। मानव एक सामाजिक जीव है जो सदा से शांति न्याय, सामंजस्य एवं सुख की खोज में रहा है। मानव का अस्तित्व, विकास और सभ्यता संस्कृति सब कुछ समाज पर निर्भर है। आइंस्टीन ने स्पष्ट कहा है- 'प्रत्येक दिन हजारों बार मैं स्मरण करता हुआ महसूस करता हूं कि मेरा अंतः और बाह्य जीवन दूसरों के श्रम पर निर्भर है।' फिर भी गांधी ने व्यक्ति को परम पुरुषार्थ माना है। आखिर संस्थाएं मानव के लिए हैं, मानव संस्थाओं के लिए नहीं। मानव संस्थाओं एवं संगठनों से ऊपर है। प्राचीन यूनान के दार्शनिक प्रोटा गोरस संभवतः इसी भावना से उत्प्रेरित होकर 'मनुष्य एवं प्रमाणम्' (Man in the messure of all things) का पूरा नारा दिया था। व्यास ने भी इसी भावना को 'न हि श्रेष्ठतरं किंचित् मानुषात्' कहकर पुष्टि किया था। रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी इसीलिए सांप्रदायिक-धर्म से ऊपर उठकर 'मानव-धर्म' की बात रखी थी-*'सवार ऊपरे मानुष सत्य ताहार ऊपरे नाई।'*

अब प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त गांधी की मानव-अवधारणा के दार्शनिक आधार क्या हैं? गांधी मानव के महत्व को अवश्य स्वीकार करते हैं लेकिन सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता के रूप में ईश्वर को मानते हैं। अतः जब तक ईश्वर एवं मनुष्य का संबंध निर्धारित नहीं हो जाता मानव का स्वरूप भी अस्पष्ट रहेगा लेकिन प्रश्न है कि क्या मानव और ईश्वर या आत्मा और परमात्मा एक ही तत्व है जैसा अद्वैत वेदांत ने 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर इसका प्रकट किया है या फिर मानव और ईश्वर के बीच भेदाभेद का संबंध है। यदि मानव और ईश्वर को एक तत्त्व मान लिया जाए तो फिर संसार की वास्तविकता आदि के प्रश्न परमार्थ एवं व्यवहार के द्वैत में उलझकर रह जाएंगे इसलिए अद्वैत दर्शन के प्रखर आधुनिक पुरस्कर्ता स्वामी विवेकानंद ने 'नर-नारायण' रखकर मान सेवा को ही ईश्वर-प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन बताया है। आधुनिक बोधितत्व की भांति विवेकानंद की प्रार्थना है- 'यहां मेरा बार-बार जन्म हो ताकि मैं अनंत दुःख भोगते हुए भी दुखी एवं दरिद्र मनुष्यों की सेवा कर सकूं।'

मदन मोहन मालवीयजी की दैनिक प्रार्थना भी यही थी-

'नात्वहं कामये राज्यं स्वर्ग नापुर्नभवम्
कामये दुखतप्ताणां प्राणीनाम आर्त्तनाशनम्॥'

'गीतांजलि' में गुरुदेव ने गाया है-

'प्रभो तुम्हारे चरण वहीं हैं जहां दुखी से दुखी, दरिद्र से दरिद्र, और सबसे दलित एवं पतित लोग हैं।' प्रख्यात आधुनिक विशप स्वामी एजेंल्स फर्नांडीज ने 'प्रार्थना से जीवन' को

जोड़ने की सलाह दी है। टॉल्सटॉय ने भी ईश्वर का राज्य 'मानव के मन-मंदिर में' ही पाया था। यही सब कारण है कि गांधी ने मानव को ईश्वर तो नहीं लेकिन उन्हीं का अंश माना है। ईश्वर अंश जीव अविनाशी। वे अकसर कहा करते थे- 'आदम खुदा नहीं लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।'

मानव को ईश्वरांश मान लेने से ही परिप्रेक्ष्य परिवर्तित हो जाता है। इसका अर्थ है कि मानव केवल पाशविक और शारीरिक प्रवृत्तियों का यांत्रिक संगठन ही नहीं उसका बौद्धिक एंव आध्यात्मिक पक्ष भी है। 'आहार, निद्रा, भय और मैथुन' पशु एवं मानव से समान हैं। विवेक मानव का व्यावर्त्तक गुण है और साथ ही वह एक सामाजिक जीवन भी है। गांधी का मानना था कि मानव का शारीरिक, बौद्धिक और यहां तक कि सामाजिक पक्ष मनुष्य के बाह्य स्वरूप एवं उसके व्यवहारों के विश्लेषण पर आधारित हैं। उसका आंतरिक पक्ष तो आध्यात्मिक है। मानवीय विकास की प्रक्रिया में हम स्थूल से सूक्ष्म बाह्य से अभ्यंतर एवं भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर जाते हैं। गांधी ने गीता और रामायण का आध्यात्मिक भाष्य करते हुए आसुरी और दैवी वृत्तियों के महाभारत में अंततोगत्वा दैवी वृत्तियों की ही विजय दिखाई है। गांधी यथार्थवादी की भांति मानव निहित पाशविक वृत्तियों से इनकार नहीं करते लेकिन इसके आध्यात्मिक पक्ष की भी अवहेलना नहीं करते। असल में ईश्वर की सत्ता में गांधी का अखंड विश्वास है। ईश्वर ही एकमात्र सत्ता है। फिर जब ईश्वर ही एक मात्र सत्ता है तो उसी सत्ता की अभिव्यक्ति हर प्राणी में मिलनी चाहिए। इसका सरल अर्थ होता है कि मनुष्य में ईश्वर के गुणों का समावेश है। यही है मानव का आध्यात्मिक पक्ष जो गांधी की मानव-अवधारणा का आधार तत्व है। अरस्तू ने मानव की जैविक प्रवृत्तियों के साथ उसकी बौद्धिक प्रवृत्तियों को भी उजागर किया था, जबकि मनोवैज्ञानिकों ने मानव की सहज प्रवृत्तियों को प्रधान और बुद्धि को गौण माना। हाब्स आदि ने मानव को मूलतः स्वार्थमूलक माना। समाजवादी विचारकों ने इसके विपरीत सामाजिकता से ही मनुष्य के निर्माण को सत्य ठहराया लेकिन समाज की अंध-पूजा की प्रतिक्रिया स्वरूप मानववादी पुनः व्यक्ति की विशिष्ठता पर जोर देने लगे हैं गांधी के अनुसार मानव की उपर्युक्त सभी अवधारणाएं एकांगी, अपूर्ण एवं ऊपरी हैं। ये सभी मानव के किसी न किसी रूप से भौतिक स्वरूप पर ही जोर देते हैं लेकिन जिससे आध्यात्मिक पक्ष उपेक्षित हो जाता है।

मानव का यह आध्यात्मिक स्वरूप या उसको ईश्वर अंशा मानने से ही यह प्रतिफलित होता है कि मानव-स्वभाव अनिवार्यतः शुभ है। गांधी मानव-प्रकृति पर संशय और अविश्वास करना अस्वीकार करते हैं और यह विश्वास रखते हैं कि मानव हृदय-परिवर्तन संभव है यदि हम उसके हृदयतंत्र के तार को झंकृत करना सीखें। हर व्यक्ति में जब ईश्वर का अंश विद्यमान है तो फिर मानव मात्र की एकता भी स्वतः स्थापित हो जाती है। फिर इस पृष्ठ-भूमि में कोई किसी का शुभ नहीं है लेकिन यदि मानव अनिवार्यतः या स्वभावतः शुभ है तो फिर वह गलत कार्य क्यों करता है? गांधी का मानना है कि जब मानव की आध्यात्मिक चेतना किसी कारण से सुषुप्त या शिथिल पड़ी रहती है तो वह वैसा करता है। हृदय-परिवर्तन वास्तव में आध्यात्मिक-जागरण ही है इसलिए यह कहना कि गांधी का मानव-दर्शन मानव-स्वभाव के

अशुभ पक्ष की उपेक्षा करता है, सही नहीं है। वे तो मानते हैं कि आसुरी एवं दैवी दोनों प्रकार की वृत्तियां हमारे अंदर रहती हैं- 'सुमति कुमति सब के उर रहहीं।' असल में मानव ईश्वर की तरह पूर्ण है तो है नहीं, हां वह पूर्णता के विकास क्रम में है। वह विशुद्ध आत्मा नहीं है बल्कि शरीर और आत्मा का समन्वय है, इसलिए उसके अंदर संवेग, भावावेश, आवेग एवं उद्वेग आदि का समिश्रण स्वाभाविक है। आत्मा का बंधन शरीर के कारण है इसलिए वह दुष्प्रवृत्तियों एवं भावावेशों का शिकार होता है। मुक्तावस्था में मानव आत्मा बिलकुल शुद्ध एवं निर्मल रहती है। अतः शुभत्व उसका अनिवार्य गुण है। अपूर्णता से पूर्णता की ओर सतत बढ़ना ही मानव-जीवन का आदर्श है। मानव भले ही अपूर्ण रहेगा लेकिन मानवता पूर्णता की ओर बढ़ती रहेगी। मानव-इतिहास इस बात का साक्षी है कि सब मिला जुलाकर आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि से वह विकासशील रहा है। बर्बरता से सभ्यता की ओर विकास ही इसका अकाट्य प्रमाण है। यह ध्यान देने की बात है कि गांधी की मानव अवधारणा मानव के इस विकास-क्रम को स्वीकार कर आदर्शवादी के साथ-साथ वास्तववादी भी बन जाता है। समग्र रूप से मानवता का विकास तो एक सत्य ही है। व्यक्ति रूप से ही इतिहास में भी पतित से पतित, व्यक्तियों को उच्च से उच्च नैतिक धरातल पर चढ़ते हुए देखा है। गणिका, अजामिल, ब्याध, की बात तो अलग है रत्नाकर से वाल्मीकि, अंगुलिमाल एवं चंडाशोक का महान परिवर्तन ऐतिहासिक सत्य है। हमारे समय में भी चंबल में बागियों का सामूहिक समर्पण संभवतः मानव के अंदर शुभ के उदय का चिह्न है।

सुकरात की भांति ही गांधी के मानव-दर्शन पर यह आरोप लगाया जाता है कि मानव-प्रकृति के विषय में गांधी का अध्ययन सरलीकरण से प्रभावित एवं यथार्थ से परे है। यह कहा जाता है कि चूंकि गांधी स्वयं सामान्य मानवों की कमजोरियों से उपर थे इसलिए उन्होंने सबों के विषय में यह निष्कर्ष निकाल लिया, और मानव को स्वभावतः साधु बता दिया। तर्क के लिए यदि आलोचकों की बात भी मान ली जाय तो हम देखते हैं कि मानव को स्वभावतः दुष्ट मान लेने में जितती तार्किक और व्यवहारिक असंगतियां उठती हैं, उनका निराकरण कठिन हो जाता है।

यदि मानव को स्वभावतः और अनिवार्यतः दुष्ट मान लिया जाए तो मानव के संस्कार-परिष्कार के सारे प्रयत्न निष्फल माने जाएंगे। सत्कार्यवाद के अनुसार जिसमें जो तत्त्व नहीं है, उससे वह तत्व निःसृत नहीं हो सकता। इसका अर्थ हुआ कि यदि मानव के अंदर शुभ तत्व नहीं है (असत्) तो चाहे जितना भी परिश्रम किया जाए, यह विकसित नहीं हो सकता। 'नहि नीलं सहस्त्रेण शिल्पि पोतं कतुं शक्यते। हजारों मन बालू से एक तोला तेल नहीं निकल सकता इसलिए यह हम मानव को अनिवार्यतः अशुभ या दुष्ट मान लें तो इसमें निखिल मानव जाति का अपमान तो है ही निराशावाद भी है फिर शिक्षण-प्रशिक्षण, धार्मिक-प्रवचन और संस्कार-परिष्कार के अन्य सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाएंगे। इस प्रकार एक निराशावादी तत्वावधान हमारे हाथ लगता है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य के अंदर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार रहते हैं। गांधी का मानना है कि ये मनुष्य की अनिवार्य प्रकृति नहीं है, इसलिए उनका शमन नैतिक एंव आध्यात्मिक संयम एवं नियम से हो सकता है।

गांधी की मानव-अवधारणा के विष में एक आरोप यह भी कि गांधी ने यथार्थ और आदर्श के बीच जितनी ही चौड़ी खाई होगी, सिद्धांत और व्यवहार परस्पर जितने ही दूर होंगे, वहां उतना ही अधिक असंगतियां उत्पन्न होगी। यह ठीक है कि आदर्श यदि यथार्थ हो जाए तो वह आदर्श नहीं रहता है लेकिन इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि हम आदर्श के गगन विहार में घूमते रहें और यथार्थ के धरातल पर पैर नहीं रखें।

एक व्यावहारिक आदर्शवादी की तरह गांधी ने मानव की दुर्बलताओं को अच्छी तरह देखा था और इसलिए उसमें आसुरी एवं दैवी दोनों प्रवृत्तियों का समावेश पाया था। आध्यात्मिक दृष्टि से मानव बिलकुल शुद्ध एवं शुभ-स्वरूप है लेकिन जब तक वह शरीर से बंधा हुआ है, वह अपूर्ण, अशुद्ध एवं अशुभ-रूप है। शुभत्व मानव की दिव्य संभावना है अतः उसकी अभिव्यक्ति में ही यथार्थ के अशुभत्व का अंत होता है। गांधी ने केवल आत्म-विश्लेषण के आधार पर मानव के अनिवार्य शुभत्व का सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया, इसके पीछे आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान निहित है इसलिए गांधी का मानव दर्शन तो स्वप्नदर्शी आदर्शवाद है और न आत्मा केंद्रित अहंवाद बल्कि इसके पीछे अध्यात्म और यथार्थ का समन्वय है।

यह भी आश्चर्य की बात है कि गांधी की मानव-अवधारणा पर एक ओर मानव-मनोविज्ञान के सरलीकरण एवं एकपक्षीय अध्ययन का आरोप लगाया जाता है, दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि गांधी ने मनुष्य की विशिष्टताओं पर ध्यान नहीं दिया। यदि ऐसा होता तो गांधी मनुष्य को परम पुरुषार्थ नहीं मानते आहार, निद्रा, भय और मैथुन में मनुष्य पशु के समान है। विवेक उसका व्यावर्त्तक गुण है और सामाजिकता उसका स्वभाव है लेकिन आध्यात्मिक शक्ति, उसका सच्चा मापदंड है। अपनी-अपनी साधना के अनुसार आध्यात्मिक अभ्युत्थान के क्रम में हर व्यक्ति का अपना स्थान होता है। इसी को जैन दर्शन में गुणस्थान भी कहते हैं। गांधी का केवल यही कहना है कि हर व्यक्ति के अंदर ही ईश्वर-तत्व विद्यमान है, जिसे आत्म-तत्व भी कहा जाता है। हर मानव में देवत्व की संभावना है। वह बुद्धत्व या सिद्धात्व का अधिकारी है। इसी दृष्टि से भले ही उसका शारीरिक, बौद्धिक गुण असमान हो लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से तो सब समान है। जिसकी जैसी साधना होगी, उसकी ऊंचाई भी उसी के अनुरूप होगी। गांधी-दर्शन कदापि भी अनंत संभावनाओं एवं यथार्थ की दुर्बलताओं की उपेक्षा नहीं करता और इसलिए एकादश-व्रत की साधना तथा सत्याग्रह के लिए अपेक्षित शिक्षण-प्रशिक्षण पर जोर देता है। गांधी ने यह प्रमाणित कर दिया कि सत्याग्रह का नैतिक-आध्यात्मिक अस्त्र केवल चुने हुए विशिष्ट पुरुषों के लिए ही नहीं बल्कि सामान्य, नर-नारियों के लिए भी है। असल में गांधी हर मानव के अंदर एक ही ईश्वर तत्व को पाते थे, इसलिए वे मानव को स्वभाव से साधु समझते थे। दुष्टता स्वभावजन्य नहीं, परिस्थिति-जन्य होती है। मैत्री स्वाभाविक है, झगड़े के कारण होते हैं। अपराधी जन्मजात नहीं होते, वे समाज में बनते हैं। हम जीर्ण-शीर्ण परंपराओं, परिस्थितियों एवं वातावरणों को बनाए रखते हैं और फिर मानव-अस्तित्व और उसकी व्यैक्तिकता को ही उजागर करते रहते हैं। ऐसी ही दारूण एवं विषम व्यवस्था में मानव चिंताकुल, उद्वग्नि और अशांत होता है, लेकिन यह उसका तात्कालिक रूप भले हो, आंतरिक और यथार्थस्वरूप नहीं है। गांधी किसी आदर्श लोक में यदि उलझे रहते

तो आजीवन व्यवस्था-परिवर्तन के लिए दक्षिण अफ्रीका में, कभी चंपारण, बाड़डोली, खेड़ा, अहमदाबाद में, कभी अस्पृश्यता के खिलाफ तो कभी सांप्रदायिक जहर के खिलाफ या फिर मद्यपानादि के खिलाफ संघर्ष नहीं करते। गांधी धरती का आदमी था वह स्वप्नदर्शी हो ही नहीं सकता है। हां इस गर्हित और पतित व्यवस्था में किसी प्रकार जीवित मानव की यथार्थ स्थिति से वह हरगिज संतोष नहीं कर सका और मानव मुक्ति का संदेश लेकर आया। जो विद्वान गांधी की मानव अवधारणा के विषय में उसे स्वप्नदर्शी तथा यथार्थता से दूर होने का आरोप लगाते हैं, शायद गांधी के जीवन भर प्रयोगों से अपरिचित हैं।

विज्ञान और अहिंसा : एक अनुचिंतन

यह एक सामान्य भ्रम है कि विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ हिंसा का विकास हुआ। प्रस्तर-युग में प्रस्तर के आयुध बने और आज आणुविक अस्त्रों का निर्माण हो रहा है। वस्तुतः 'अहिंसा-संस्कृति में ही ज्ञान और विज्ञान का विकास संभव है। अहिंसा का अर्थ है कि हम निर्भय और निष्पक्ष होकर वैचारिक स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखें, जीर्ण-शीर्ण आग्रह एवं अंधविश्वासों से मुक्ति पाएं तथा विरोधियों के प्रति भी प्रेम का भाव हो। अब आप सोचिए कि विज्ञान के विकास के लिए क्या ये सब चीजें आवश्यक नहीं है? जिस दिन रूढ़िगत विश्वासों के जह्वर में हमारा स्वतंत्र-चिंतन डूब जायगा, विज्ञान की प्रगति रुक जाएगी। आग्रह और विज्ञान साथ-साथ नहीं चल सकते। विज्ञान का अधिष्ठाता 'सत्य' और सत्य प्राप्ति के लिए अहिंसा से बढ़कर कोई साध्य नहीं। अपनी आत्मकथा में बापू ने लिखा है-'मेरे अनुभव ने मुझे यह विश्वास दृढ़ करा दिया है कि सत्य के सिवा दूसरा ईश्वर नहीं है और सत्य प्राप्ति का एकमेव उपाय है अहिंसा वस्तुतः गांधी के लिए सत्य, ईश्वर एवं अहिंसा-ये तीनों है एक सिक्के के तीन पहलू हैं। सत्य की प्राप्ति का मार्ग ही है- सत्याग्रह, जिसकी साधना अपने को शून्य में विलीन कर ही की जा सकती है।

गंभीरतापूर्वक विचार करें तो यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक विज्ञान, भूततत्व-गतितत्व दिक्-काल सहित बाह्य-जगत् को अपने अध्ययन का विषय बनाता है, संक्षेप में विज्ञान का विषय बाह्य-जगत् है। दूसरी ओर अहिंसा, करुणा, मैत्री आदि मानवीय मूल्यों का केंद्र 'आत्म-जगत्' है। विज्ञान भी इन मूल्यों के ऊपर विचार करने, इनके तुलनात्मक अध्ययन और इनके आचरण में सहायता प्रदान करता है लेकिन मूल्यों का अध्ययन विशुद्ध रूप से प्राकृतिक विज्ञान का न तो अभीष्ट है न इनका विषय-वस्तु। संभवतः मूल्य विज्ञान के वृत्त से परे है लेकिन यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि मूल्यों का अध्ययन विज्ञान-विरोधी है। वस्तुतः विज्ञान स्वयं हमें कोई मूल्य प्रदान नहीं कर सकता। विज्ञान में किसी भी साध्य की प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधन प्रदान करता है जो प्राप्तव्य नहीं है उसको भी विनम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेता है। हमारे जीवन की क्या दिशा होगी? हमारा क्या गंतव्य होगा? इन सभी प्रश्नों पर संकेत प्रदान करने के लिए विज्ञान के कोष में कुछ नहीं है। विज्ञान के पास अपरिमित शक्ति अवश्य है लेकिन इस अपरिमित साधन और शक्ति से वह मानव का कल्याण करेगा या अकल्याण-यह साधारण दिशाः दर्शन के लिए भी उसे चाहे तो धर्म या अध्यात्म की ही शरण में जाना होगा। इसलिए आइंस्टीन ने कहा- 'धर्म के बिना विज्ञान अंधा है और विज्ञान के बिना धर्म पंगु है।'

इस ब्रह्मंड में दो प्रकार की सत्ता है, इसे हम कैसे अस्वीकार कर सकते हैं? सांख्य ने उसे पुरुष और प्रकृति कहा है। प्रकृति की बाह्य-जगत् है और पुरुष की आत्म-जगत् है विज्ञान का संबंध बाह्य-जगत् की सत्ता की निष्पक्ष अनुसंधान करना है, इसी में उसकी महिमा और गरिमा है। विज्ञान की पहुंच और प्रामाणिकता बाह्य-जगत् के विषय में अद्‌भुत है। किंतु यदि हम प्रश्न करें 'इस सत्ता का प्रयोजन क्या है?' 'इसका लक्ष्य एवं साध्य क्या है?' तो विज्ञान यहां मौन रहेगा। संक्षेप में प्राकृतिक विज्ञान से प्रयोजन-मूलक पूछना ही व्यर्थ है। इसका उत्तर तो आत्म-ज्ञान' से ही संभव है, जहां तर्क का अंत हो जाता है एवं एक विराट रहस्यानुभूति हमारा मार्ग प्रशस्त करती है। धार्मिक रहस्यानुभूति कोई विभ्रम या विपर्यय नहीं यह निरपेक्ष रूप से सत्य, असंदिग्ध एवं परम विश्वसनीय है।

हमें मस्तिष्क और मन व भेद करना होगा। मस्तिष्क एक शारीरिक एवं बाह्य-जगत् की विशेष किया है। सूक्ष्म जीव विज्ञान (Molecular Biology) से हम मस्तिष्क की क्रिया-प्रक्रियाओं का अध्ययन कर सकते हैं किंतु मन आत्मगत-तत्व है। उदाहरण के लिए ध्वनि-तरंग हमारे कर्ण-रंध्र में प्रवेश करते ही वहां के स्नायु-तंतुओं में एक विद्युत प्रवाह उत्पन्न कर देते हैं जो मस्तिष्क तक पहुंच जाते हैं किंतु ये शब्द ध्वनि किसी प्रकार संवेदनाओं के मार्फत संगीत पैदा करते हैं, यह विज्ञान के लिए भी एक पहेली है। प्राकृतिक विज्ञान जीव का अध्ययन अवश्य करने का दम भरता है किंतु जीव-तत्व की व्याख्या करने में असफल हो जाता है इसलिए मैक्स प्लांक (Max planck) का यह कहना सही है कि सृष्टि के प्रयोजन के प्रश्न को हम विशुद्ध तार्किक भूमिका में नहीं समझ सकते हैं।

हमें बराबर याद रखना चाहिए कि सृष्टि की ये दोनों धाराएं-बाह्यगत और आत्मगत, परस्पर विरोधी नहीं हैं। संभवतः वे समानांतर होकर चलती है एक दूसरे की पूरक भी हैं। आज धर्म और विज्ञान दोनों मिलकर संशयवाद, अंधविश्वास, रूढ़िवाद एवं अनास्थावाद के विरुद्ध संयुक्त रूप से संघर्ष कर रहे हैं। विज्ञान के पास मानव के दुःख-दैव्य को दूर करने की असीमित क्षमता है फिर भी यदि विज्ञान की शक्ति मानव के दुःख, दारिद्रय, अभाव और अंकिचनता को दूर करने में नहीं लगती है तो विज्ञान कलंकित हो जाएगा।

यहीं पर विज्ञान का अहिंसा से संयोग मानवता के भविष्य की सर्वोत्तम आशा है। प्रश्न-व्याकरण में अहिंसा के 60 पर्यायवाची दिए गए हैं। मैत्री इसका एक प्रमुख नाम है। अहिंसा, करुणा और मैत्री के मूल्यों के बिना विज्ञान विनाश का उपकरण बन जाएगा। सत्य का अविश्राम अनुसंधान मानव का स्वधर्म है, यही विज्ञान है लेकिन इस सत्य को मानव हित में प्रयोग करना ही धर्म का प्रथम पाठ एवं अहिंसा की भावना का मूलाधार है। आज मानव को सत्य के साथ अहिंसा विज्ञान के साथ धर्म चाहिए। सत्य यदि मानव का स्वधर्म है तो अहिंसा भी मानव जाति का नियम है। बूढ़े से बच्चे, महिला से पुरुष सभी अहिंसा की शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। मानवीय सभ्यता का विकास ही बर्बरता से सभ्यता, हिंसा से अहिंसा की और हुआ है। आज जिस प्रकार मानव और प्रकृति के बीच की विभाजन रेखा क्षीण हो रही है उसी प्रकार अणुयुग में विज्ञान और अहिंसा समीप आ गए हैं। औद्योगिक सभ्यता आणविक युग की मां बनी लेकिन आम हम सौर युग में प्रवेश कर रहे हैं। आज हमें अनंतकाल तक चलने

वाले सौर-ऊर्जा के सर्व सुलभ स्रोतों को ढूंढ़ना है, सभ्यता के अब तक के बने सारे महल ध्वस्त हो जाएंगे। अणु-शक्ति का यदि सदुपयोग हम कर पाए तो भौतिक सुख-समृद्धि का पारावार नहीं रहेगा लेकिन यह हमने मैत्री और अहिंसा को विस्मृत कर दिया तो यही विज्ञान मानवीय-सभ्यता के लिए भस्मासुर बन जाएगा। अतः विज्ञान के साथ अहिंसा का समन्वय कोई पागलपन नहीं बल्कि सृष्टि-रक्षा का प्रथम-सूत्र है। बाह्य जगत् की साधना ने विज्ञान का जन्म दिया लेकिन अहिंसा का उद्‌भव और विकास धर्म साधना से ही हुआ है चाहे वह भगवान बुद्ध की करुणा, महावीर की आत्यंतिक अहिंसा और ईसा मसीह का अन्यतम मानव-प्रेम रहा हो। गांधी, जिन्होंने अहिंसा को एक सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक आयाम दिया, वे मूलतः एक धार्मिक व्यक्ति ही थे।

समकालीन अहिंसावादियों में, मार्टिन लूथर किंग, लाजा दो वास्तो, फ्यूजी गुरुजी, डोलची, विनोबा आदि प्रमुख अहिंसावादियों की धार्मिक निष्ठाएं सुविदित ही हैं। जिस प्रकार पृथ्वी की रचना करने वाले परमाणुओं के बीच यदि संयोजन शक्ति मौजूद न हो तो यह पृथ्वी टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी, उसी प्रकार चेतना प्राणियों में भी ऐसी संयोजन-शक्ति है जो समाज-व्यवस्था को कायम रखती है। यह शक्ति है-प्रेम या अहिंसा। इस शक्ति के दर्शन हम पिता-प्रभु, भाई-बहन, तथा भिन्न-भिन्न के बीच करते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जहां प्रेम है, अहिंसा है, वहां जीवन है, जहां घृणा और विद्वेष है, वहां मृत्यु का निमंत्रण है। यद्यपि वर्तमान समाज-रचना बुद्धिपूर्वक स्वीकार की हुई अहिंसा के आधार पर खड़ी नहीं है फिर भी सारे संसार में मानव जाति एक दूसरे की अनुमति के कारण ही जीवित है और लोगों की संपत्ति सुरक्षित रहती है। यदि ऐसा न होता तो संसार में केवल अत्यंत क्रूर, नृशंस और भंयकर इने-गिने लोग ही जीवित रहते परंतु ऐसी बात नहीं है। समाज में परिवार जिस प्रकार वात्सल्य, दांपत्य आदि के प्रेम बंधनों से परस्पर बंधा रहता है उसी प्रकार राष्ट्र में भी मानव समूह प्रेम के बंधनों में बंधा रहता है। फिर भी आश्चर्य है कि अहिंसा के नियम की सर्वोपरिता स्वीकार नहीं करते। इसका अर्थ है कि हमने अहिंसा की विशाल संभावनाओं का शोध ही नहीं किया है। आश्चर्यों के इस युग में किसी बात को कठिन कहकर असंभव बता देना सुसंगत नहीं। हिंसा के क्षेत्र में नित्य नूतन एवं विस्मयकारी शोधों एवं आविष्कारों से हम मुग्ध होते रहते हैं लेकिन अहिंसा के क्षेत्र में हिंसा से कहीं अधिक अकल्पना तथा ऊपर से असंभव दिखाई देने वाले शोध और आविष्कार किए जाएंगे। मानवीय इतिहास को समग्रता में देखने से यही प्रतीत होता है कि प्रेम का नियम जितना अधिक व्यापक एवं सफल सिद्ध हुआ है, उतना नाश का नियम कभी नहीं हुआ।

मानव मनोविज्ञान में यह भी निहित है कि मुहब्बत तो यों ही होती हैं लेकिन अदावत की वजहें होती हैं। मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति प्रेम यानी अहिंसा की ओर रहती है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो मानवता के इतिहास की दिशा ही दूसरी होती है। असभ्यता से सभ्यता, युद्ध से शांति, आदमखोर से निरामिष-संस्कृति, दंडविधान में प्रतिकार एवं प्रतिशोध से सुधार एवं मृत्युदंड के उन्मूलन का प्रयास आदि अहिंसा की ओर बढ़ते हुए प्रयासों का सूचक है।

अफसोस है कि अहिंसा-विज्ञान में शोध के लिए हमने न उतनी शक्ति लगाई है न साधन अन्यथा हिंसा की जड़ें ढ़ीली हो जाती। आज भी शांति-शोध (Peace Research) के रूप में जो खोज शुरू हुई है, वह नाकाफी है। अहिंसा अत्यंत रहस्यमय रीति से अपना काम करती है। अहिंसा को भ्रमवश विवशता एवं निष्क्रियता के साथ जोड़ दिया जाता है। वास्तव में अहिंसा-धर्म अत्यंत सक्रिय तेजस्वी शक्ति है। उसमें कायरता अथवा दुर्बलता के लिए कोई स्थान नहीं है। अहिंसा को विज्ञान से जोड़कर उसे व्यवस्थित बनाना ही होगा। इसका शिक्षण एवं परीक्षण कम महत्व का नहीं। रवींद्रनाथ ने कहा है 'हिंसक सेना का प्रशिक्षण आसान हैः इसके लिए मात्र एक वर्ष का व्यायाम और कवायद पर्याप्त हो सकता है लेकिन अहिंसक-संग्राम के लिए किसी व्यक्ति को तैयार करने में उससे कहीं अधिक समय लगता है।' इसी प्रकार प्रतिपक्षी के हृदय को प्रभावित करने के लिए संसूचन, सहानुभूति कष्ट-सहन द्वारा संवेदना-जागरण आदि अनेक मनोवैज्ञानिक क्रियाएं हैं। व्यक्तिगत हृदय-परिवर्तन के दृश्य को इतिहास ने बहुत देखे हैं, लेकिन सामूहिक हृदय-परिवर्तन, सामूहिक दान, सामूहिक संकल्प के जो कुछ कौतुक इस युग में हुए हैं, वे गंभीर शोध एवं अध्ययन के विषय हैं।

इसी तरह आज मानव-विज्ञान की खोज के पीछे भी अहिंसा को विज्ञान से जोड़ने का एक सुंदर प्रयास है। आज तक आत्म-ज्ञान अध्यात्म का विषय था विज्ञान तो बाह्य-जगत् से संबंधित था लेकिन जिस प्रकार इस युग में समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान तथ परामनोविज्ञान के क्षेत्र में मानव-मन और समाज-धर्म के अवगाहन होने लगे उसी प्रकार इस युग के शीर्ष वैज्ञानिक एवं दार्शनिक मनुष्य अंदर आत्म-तत्व के संबंध में गंभीरतापूर्वक चिंतन करने लगे। हैं। शस्त्र का विज्ञान तो बन गया लेकिन मानव-विज्ञान अभी नहीं खड़ा हो सका है। प्राकृतिक विज्ञान बाह्य-प्रकृति का अनुसंधान करेगा लेकिन मानव के अंतर्जगत की खोज के लिए तो मानव-विज्ञान चाहिए ही। अहिंसा का संबंध मानव को इसी अंतर्जगत से ही है अतः इस अंतर्जगत के अंतरिक्ष का अनुसंधान किए बिना अहिंसा को टिकाना संभव नहीं है। बर्टेंड रसेल जैसा वैज्ञानिक और दार्शनिक ने भी ऐसे विज्ञान के लिए वकालत की है जो हमें बाह्य-जगत के विज्ञानों की एकांगिता से बचा जा सके। (The Science to save us From Science, 1950) से 1962 में एडींगटन स्मारक व्याख्यान के क्रम में प्रसिद्ध वैज्ञानिक सिरिल हिंसलवुड ने स्पष्ट कहा है कि-'अंतर्जगत के अस्तित्व को अस्वीकार करना प्रत्यक्ष की अस्वीकृति है।' धार्मिक अनुभूति की बात कोई कपोल-कल्पना नहीं है। विलियम जेम्स Validity of Religious Experience), युग (Psychological Reflections,1953) आदि अनेक मनीषियों ने धार्मिक अनुभूति की सत्यता को स्वीकार किया है। यह भी एक वैज्ञानिक सत्य है भले ही इसका संबंध अंतर्जगत से हो।

विज्ञान चांद पर पहुंच गया लेकिन वहां भी उसके मानस में यदि गोरे-काले आदि का भेद-भाव रह ही गया तो क्या लाभ? उसी तरह प्रजातंत्र यदि भीड़ एवं पुलिस की गोलियों के बीच पिसता रहा तो इसकी क्या सार्थकता है? आर्थिक विकास भी यदि अनैतिक साधनों पर अवलंबित हुआ तो कितना अनर्थ हो सकता है? इसलिए चाहे अर्थशास्त्र हो या राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र हो या शिक्षाशास्त्र, सबों के साथ अहिंसा को जोड़ना ही होगा।

●

गांधीजी की हत्या : सरस्वती की चीत्कार

अवधेश प्रधान

गांधीजी की हत्या का समाचार जब रेडियो से प्रसारित हुआ तो उस पर बहुतों को विश्वास नहीं हुआ। 30 जनवरी 1948 के ही दिन लिखी 'अनभ्र वज्र' शीर्षक अपनी कविता में भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा- 'तुम नहीं हो अब हमारे बीच में/इस तरह की शक्ति कैसे मान लें हम मीच में' (गांधी पंचशती, पृ. 120)। लेकिन यह तथ्य है कि कुछ लोग उन्हें अपने रास्ते का रोड़ा समझते थे और विचारों का जवाब विचारों से देने के बजाय उन्हें शारीरिक रूप से खत्म कर देने का षड्यंत्र लंबे समय से करते आ रहे थे। गांधीजी की हत्या का पहला प्रयास 1934 में-वास्तविक हत्या से 14 साल पहले-तब हुआ जब वे पुणे नगरपालिका द्वारा आयोजित अपने सम्मान-समारोह में जा रहे थे। बम एक गाड़ी पर गिरा, 7 लोग गंभीर रूप से घायल हो गए। गांधीजी पिछली गाड़ी में थे, बाल-बाल बच गए। जुलाई 1944 में पंचगनी में एक आदमी छुरा लेकर गांधीजी के सामने आ गया। सितंबर 1944 में गांधीजी जिन्ना से वार्ता करने के लिए बंबई जाने वाले थे। इस मौके पर षड्यंत्रकारियों का एक समूह पुणे से वर्धा पहुंच गया था। गांधीजी के निकलने से पहले ही पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। इस समूह के एक सदस्य ग.ल. थत्ते के पास से छुरा मिला। थत्ते ने बताया था, यह छुरा उस गाड़ी का टायर फोड़ने के लिए रखा था जिसमें गांधीजी जाने वाले थे। 29 जून 1946 को गांधीजी एक विशेष रेलगाड़ी से बंबई से पुणे जा रहे थे। नेरल और कर्जत स्टेशन के बीच रेलवे लाइन पर बड़े-बड़े पत्थर रखकर गाड़ी को गिराने का षड्यंत्र किया गया। ड्राइवर की सावधानी से दुर्घटना होते-होते बची। प्रार्थना सभा में गांधीजी ने इस घटना का उल्लेख करते हुए कहा था- 'मैं सात बार इस प्रकार के प्रयासों से बच गया हूं। मैं इस प्रकार मरने वाला भी नहीं हूं। मैं तो 125 वर्ष जीने वाला हूं।' नाथूराम गोडसे ने अपने मराठी पत्र' 'अग्रणी' में गांधीजी के इस कथन पर लिखा था, 'परंतु जीने कौन देगा?' 20 जनवरी 1948 को प्रार्थना सभा में मदन लाल पाहवा ने बम फेंककर गांधीजी की हत्या का असफल प्रयास किया था। वह एक शरणार्थी था जो षड्यंत्रकारियों के दल में शामिल हो गया था। पुलिस की पूछताछ में उसने षड्यंत्रकारियों के बारे में जो जानकारी दी थी उसके आधार पर सावधानी बरती जाती तो गांधीजी की हत्या को टाला जा सकता था। प्रशासन ऐसा क्यों नहीं कर सका, यह एक प्रश्न है जो कपूर आयोग की रपट के बाद

और गहराता गया है। 30 जनवरी 1948 की शाम को उसी प्रार्थना सभा में नाथूराम गोडसे ने अपनी पिस्तौल से तीन गोलियां गांधीजी के सीने पर दागीं और वे 'हे राम' कहते हुए वहीं धरती पर लुढ़क गए। यह एक विचारधारा को मानने वाले समूह के वर्षों के षड्यंत्र का परिणाम था। (चुनी भाई वैद्यः गांधी की हत्या-क्या सच, क्या झूठ। तुषार गांधी : गांधी हत्या-षड्यंत्र और हत्यारे)।

गांधीजी के सत्यनिष्ठ, पवित्र और संघर्षमय जीवन ने उन्हें जन-जन के मन में राष्ट्रनायक के आसन पर बिठाया था लेकिन उनकी मृत्यु ने उन्हें उससे भी ऊंचे महानायक के परमोच्च पद पर अधिष्ठित कर दिया था। लोग गांधीजी के बलिदान की तुलना ईसा के बलिदान से कर रहे थे और गोडसे पर उन अभिशाप वचनों की वर्षा कर रहे थे जिनका प्रयोग घोर से घोर नारकीय पापियों के लिए किया जाता है। भारत भर में सभी प्रदेशों और अंचलों के सभी धर्मों और वर्गों के स्त्री-पुरुष शोक, क्रोध और अनुताप में जल रहे थे, झुलस रहे थे, उबल रहे थे। भारत ही नहीं, पाकिस्तान के भी नेता शोक-संतप्त थे। उनके शोक में तमाम सभ्य राष्ट्रों के झंडे झुक गए।

नेताओं ने अपनी शोकांजलि जिन शब्दों में दी, उनसे सामान्यतः सभी अवगत हैं। देखना चाहिए कि लोक की व्यापक शोक-भावना कवियों के संवेदनशील हृदय से शब्दों में किस तरह व्यक्त हुई। इस दारुण घटना से द्रवित होकर ग्रामीण जनकवियों से लेकर प्रतिष्ठित बड़े कवियों तक ने जो काव्य रचना की उसमें छोटी कविताओं और गीतों से लेकर भरे-पूरे कविता-संकलन तक शामिल हैं। यहां हिंदी के कुछ कवियों-मुख्यतः भवानी प्रसाद मिश्र, दिनकर, बच्चन और नागार्जुन की कविताओं में प्रतिबिंबित छवियों, भावों, विचारों, शंकाओं और संकल्पों की एक झलक प्रस्तुत है।

भवानी प्रसाद मिश्र आजीवन गांधी और गांधी विचार के प्रति समर्पित रहे। उन्होंने सपने में भी वर मांगा तो गांधी के प्रति भक्ति का। भारत चीन युद्ध के समय भी उन्होंने ऐसी कविताएं लिखीं जिनमें युद्ध का जवाब अहिंसा और प्रेम से देने का साहसिक विचार व्यक्त है। दिनकर की गांधी भक्ति इतनी दूर तक नहीं जा सकती थी। उन्होंने उस समय युद्ध का जवाब युद्ध से देने का आह्वान करने में बिलकुल संकोच नहीं किया। भवानी प्रसाद मिश्र को गांधी जी की हत्या के 'अनभ्र वज्र' पर पहले तो विश्वास नहीं हुआ, फिर जल्दी ही यह मानने को मजबूर हो गए-

'जो कभी भी घट नहीं सकता था
वैसा घट गया है
आज भू पर से परम आशीषमय
नभ हट गया है।' (गांधी पंचशती, विवश शब्द, पृ.123)

कवि के मानस पर विगत स्मृतियों की लहरें उठने लगीं और पश्चाताप और ग्लानि का 'अँधेरा' छा गया। प्रत्येक स्मृति के साथ अनुताप की ज्वाला उठती है, आँसू बहते हैं, जीवन राख होता जाता है-

आज सब मुझे याद आता है
शोक जी में नहीं समाता है
खूब सूना हो या कि संग रहे
आज कोई कहीं प्रसंग रहे
बात बापू की मन में चलती है
एक ज्वाला सरीखी जलती है
आँख से प्राण चुए जाते हैं
हाय हम राख हुए जाते हैं। (गांधी पंचशती, यह अँधेरा, 2 फरवरी 1948, पृ. 124)

कवि ने 31 जनवरी 1948 को ही मन को समझा लिया था कि यद्यपि 'दुख ऐसा कभी नहीं टूटा था' फिर भी 'रोना गलत है/आज आँसू नहीं हिम्मत चाहिए।' जैसा कि हिंदू परंपरा में चलन है- बुजुर्ग शोक संतप्त जनों को मृतात्मा के पुण्य कार्यों की याद दिलाकर समझाते-बुझाते हैं कि उनके लिए शोक करना उचित नहीं है, उसी प्रकार कवि ने भी अपने आप को समझाया और उमड़ते आँसुओं को रोक लेने की सीख दी-

वे अशोच्य विलाप उन पर किसलिए
कौन वैसा जिया जैसे वे जिए
उन उमड़ते आँसुओं को रोक लो।
वज्र छाती कर समुंदर सोख लो (गांधी पंचशती, वे अशोच्य 31 जनवरी 1948, पृ. 121)

लेकिन यह शोक समझाने के मान का नहीं था। शोक में बड़े-बड़े ज्ञानी भी बच्चों की तरह रोने लगते हैं-'दीन्ह बाल जिमि रोइ।' बापू के मारे जाने पर कवि के अंतर्मन में बैठे बच्चे की भी यही मनोदशा हुई-

आज मैं इस धूप में
इन सींखचों से सिर टिका कर खूब रोना चाहता हूं
बिना मां के किसी बच्चे की तरह रोकर सिसककर और थककर
चुपचाप सोना चाहता हूं! (गांधी पंचशती विराट् निषेध, 4 फरवरी 1948, पृ. 129)

कवि का शोक संविग्न मानस क्रमशः स्थिर हुआ। फिर महसूस किया कि 'केवल चर्चा करते रहने में अब सार नहीं है/ इतना ज्यादा रोना बापू पर आभार नहीं है।' लेकिन बापू के 'शरणदायी चरणों' और 'गरलपायी प्राणों' का अभाव खलता रहा और रह रहकर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की याद आती रही- 'वे रहे नहीं/जिनकी/उंगली के उठते/काल प्रवाह रुका। वे रहे नहीं/जिनकी इच्छा के आगे/ वज्र विचार झुका (7 फरवरी 1948)। फिर देश के बंटवारे के बाद के भीषण दंगे याद आए; नोआखाली, बिहार और पंजाब की सांप्रदायिक लपटें याद आईं जिसकी महज कल्पना करना सबसे घनी वितृष्णा' और अंत में जब सारे भारत में 'निष्करुणा के मेले' भर रहे थे तब 'इस मेले में हाय खड़े थे बापू महज अकेले।' (गांधी पंचशती, 11 फरवरी 1948, पृ. 136)

बापू के त्रयोदशाह तक कवि-पुत्र ने अपने को संभाल लिया भावी जीवन के लिए और 'पितृ ऋण' का स्मरण करते हुए भावी जीवन के लिए संकल्प लिया-

'हम उसके पुत्र हैं/उसकी इच्छा को संवारेंगे
कई बार गिरेंगे/कई बार हारेंगे
मगर मान नहीं लेंगे हार
लगे रहेंगे उसके सपनों की/दुनिया को तिल तिल गढ़ने में
उसकी इच्छा के शिखरों पर
रुक-रुक कर चढ़ने में। (गांधी पंचशती, पितृऋण, 14 फरवरी 1948, पृ. 138-19)

'दिनकर' कवि जीवन के आरंभ में ही 'द्विधाग्रस्त शार्दूल' के रूप में गांधीजी से संवाद कर चुके थे, उन्हें 'मुकुटहीन अशोक' और 'ईसा, बुद्ध और महावीर का सखा' मान चुके थे। उनका विश्वास था कि 'स्वर्ग के हृदय में जो संदेश है/वह गांधी के मुख से फूटता है।' गांधी 'देशभक्ति और राजनीति के अखाड़े में/उतरा हुआ संत है/जिसे आत्मा है, देह नहीं है।' जब बापू की हत्या हुई तब उन्हें केवल आत्मा मानकर धीरज रखना संभव नहीं हुआ। इस 'वज्रपात' पर कवि बिलख उठा-

टूटा पर्वत सा महावज्र सब तरह हमारा ह्रास हुआ
रोने दो, हम मर मिटे, हाय रोने दो, सत्यानाश हुआ (दिनकर रचनावली-1, पृ. 225)

यह लाश मनुज की नहीं, मनुजता के सौभाग्य-विधाता की!
बापू की अरथी नहीं, चली अरथी यह भारत माता की! (वही, पृ. 226)

बापू सचमुच ही गए, जगत से अद्‌भुत एक प्रकाश गया!
बापू सचमुच ही गए, मृत्ति पर से हरि का आभास गया! (वही, पृ. 226)

बापू क्या गए जैसे अवधपुरी से राम चले गए, वृंदावन से घनश्याम चले गए, इस धरती से ईसा गौतम चले गए! कवि का आकुल हृदय उनसे लौट आने की गुहार लगाता है-

बापू, लौटो, आंचल पसार, भारत माता गुहराती है
बापू, लौटो, यह देश तुम्हारे बिना नहीं जी पाएगा
लौटो, छूने दो एक बार फिर अपना चरण अभयकारी
रोने दो पकड़ वही छाती जिसमें हमने गोली मारी। (वही, पृ. 229-30)

बापू की छाती में हमने गोली मारी-यह अनुताप यह सोचकर और बेधक हो जाता है कि 'कहने में जीभ सिहरती है/मूर्च्छित होती है कलम/हाय हिंदू ही था वह हत्यारा।' 'दिनकर' ने गांधीजी के शोक में एक लंबी कविता लिखी थी-'अघटन घटना, क्या समाधान?' गांधी की हत्या ऐसी 'अघटन घटना' है कि स्वर्ग में भी शोक छा जाता है, कल्पतरु के पत्ते कुम्हलाकर गिर जाते हैं, परियों के नुपूर मौन हो जाते हैं। बीती हुई सदियां एक दूसरे से पूछने लगती हैं-

क्या तुमने कभी ऐसी क्रूरता देखी थी? ऐसा पातक? ऐसी हत्या? ऐसा कलंक? सदियां सोचने लगती हैं-

'हिंदू भी करने लगे अगर ऐसा अनर्थ
तो शो रहा जर्जर भू का भवितव्य कौन?'

इतिहास की दुविधा यह है कि वह इस घटना को लिखता है तो 'राम कृष्ण की पोथी पर कालिख लगती है' और न लिखे तो 'यह पाप और किसके सिर पर मंडराएगा?' गांधीजी की हत्या केवल सामान्य हत्या या हिंसा की घटना नहीं है, वह महापाप है क्योंकि वह धरती के अत्यंत पुण्यशाली और अहिंसा के पुजारी की हत्या है। हत्यारे से कवि की आत्मा पूछती है-

सोचो, तुमने क्या किया
गोलियां किसकी छाती में मारीं
घायल हो सृष्टि कराह रही (वही, पृ. 233)
जिसकी विनम्रता के आगे/कुंठित हो जाती थी कराल/
तलवार शर्म से सकुचाकर/अंगार बर्फ बन जाते थे/
लगते थे पद चाटने सिंह/घर के पालतू हरिण जैसे। (वही, पृ. 235)

एक बार सांप उनकी जांघ पर चढ़कर उतर गया था-काट न सका और एक तुम हो- 'पर तुम सांपों से भी कराल/कांटों से भी काले निकले।' गांधी की हत्या इसलिए 'अघटन घटना' है क्योंकि सामान्य घटना की तरह कार्य-कारण शृंखला का विवेचन करके उसका हल्का समाधान पाना कठिन है-

जग मांग रहा है समाधान
क्यों बापू पर गोलियां चलीं?
आने वाली पीढ़ियां यही पूछेंगी
क्या उत्तर दूंगा? (वही, पृ. 236)

भवानी प्रसाद मिश्र का स्वर शोक में भी संयत है और इस हद तक संयत है कि गांधीजी के हत्यारे के लिए उसमें क्रोध और अभिशाप कहां से पैदा होगा, उनकी कविता में उसका नाम क्या, संकेत तक नहीं है! दिनकर के स्वर में अनुताप और आत्मग्लानि के साथ-साथ हत्यारे के प्रति क्रोध, धिक्कार और अभिशाप भी भरपूर है और वह व्यक्त हुआ है उसी के अनुरूप तीखे और जलते हुए शब्दों में, मानो वे शब्द न हों, विष-बुझे तीर हों-

लिखता हूं कुंभीपाक नरक के पीब कुंड में कलम बोर
बापू का हत्यारा पापी था कोई हिंदू ही कठोर
कायर, नृशंस, कुत्सित, पामर, दनुजों में भी अति घृणित दनुज
मानव न जिसे पहचान सके ऐसा जघन्य विकराल मनुज (वही, पृ. 236)
असहिष्णु नहीं सह सका, छांह सबको देता क्यों तरु उदार?
निर्मम ने निधड़क चला दिया पादप के धड़ पर ही कुठार!

पापी! यों ही तुम खड़े रहो सदियों के सम्मुख झुका शीश
भोगो हत्या का कुटिल दंश, भोगो वध की विष-भरी टीस। (वही, पृ. 237)

कवि ने अंत में हत्यारे को चेतावनी और सलाह दी है-अब भी होश करो, गांधीजी के चरण पकड़कर रो-रोकर क्षमा मांगो, सदियां तुमसे आँख बचाकर निकल जाएंगी, तुमको कोई न मिलेगा, जिससे तुम अपने अंतर की व्यथा सुना सको, आदि-आदि। हम जानते हैं कि गांधीजी के हत्यारे को अपने किए का कोई पछतावा न था। वह कैसी विचारधारा होगी जिसने हत्यारे के मन में महात्मा के प्रति इतनी घृणा भर दी। वह कैसी विचारधारा होगी जिसने मनुष्य को राक्षस बना दिया। दिनकर, गांधीजी के आगे हाथ जोड़े खड़े लोगों में इस 'अपराध' की छाया-मूर्तियों को पहचान लेते हैं और पूछते हैं-

बापू, लोगे किसका प्रणाम
सब हाथ जोड़ने आए हैं!
ये वे जिनकी अंजलियों में
पूजा के फूल नहीं छिपते
ये वे जिनकी मुट्ठी में भी
लोहू के दाग नहीं छिपते। (वही, पृ. 268)

बच्चनजी गांधीवादी नहीं थे लेकिन गांधी की हत्या ने उनके कवि-मानस को मथकर रख दिया और उनके आकुल कंठ से शोकगीतों का सोता ही फूट चला। बच्चनजी के ये शोकगीत दो पुस्तकों में संकलित हैं- एक, 'खादी के फूल', दूसरा, 'सूत की माला'। 'खादी के फूल' के 'प्राक्कथन' में उन्होंने लिखा है, 'कविता लिखना मेरे जीवन की विवशता है- कहना चाहिए, अनेक विवशताओं में से एक है। और अपनी इस विवशता का अनुभव संभवतः कभी मैंने इतनी तीव्रता से नहीं किया जितना बापूजी के बलिदान पर। बापू की हत्या के लगभग एक सप्ताह बाद मैंने आरंभ किया और प्रायः सौ दिन में 204 कविताएं लिखीं।' इनमें से 93 कविताएं 'खादी के फूल' में और 111 कविताएं 'सूत की माला' में प्रकाशित हैं।

'खादी के फूल' का पहला गीत है- हो गया देश के सबसे सुनहले दीप का निर्वाण! इस लंबे गीत में कवि ने बापू की कीर्ति-गाथा का ओजस्वी गान किया है-

ज्योति में उसकी हुए हम एक यात्रा के लिए तैयार
कीं उसी के आसरे हमने तिमिर-गिरि घाटियां भी पार
हम थके-मांदे कभी बैठे कभी पीछे चले भी लौट
किंतु वह बढ़ता रहा आगे सदा साहस बना साकार
आंधियां आईं, घटा छाई, गिरा भी वज्र बारंबार
पर लगाता वह सदा था एक-अभ्युत्थान! अभ्युत्थान! (बच्चन रचनावली-1, खादी के फूल, गीत सं 1)

जिस प्रकार शोकाकुल व्यक्ति अपने आत्मीय जनों से लिपट-लिपट कर रोता है, उनसे दिल की बातें कहकर जी हलका करता है उसी प्रकार बच्चन ने पहले गीत के बाद कभी मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी, दिनकर, शिवमंगल सिंह सुमन और पंतजी से दर्द साझा किया है तो कभी जोश, फिराक, हसरत मोहानी, जिगर मुरादाबादी, सागर और सरदार जाफरी से। इस साहित्यिक संवाद में साहित्य का राष्ट्रीय धर्म एक सामूहिक ध्येय बनकर उभरता है- 'है हमें बनाना नया एक हिंदोस्तान/हिंदू मुसलिम सिख ईसाई जिसमें समान।' कवि को 'चकबस्त' की एक नज्म याद आती है जो उन्होंने गोखले की मृत्यु पर लिखी थी। बच्चन को लगता है, इस नज्म का प्रत्येक अक्षर बापू के लिए लिखा गया है-

गम भरी नज्म यह बारबार मैं पढ़ता हूं
जब जब पढ़ता हूं अपने मन में कहता हूं
गोखले निधन पर लिखे गए ये बंद अमर
लागू होते हैं बापू पर अक्षर-अक्षर। (वही,गीत सं. 4)

फिर वे सरोजिनी नायडू से इस मौके पर संसार को 'पीड़ा का अनमोल राग' सुनाने का अनुरोध करते हैं क्योंकि 'ओ सरोजिनी यदि आज नहीं तू गाएगी/भारत के दिल की दिल में ही रह जाएगी।' कवि को लगता है कि यदि आज गुरुदेव रवींद्रनाथ होते तो 'होता विदीर्ण उनका अंतस्तल तो जरूर।' शोक ने ऐसा कुंठित कर दिया है कि 'मन का उबाल' व्यक्त नहीं हो पा रहा है, मानो 'शब्दों के मुख से जीभ किसी ने ली निकाल।' काश कि आज रवींद्रनाथ होते, 'होते रवींद्र तो मातम का तम कट जाता।' इकबाल ने फिरकेबंदी को प्रोत्साहन दिया था लेकिन उनका मन भी 'परिणाम देखकर शायद आज बदल जाता।' फिर दिशाहारा कवि आश्वासन और आशीर्वाद के लिए अंत में अरविंद के पास पहुंचता है (जो उस समय अभी जीवित थे और पांडिचेरी में अपनी योग-साधना और तपस्या में व्यस्त थे) और उनसे अनुरोध करता है- रवींद्रनाथ चले गए, बापू भी चले गए, 'तुम स्वदेश के माथे पर अपना वरद हाथ रख दो!'

बच्चनजी को याद आता है- गणेश शंकर विद्यार्थी कानपुर दंगे के दौरान शांति स्थापित करने का प्रयास करते हुए शहीद हुए थे तो बापू ने कहा था, 'मुझको गणेश शंकर से ईर्ष्या होती है/भगवान काश यह पावन मृत्यु मुझे मिलती।' भगवान ने बापू की प्रार्थना सुन ली, बापू देशव्यापी दंगे की आग बुझाने का प्रयास करते हुए शहीद हुए। उनके बलिदान के पीछे उनके उज्ज्वल आदर्श हैं जो अब भी जीवित हैं। 'जो गोली खाकर गिरी, मरी वह थी छाया' लेकिन उनके 'आदर्शों की काया' अजर-अमर है। जिसने गोली चलाई और पकड़ा गया वह तो केवल छाया है, लेकिन उसके पीछे भी कुछ कुत्सित भाव हैं, षड्यंत्र हैं-

'जो पकड़ गया है वह तो है केवल छाया
कितने दिल में षड्यंत्रों ने आश्रय पाया

कितने कुत्सित भावों ने दी उसको काया
वह एक नहीं है इस पातक का अपराधी!' (वही, गीत सं. 14)

वे कुत्सित भाव क्या थे जिन्होंने इस षड्यंत्र और षड्यंत्रकारियों को पैदा किया-

है गांधी हिंदू जनता का दुश्मन भारी
वह करता है तुरुकों की सदा तरफदारी
उसका प्रभाव हिंदुत्व के लिए भयकारी
यह बात घुसी कुछ घूमे-उलटे माथो में! (वही, गीत सं. 50)

भारत का दुर्भाग्य कि वे सिरफिरे षड्यंत्रकारी यह नहीं समझ पाए कि 'हिंदुत्व सुरक्षित था बापू के हाथों में!' बापू तो हिंदुओं के लिए हिंदू, मुसलमानों के लिए मुसलमान थे। वे हिंदुओं, मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों, बौद्धों और जैनों के-सबके प्रिय थे। उन्होंने परस्पर विरोधी धर्मों के बीच भी मेल-मुहब्बत की जमीन तलाश की- 'वह सौ विरोध के बीच समन्वयकारी था।' जो उन्हें हिंदुत्व का शत्रु बतलाता है- 'कुछ पाप छिपा है उसके हिंदूपन में।' वे तो 'पर्वत सी आत्मा रखते थे तृण-से तन में' इसीलिए उन्होंने अपने हत्यारे को भी 'अंतिम स्नेह' दिया, उसके भी अंदर 'प्रभु की छाया' देखी! कहते हैं, गोलियों ने गांधी को छलनी नहीं किया, गांधी ने फिरकापरस्ती के वज्रप्रहार को अपनी छाती पर रोक लिया। गांधी से टकराकर फिरकेपन का बल विक्रम टूट गया, वह जहरीले विचारों की गैस से फुलाया हुआ गुब्बारा था, जो फूट गया (गीत सं. 53)। उनका शरीर पांचों तत्त्वों में विलीन हो गया, अब पांचों तत्त्व उनके महात्मापन की साखी दे रहे हैं। गांधीजी जीत गए, नाथूराम हार गया। (गीत सं. 66)

बापू केवल अशोच्य भर नहीं हैं। उनकी शहादत ने उनके तेज को सौ गुना बढ़ा दिया है-

होकर शहीद सौगुने हुए वे तेजोमय
यह चरम बिंदु था समुचित उनके जीवन का' (गीत सं. 33)
वे जनता के हित में जिए और जनता के हित में ही मरे
'जीना तो उनका अर्पित ही था जनगण को
मरने को भी वे जनसेवा में लगा गए।' (गीत सं. 36)

जब गांधीजी स्वर्ग में पहुंचे तो वहां बुद्ध और ईसा ने उनसे पूछा कि हमने धरती पर अपने आदर्शों का जो दीप जलाया था, क्या उसे भी जलता हुआ आपने देखा? गांधीजी ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा-मैं चलते समय उसमें अपना स्नेह-रक्त भरता आया हूं!(गीत सं. 75) सारे संसार ने गांधीजी के शोक में जो श्रद्धांजलि अर्पित की है उससे देवताओं को भी ईर्ष्या हुई होगी-

दस लाख जनों के जिसके शव पर फूल चढ़े
जिसके मरने पर देश-देश ने यह समझा
जैसे उसने कोई अपना मुखिया खोया
जिसके मरने पर कौम कौम की ध्वजा झुकी

मातम करने को, व्यक्त समादर करने को
उससे देवों को ईर्ष्या क्या न हुई होगी? (गीत सं. 77)

लेकिन इतने से ही गांधीजी की हत्या का पाप धुल नहीं जाता। कवि को एक गहरा अनुताप बोध (या अपराधबोध!) है मानो बापू की हत्या के सभी दोषी हैं। उनके शव के पास मौलाना आजाद को कुछ ऐसा ही महसूस हुआ था। बच्चनजी ने भी लिखा है- 'उनके लोहू के धब्बे हैं हर दामन पर।' मानो समूची जाति ही इस हत्या की अपराधी है- 'भारत के हाथों पाप हुआ ऐसा भारी/है लगी हुई संपूर्ण जाति को हत्यारी।' (गीत सं. 41)

इस पाप का एक प्रायश्चित है- युगों-युगों तक पश्चाताप की आग में जलना और दूसरा प्रायश्चित है उनके रास्ते पर उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़ना-

जिस जगह मनुज सच्चाई पर अड़ जाएगा
जिस जगह मनुज आत्मा को नहीं झुकाएगा
गिर जाएगा पर कभी न हाथ उठाएगा
अपने हत्यारे की भी कुशल मनाएगा
हो जाएंगे गांधी बाबा बस प्रकट वहीं। (गीत सं. 84)

कवि के शोकाकुल हृदय से करुण रस की जो स्रोतस्विनी फूटी है वह 'खादी के फूल' तक ही सीमित न रखकर 'सूत की माला' के कगार को भी डुबोती बह चली है। सांप्रदायिकता की आग और खून-खराबे के साथ देश का बंटवारा। और उसके बाद ही गांधीजी की हत्या। जिन कंठों से अभी जश्ने-आजादी के नगमे फूटे थे उन्हीं कंठों से मरसिया के बोल सुनाई देने लगे। 'सूत की माला' का पहला गीत इसी भाव-भूमि से शुरू होता है-

उठ गए आज बापू हमारे
झुक गया आज झंडा हमारा
नाम के आज आजाद हम हैं
देश की एकता खो गई है
क्या इसी पर खुशी हम मनाएं
एक की कौम दो हो गई है। (सूत की माला, गीत सं. 1)

'खादी के फूल' में कहा था-युग के सबसे बड़े पुरुष को/सबसे छोटे ने मारा/सबसे खोटे ने मारा। कुछ इसी तरह फिर कहा, जिसने ब्रिटिश साम्राज्य की हेकड़ी को पस्त कर दिया उसे 'तीन टके की गोली' कैसे मार गई? नत्थू खैरे ने गांधी का ऐसे अंत कर दिया जैसे सिंह को शिशु मेढक लील जाए! फिर कवि की नजर जवाहर लाल नेहरू पर गई, उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए कहा-

अब तुम्हीं देश की और जाति की हो आशा
संपूर्ण प्रजा का, नेहरू, तुम परितोष करो। (गीत सं. 22)

फिर नेहरू की ओर इशारा करते हुए भारत माता को ढाढ़स दिया- भारत माता, मत रो, जो मशाल गांधीजी ने जलाई थी, वह अब नेहरू के हाथों में जल रही है, बुझी नहीं है (वही गीत सं. 26)। विश्व के लिए भी अब गांधी के बाद नेहरू से आशा है-

जो विश्व देखता था गांधीजी को कल तक
वह ताक रहा है नेहरू का रुख लिए आस। (गीत सं. 27)

जैसे क्रौंच बध से मर्माहत आदि कवि ने निषाद को क्रुद्ध होकर शाप दिया था कुछ उसी तरह बापू की हत्या पर बच्चनजी ने नाथूराम को शाप देते हुए कहा-

अब नहीं मिलेगी तुझे प्रतिष्ठा, सठ, तूने
आश्रम के सबसे पावन मृग को मारा है! (गीत सं. 38)

गांधीजी की हत्या का प्रकट अपराधी तो नाथूराम गोडसे है लेकिन उसके पीछे पिछले वर्षों की भारतीय राजनीति में सक्रिय 'बहुतों का छिपा राज' है- 'जो छपा पत्र में वह ऊपर का छिलका!' तब फिर भीतर का रहस्य क्या है? बापू को किसने मारा?

बापू को मारा नीति विभाजन शासन ने
बापू को मारा 'दो कौमों' के क्रंदन ने
बापू को मारा हिंद भूमि के खंडन ने
वध में नगण्य है हाथ मराठे कातिल का!
नाथू के पीछे हाथ जिन्ना का, चर्चिल का! (गीत सं. 32)

यह हुआ बापू की हत्या के कारणों का व्यापक राजनीतिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण! इस पृष्ठभूमि के ब्यौरे में जाने पर 'दो कौमों के क्रंदन' वाले किरदारों से सामना होता हैं। उनकी प्रेरणा ने नाथूराम को तैयार किया-

जिस क्रूर नराधम ने बापू की हत्या की
उसको केवल पागल-दीवाना मत समझो
वह नहीं अकेला इसका उत्तरदायी है
है एक प्रेरणा उसके पीछे प्रबल-कुटिल। (गीत सं. 41)

नेहरू-पटेल की सरकार इसीलिए इस मोर्चे पर मुस्तैद हो गई। सभा-संघ के दफ्तरों पर छापे पड़ने लगे, स्वयंसेवकों के घर तलाशी होने लगी, पुलिस कातिल की मदद करने वाले षड्यंत्रकारियों का सुराग लगाने लगी। कवि को चिंता जन-मन में बैठे और बैठाए गए उस सांप्रदायिक भेदभाव, घृणा, वैमनस्य और वैर भाव की है जिसकी परिणति गांधीजी की हत्या में हुई और जो इतनी जघन्य घटना घट जाने के बाद भी बरकरार है-

यदि घृणा तुम्हारे मन के अंदर बसती है
यदि धर्म तुम्हारा फिरका-पंथ-परस्ती है
तो तुमसे खतरे में भारत की हस्ती है
लो आज तलाशी सब अपने अपने दिल की! (गीत सं. 30)

इस भावभूमि पर पहुंचकर कवि को लगता है- 'उत्तरदायी इस महापाप का सब समाज (गीत, सं. 34)।'

सरकार ने बापू की अंत्येष्टि के बाद उनकी भस्मास्थियों को तीर्थों में सिराने का भव्य आयोजन किया। कवि ने इस विडंबना की ओर लक्ष्य किया कि जिस गांधीजी को अपनी रक्षा के लिए एक तिनका रखना भी गवारा न था- 'उसकी काया की चिता भस्म की रक्षा को/ हैं टैंक खड़े, है खड़ा रिसाला, फौज खड़ी।' (गीत सं. 88)

यह 'राज प्रदर्शन' देखकर कवि के मन में उचित ही यह भाव जागा, 'हम काश उन्हें जीते में यों रक्षित रखते।' यह 'काश' गृह मंत्रालय की कुशलता और सक्षमता पर उठा हुआ प्रश्न है। जब बापू की अस्थियां प्रयागराज में लाई गईं और संगम की पवित्र जलधारा में सिराई गईं-इस प्रसंग का कवि- कल्पित चित्र अत्यंत मर्मस्पर्शी है-

है तीर्थराज की सारी जनता उमड़ पड़ी
युग के दधीचि की आज हड्डियां आती हैं!
यमुना गंगा के कानों में कुछ कहती है
गंगा सुनकर क्षण भर को ठिठकी रहती है
बापू के पावन फूलों को ले आँचल में
यमुना सकुचाती है, गंगा शरमाती है! (गीत सं. 89)

फिर गांधी की स्मृति को पत्थरों में पकड़ने-जकड़ने की तैयारी शुरू हुई-कहीं छतरी, कहीं समाधि, कहीं स्तंभ, कहीं स्तूप! सड़कों और संस्थाओं से उनका नाम जोड़ने का सिलसिला शुरू हुआ। उनके नाम पर गांव और नगर बसाने की योजनाएं बनने लगीं। कवि का विचार है कि गांधीजी मारे गए लेकिन गांधीपन अभी जिंदा है। यह गांधीपन, यह गांधीजी का आदर्श ही उनका सच्चा स्मारक है-

यदि गांधी को हम अपने दिल में बिठला लें
यदि गांधीपन को हम अपने जीवन में अपना लें
उनकी सच्ची स्मृति विश्व शांति के मंदिर की
हम नींव जमाने में रख जाएंगे पत्थर। (गीत सं. 94)

सुमित्रानंदन पंत ने 'देवपुत्र जन-मोहन मोहन' के उन उच्चादर्शों का ही अनुचिंतन और कीर्तन किया जिनसे 'दीपित अब जन-मन।' गांधीजी के सांस्कृतिक दान का स्मरण करते हुए उन्होंने लिखा-'आत्मदान से लोकसत्य को दे नवजीवन/नव संस्कृति की शिला रख गया भू पर चेतन।' बच्चनजी इसी को गांधीपन कहते हैं। हत्या के चालीस दिन बाद बच्चनजी दिल्ली गए-बिड़ला भवन देखा, वह लॉन भी देखा जहां वे गोली खाकर गिरे थे, फिर राजघाट पर वह चबूतरा देखा जहां उनकी चिता जली थी। उस चबूतरे पर लाल फूल रखे थे। बिड़ला भवन से राजघाट को जाने वाली सड़क को कवि सूनी आँखों से देखता रहा- 'थी इसी राह से बापूजी

की लाश गई।'(गीत सं. 100) कवि के मन में एक विचार आता है कि चिताभूमि पर उस ज्वाला को धधकाकर रखना चाहिए था जिस प्रकार पारसी पवित्र अग्नि को हमेशा जगा के रखते हैं (गीत सं. 101)। कनॉट प्लेस पर कवि ने भोग-विलास, चमक-दमक से गुलजार बाजार देखा, फैशन में डूबी हुई उड़ती-फिरती युवतियां देखीं, फिर उसके मन में सवाल उठा-

मैं पूछ रहा हूं क्या गांधी का देश यही
क्या बापू की पावन बलि का है यही नगर! (गीत सं. 102)

एक बार कवि ने यह भी कल्पना की- यदि सिख ने 'मुसलिम ने गोली मारी होती- फिर इसका परिणाम सोचकर सिहर उठा और उसे लगा- 'इस महाविपद में भी भगवान हुए त्राता/हिंदुत्व तुझे ही लेना था माथे कलंक।'(गीत सं. 104) जब पहली बार यह समाचार मिला कि गांधीजी की हत्या किसी हिंदू के हाथों हुई है तो 'भीतर बैठा हिंदुत्व अचानक सिहर उठा/हिंदू होने में पहली बार लगी लज्जा।' (गीत सं. 106) इस लज्जा से ही यह पछतावा पैदा हुआ कि 'मेरा भी इस हत्या में हिस्सा है।' इस लज्जा और अनुताप में कवि को एक सकारात्मक पहलू यह नजर आता है कि इससे हिंदू के मन में जमी हुई मुस्लिम-विद्वेष की मैल साफ हो जाएगी-

'हिंदू में था जो मुस्लिम के प्रति क्रोध-वैर
पछतावा बनकर अब वह अंदर पैठेगा
पछतावे से अंतर विशुद्ध हो जाता है।' (गीत सं. 106)

लेकिन दुर्भाग्य से देश में अब भी ऐसे लोग हैं जो इस पाप को पुण्य मानते हैं, इस कलंक को शर्म के बजाय गर्व की वस्तु मानते हैं। शायद वे गोडसे को 'हुतात्मा' मानते हों जिसने अंत-अंत तक यही कहा कि उसे अपने कृत्य पर पछतावा नहीं है। बच्चन ने गोडसे की व्युत्पित्ति की है- गोडसे अर्थात जो गऊ को डंसे ऐसा विषधर-विषधर को जब पछतावा ही नहीं तो फिर उसका अंतर विशुद्ध कैसे हो? इसीलिए कवि नागार्जुन ने अपनी बेलाग भाषा में कहा-

हृदय नहीं परिवर्तित होगा
क्रूर कुटिल मति चाणक्यों का
नहीं, नहीं, कभी नहीं
परिवर्तित है अंग भंगिमा
परिवर्तित है वेश
स्वर भी काफी बदल गया है
दुबक गए हैं आज, किंतु कल फिर निकलेंगे
कहां नहीं है कोटर इनका! (नागार्जुन : शपथ, चुनी हुई रचनाएं-2, पृ. 63)

भूमि, लता-गुल्म, पशु-पक्षी, मनुष्य सभी शोकाकुल हैं। शोक और क्रोध की मनोदशा में नागार्जुन को न रामधुन चाहिए, न भगवद्गीता का आश्वासन, 'नहीं चाहिए अस्थि तुम्हारी/

नहीं चाहिए भस्म तुम्हारा/ भस्मासुर को खोज रहा है/ पुंजीभूत प्रकोप हमारा।' (वही, सं. 64) फिर सरकार की खबर लेते हुए पूछा- 'क्या करते थे दिल्ली में बैठे पटेल सरदार/जिसके घर में कोई घुसकर साधु को दे मार/ वैसे गृहपति को धिक्कार।'(वही, सं. 65) राष्ट्रपिता के श्राद्ध के दिन जो 'तिल-मधु' मिश्रित पिंड' अर्पित किए जाने थे उन पर 'भस्मासुर की छाया' मंडराती देखकर कवि का क्रोध उबल पड़ा- 'किंतु पिता मैं परम क्षुब्ध हूं, परम क्रुद्ध हूं। श्रद्धांजलि देने के बजाय कवि ने शपथ ली-

'हां बापू, निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूं
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे
हिंदू मुसलिम सिख फासिस्टों से न हमारी
मातृ-भूमि यह जब तक खाली होगी
संप्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक खंडहर न बनेंगे
तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊंगा
लौह लेखनी कभी विराम न लेगी
इस पवित्र पावक को, बापू, मैं प्रज्जवलित रखूंगा
ठंडा पानी सींच न पाएगी इस पर सरकार।' (वही, सं. 66)

कहना न होगा कि कवि नागार्जुन ने यह शपथ आजीवन निभाई। बापू के शोक में केवल हिंदी कवियों की वाणी क्रंदन नहीं कर रही थी, बल्कि समूचे भारत की भारती नाना भाषाओं में विलाप कर रही थी। बच्चनजी ने लिखा है, जैसे बापू की हत्या पर साक्षात् सरस्वती चीत्कार कर उठी हो-

उस परमहंस के घायल होकर गिरते ही
शत-शत कलमों-कंठों से बरबस निकल निकल
शत-शत प्रबंध, कविताओं ने नभ गूंज दिया
जैसे सहसा चीत्कार कर उठी सरस्वती। (खादी के फूल, गीत सं. 89)

सरस्वती की इस चीत्कार में हिंदी कवियों का स्वर अलग से पहचाना जा सकता है और उसमें भी भवानी प्रसाद मिश्र, दिनकर, बच्चन और नागार्जुन की विशिष्टता लक्षणीय है।

●

गांधी : जीवन एक अकिंचन इच्छा की विराट फलश्रुति

ओम निश्चल

संयोग ही है कि यदि एक लेखक दल के साथ दक्षिण अफ्रीका के डरबन, जोहांसबर्ग और मेरिटजबर्ग जैसे नगरों में जाना नहीं हुआ होता और वहां दक्षिण अफ्रीका की आजादी के बीस साल की उत्सवता का साक्षी बनने के साथ यदि गांधी द्वारा स्थापित प्रिटिंग प्रेस का दिग्दर्शन नहीं हुआ होता, जिस स्टेशन पर वे प्रथम श्रेणी से दुत्कार कर उतारे गए उस स्टेशन की नीरवता में उनके अपमान के भाव को आत्मसात नहीं किया होता तो शायद दक्षिण अफ्रीका में गांधी द्वारा इक्कीस वर्ष के दौरान किए गए कामों के पीछे गांधी के समर्पण, जिद और साधना की समावेशिता को नहीं जान पाता। लोगों की स्मृति आज बहुत क्षीण हो चली है, बड़े बड़े नायक विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाते हैं, पीढ़ियां अकसर पीछे मुड़कर नहीं देखती। सब कुछ जैसे इतिहास के जीवाश्म का अंश होकर रह जाता है। इस देश में गांधी को याद करने की ही नहीं, भुलाने की भी अनेक कोशिश हुई हैं पर वे आज भी अतीत और वर्तमान के बीच एक पुल की तरह हमारी स्मृति में रचे-बसे हैं।

ऐसा क्या है कि एक राष्ट्र के निर्माण के पीछे, उसकी आजादी के पीछे, उसके आत्मगौरव के पीछे एक ऐसे शख्स का संघर्ष तरोताजा है जिसने अफ्रीका जाकर भारतीयों को उनके आत्म गौरव का बोध कराया तथा वहां की आजादी का पथ प्रशस्त किया। एक तरफ अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस का रंगभेद के खिलाफ संघर्ष, दूसरी ओर गांधी द्वारा नागरिक अधिकारों को लेकर की गई जद्दोजहद, दक्षिण अफ्रीका से विदा होते गांधी और कस्तूरबा के लिए तब उमड़ी अप्रत्याशित भीड़ की आँखें नम थीं। वे दक्षिण अफ्रीका छोड़कर जा रहे गांधी को रोक लेना चाहते थे क्योंकि गांधी अफ्रीकियों के मन में बस चुके थे। वे वहां के प्रवासी भारतीयों के मन में बस चुके थे। गांधी ने वहां गोरे लोगों से अनेक मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष किया तथा भारत आकर यहां अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया।

गांधी के अफ्रीकी जीवन की यह विराट आख्यान जाने माने उपन्यासकार/कथाकार गिरिराज किशोर लिखित 'पहला गिरमिटिया' के पन्नों में दर्ज है। एक साधारण से लगते इनसान के जीवन और विचारों का क्षितिज बहुत बड़ा है... लगभग अनंत विस्तार लिए।

गांधी-जीवन, गांधी दर्शन, गांधी की दिनचर्या, गांधी की अहिंसा, गांधी का सत्य, गांधी का अपरिग्रह, गांधी का अस्तेय, यम नियम प्रत्या-हार सब कुछ चिंतन का विषय है। गांधी बीसवीं शताब्दी के ऐसे विराट वैश्विक व्यक्तित्व थे जिनके बारे जितना लिखा जाए, कम है। देश दुनिया के अनेक आख्यानों, काव्यों, वृत्तांतों में गांधी के वृहत्तर मानवीय दर्शन का बखान किया गया है। हिंदी और भारतीय साहित्य में गांधी एक उपजीव्य शख्सियत हैं जैसे सर्जनात्मक साहित्य के लिए महाभारत एवं रामायण जैसे आदि ग्रंथ। हमारी साहित्य की परंपरा ने अपने समय के उदात्त चरित्र को सदैव अपनी सर्जना के केंद्र में रखा। यहां तक कि सदियों में फैले प्रख्यात काव्यनायकों की तरह गांधी भी अपनी लोकप्रियता, त्याग और संघर्ष की बदौलत आधुनिक जीवन के महान काव्य नायक बनते गए। उनकी एक एक सामान्य मानवीय गतिविधि कौतूहल का विषय बन गई। उनमें भी उनके सूक्ष्म जीवन-प्रयोग की बारीकियां खोजी जाने लगी। सच कहें तो लघुता में विराटता का ऐसा कोई उदाहरण विश्व में दूसरा नहीं है। उनकी वाणी में अपौरुषेय शक्ति निहित है।

गांधी अपने युग के चरित नायक बने, काव्य नायक बने, आख्यानों के नायक बने तो इसके पीछे उनकी वह उदात्त साधना थी जो शासकों के आगे निर्भय थी। वह झुकना नहीं जानती थी। वह ईश्वर से सदाचरण पर कायम रखने की प्रार्थना करती थी, जनता को सत्य, अहिंसा और त्याग की सीख देती थी तो सांप्रदायिक सद्भाव के लिए उन्हें मनोबल प्रदान करती थी। इसलिए काव्य तो अपार लिखे गए। अपने समय के अनेक वीरपुरुष, शीलवान साहित्य में नायक बने और बनाए गए किंतु गांधी का नायकत्व किसी समूह, किसी संगठन, किसी निकाय द्वारा प्रयोजित न था। जनता गांधी बाबा की जरा सी बात को मूल मंत्र मान लेती थी। गांधी ने यह कहा, गांधी ने वह कहा, यह घरों में चर्चा का विषय हुआ करता था। कवियों ने गांधी को हाथों-हाथ लिया। गांधी के जीवन दर्शन, स्वातंत्र्य संघर्ष और रहन सहन में उनकी सादगी नजर आती थी। गांधी एक साथ नेहरू और पटेल, नेहरू और सुभाष को साधकर रख सकते थे। वे एक साथ हिंदुओं और मुसलमानों को समभाव से देखते थे। प्रार्थना, प्रवचन के अंश गवाह हैं कि बंटवारे के बावजूद वे भाईचारे की नींव पुख्ता करने में संलग्न थे। वे हिंदू धर्म को हेय दृष्टि से नहीं देखते थे। वे उसमें व्याप्त बुराइयों को धीरे-धीरे प्रक्षालित कर दूर करना चाहते थे। वे सभी धर्मों के समन्वय का केंद्र बिंदु थे। वे पीर पराई से विचलित होने वाले वैष्णव थे। उनकी वैष्णवता सभी धर्मों पर भारी थी।

गांधी : अपने युग के काव्य नायक

एक दौर में गांधी पर हजारों काव्य, खंड काव्य एवं प्रबंध काव्य लिखे गए। संकलन किया जाए तो हजारों कविताएं उन पर लिखी गई होंगी। कितने अभिनंदन ग्रंथ उन पर निकाले गए। 1944 में कविवर सोहनलाल द्विवेदी ने उन पर अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित किया था। उन्हें जितने विशेषण दिए गए कदाचित विश्व के किसी दूसरे महामानव को ऐसे विशेषण नहीं दिए गए। यथा- युग सारथी, युगपुरुष, विराट तीर्थ, मुक्तिदूत, विश्वात्मा, महात्मा, बापू, आत्म निग्रही, ज्योतिर्पुंज आदि-आदि। अपने समय के सुपरिचित कवि रघुवीर शरण मित्र ने उन पर जननायक महाकाव्य लिखा जिसकी भूरि-भूरि सराहना डॉ. राजेंद्र प्रसाद, राजर्षि टंडन, विनोबा

भावे, मैथिलीशरण गुप्त, हजारी प्रसाद द्विवेदी, निराला, बनारसीदास चतुर्वेदी व गुलाबराय जैसे मनीषियों ने की है। उन्होंने लिखा *'जिनकी चरण धूलि चंदन है, दीपक उनके चरणों में जल जिनकी पूजा में प्रसाद है वाणी, उनके मंदिर में चल।'* तुलसीकृत 'श्री रामचरितमानस' की तर्ज पर विद्याधर महाजन ने 'श्री गांधीचरितमानस' नामक महाकाव्य लिखा। नटवरलाल स्नेही ने 'तुम बन गए राम' नामक प्रबंध काव्य लिखा तथा सिद्ध किया कि बापू तुम अपने आचरण से श्रीराम बन गए। मर्यादा पुरुषोत्तम की तरह ही स्नेही ने बापू को मानव के रूप में ही चित्रित किया और यह स्थापित किया कि-

सांसों के सुरभित मन पर तुम राम राम रटते अकाम
अठारह अणु अणु अभिनंदनीय बापू, तुम ही बन गए राम।

काशी ने कवि और वंशी और मादल के चर्चित कवि ठाकुर प्रसाद सिंह ने गांधी पर 15 भागों में 'महामानव' नामक प्रबंध काव्य लिखा। इसे उन्होंने जन जागरण की महागाथा कहा है। यह काव्य गांधी के जीवित रहते लिखा गया था। ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने 'जगदालोक' नाम से एक प्रबंध काव्य लिखा तथा बीस सर्गों में गांधी के जन्म से लेकर उनके अवसान तक की घटनाओं को उपनिबद्ध किया। बदरीनारायण सिन्हा ने गांधी पर 'अब बहु से सब जन हिताय' काव्य लिखकर गांधी के जीवन दर्शन को बारीकी से उकेरा है। छोटे-छोटे छंदों में सिन्हा ने काव्य माला के मन के सजाए हैं। बड़े विनय से उन्होंने लिखा :

यह कौन पुरुष आया है छिटकी अदभुत माया है
उतना ही तेज अतुल है जितनी दुर्बल काया है।

इसी तरह महेशचंद प्रसाद लिखित 'गांधी चरित' व डॉ. दिनेश लिखित 'विश्व ज्योति' बापू दोनों गेय व सरल छंदों की मंजूषा से संपन्न हैं। इस सब ग्रंथों में जो दो काव्य बहुत महत्वपूर्ण हैं वे हैं सियारामशरण गुप्त की 'बापू' एवं रामधारी सिंह दिनकर की 'बापू'। दोनों अपने युग के महान् कवि थे। कहा जाता है कि 'बापू' कृति कवि की अंतरात्मा का संगीत है। पूरे काव्य में गांधी का नाम लिए बिना जिस तरह मानवता के विराट व्यक्तित्व के चित्र आंके गए हैं वे काव्य में दुर्लभ हैं। दिनकर को हमारे समय का क्रांतिकारी कवि माना जाता है। वे युग कवि कहे गए, राष्ट्रकवि माने गए। वे आजादी के संघर्ष में भले ही गांधी की अहिंसा नीति के आलोचक रहे हों, उनकी आलोचना भी की है किंतु एक राष्ट्रकवि ही राष्ट्रपिता की महिमा का उचित बखान कर सकता है। वे जानते थे कि वे गांधी के विचारों के आलोचक रहे हैं इसलिए विनत भाव से उन्होंने कहा कि...

बापू मैं तेरा समयुगीन, है बात बड़ी पर कहने दे
लघुता की भूल तनिक गरिमा के महासिंधु में बहने दे।

वे जानते थे कि बापू कृष्णा की तरह विकल मन हैं। भारत मां पर संकट आया तो वे वैसे ही दौड़ पड़े जैसे कृष्ण द्रोपदी की लज्जा को बचाने दौड़ पड़े थे। जिस महामानव के लिए कवि ने लिखा, 'चल पड़े जिधर दो डग-मग चल पड़े कोटि पग उसी ओर' उसके लिए यह पद लिखते हुए राष्ट्रकवि का दिल भी रो उठा होगा... यह लाश मनुज की नहीं मनुजता के सौभाग्य

विधाता की/बापू की अर्थी नहीं, चली अर्थी यह भारतमाता की। इन काव्यों के अलावा खादी के फूल नामक संग्रह में पंत व बच्चन की कविताएं संग्रहीत हैं। गांधी के निर्वाण के बाद सूत की माला लिख कर बच्चन ने उन्हें काव्यांजलि अर्पित की। प्रसिद्ध कवि गीतकार पं. नरेद्र शर्मा ने 'रक्त चंदन लिखकर' व हरिकृष्ण प्रेमी ने वंदना के बोल लिखकर गांधी का मानवर्धन किया। शिवमंगल सिंह 'सुमन' ओज के अनन्य कवि थे उन्होंने अपने संग्रह पर 'आँखें नहीं भरी' में गांधी पर कई कविताएं लिखी हैं। सौराष्ट्र के कवि दुलेराय काराणी ने 'गांधी बावनी' लिखकर बापू के चरणों में शब्दसुमन चढ़ाए। युगांत में पंत ने उन्होंने शुद्ध-बुद्ध आत्मा कहकर पुकारा, युगवाणी में गांधी पर उनकी दो कविताएं हैं।

गांधी का औपन्यासिक जीवन

वे उन उपजीव्य शख्सियतों में आते हैं जिन पर और जिनके विचारों पर केंद्रित कई उपन्यास लिखे गए। 'भारत सेवक' नाम से यज्ञदत्त शर्मा ने एक उपन्यास लिखा। ऋषभचरण जैन ने 'सत्याग्रह' नाम से उपन्यास लिखा। गांधी पर कई चर्चित नाटक लिखे गए जिनमें आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'पगध्वनि', लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'मृत्युंजय',सेठ गोविंददास कृत 'राम से गांधी', मोहनलाल महतो वियोगी कृत 'दांडीयात्रा', रामनरेश त्रिपाठी कृत 'बा और बापू', आदि प्रमुख हैं। बापू पर अनेक स्फुट ग्रंथ भी लिखे गए हैं जिनमें रामनाथ सुमन कृत 'युगाधार', घनश्याम दास बिड़ला कृत 'बापू', कमलापति त्रिपाठी कृत 'अमर बापू', हरिभाऊ उपाध्याय कृत 'मेरे हृदय देव', तन्मय बुखारिया कृत 'मेरे बापू', प्रभाकर माचवे कृत 'गांधी की राह पर', भोलानाथ तिवारी कृत 'हे बापू', 'हे राष्ट्रपिता' व विष्णु, प्रभाकर कृत 'रामनाम की महिमा' आदि प्रमुख हैं।

हम गांधी की 150वीं जयंती मना रहे हैं। आज तक उन पर हजारों कृतियां लिखी गईं। गांधी और उनकी विचारधारा पर अब तक ऐसा कौन सा महापुरुष या कवि है जिसने न लिखा हो। आचार्य कृपलानी, महादेव भाई देसाई, देवेंद्र सत्यार्थी, काका कालेलकर, सोहन लाल द्विवेदी, लुई फिशर, रामनरेश त्रिपाठी, सत्यकाम विद्यालंकार, सर्वपल्ली राधाकृष्णनन, रामनारायण उपाध्याय, पं. नेहरू, श्री मन्नारायण अग्रवाल, चतुरसेन शास्त्री, संपूर्णानंद, सनेही, विश्वंभरनाथ उपाध्याय से लेकर आज तक उन पर लिखा जा रहा है किंतु आज भी गांधी के जीवन-चरित्र, विचार-दर्शन एवं मानव जीवन के लिए दिए संदेश की परतें नहीं खुल पाई हैं। एक बड़ा मनुष्य वही होता है, वही काव्य नायक होता है जिस पर हर बार लिखने के दौरान कुछ छूट जाता हो। जिस पर हर बार सोचने पर नई-नई बातें ध्यान आती हों। गांधी में ऐसा कुछ है कि उनके आलोचक भी उनकी इस विशेषता को लक्षित करते हैं। कबीर ने कहा था, 'हम न मरब, मरिहैं संसारा।' गांधी मर कर भी अमर हैं उन्हें कोई मार नहीं सकता। नास्ति येषां यश : काये जरामरणंभयम्। वे स्वर्गगत होकर भी उस आलोकपुंज में समा गए हैं जहां से मनुष्यता को सदैव रोशनी मिलती रहेगी।

गांधी-जीवन का पहला बड़ा उपन्यास

हमारे यहां शास्त्रकारों ने काव्य के हेतु बताए हैं। किसी भी काव्य के पीछे उसके प्रयोजन होते हैं। काव्य हेतु होते हैं, बिना हेतु के कोई काव्य हो नहीं सकता। इसी तरह यदि गांधी जीवन

को एक विराट आख्यान या किस्सागोई में समेटा जा रहा है तो इसके पीछे कोई हेतु है। कोई प्रयोजन है इसलिए कि गांधी पर अभी तक जो भी लिखा गया वह कहीं न कहीं अधूरा है। 'पहला गिरमिटिया' गांधी जीवन को फिर से एक किस्सागोई में ढालने, बुनने और रचने का उपक्रम है जिसे केवल गिरिराज किशोर ही संभव कर सकते थे। उन्होंने गांधी को अपने उपन्यास के केंद्र में रखने से पहले उनके जीवन, उनसे संबंधित स्थलों, राजनीति में उनकी विभिन्न गतिविधियों, स्वतंत्रता संघर्ष में उनकी संलग्नता को गौर से देखा व समझा। इस उपन्यास के पीछे एक व्यापक तैयारी झलकती है जो आसानी से पहचाने जा सकने वाले गांधी की अलक्षित जटिलताओं के मनोविज्ञान को बारीकी से उकेरती है। यह केवल गांधी जीवन की कथा मात्र नहीं है यह पूरे गांधी युग को एक लेखक के नजरिए से देखने का उपक्रम भी है। यह राजनीति में एक लघु मानव की प्रतिष्ठा के आधारों को तलाशने की एक प्रक्रिया भी है। यह गांधी संस्कारों को गांधी के भीतर उतर कर देखने का सलीका है। यह गांधी के उन सूत्रों को पकड़कर आगे चलने का उपक्रम भी है कि आखिर क्या वजह थी कि तमाम आलोचनाओं के बावजूद गांधी एक सदी तक भारतीय राजनीति के केंद्र में रहे। उन पर सबकी निगाह रही। विश्व में सबसे ज्यादा मूर्तियां आज गांधी की लगी हैं तो इसलिए नहीं कि उनके भौतिक जीवन में ऐसा कुछ खास था कि वे पूरे विश्व में ध्यान और आकर्षण का केंद्र बने, इसके पीछे भारत जैसे एक अविकसित और पिछड़े देश के आध्यात्मिक दार्शनिक चिंतन की विराट फलश्रुति को महत्व के साथ आंका गया। जहां आजादी का इतिहास रक्तरंजित समरगाथाओं का इतिहास रहा हो, ऐसे में भारत की आजादी के पीछे उसके स्वातंत्र्य संघर्ष के नायक का एकमात्र कारगर हथियार अहिंसा रहा हो, यह पूरे विश्व में एक कौतूहल का विषय रहा है। कोई अहिंसा से कैसे आजादी का समर जीत सकता है। कैसे ब्रितानी शासकों के अंतः करण को विचलित कर सकता है। गांधी का यह स्वरूप पूरे विश्व में एक चुनौती के रूप मे देखा गया। सत्य और अहिंसा की बुनियाद गांधी ने सदियों के भारतीय दर्शन, से पाई थी। उस वैष्णवता से पाई थी जो पीर पराई जानने को ही परम जीवन लक्ष्य मानती आई है।

गांधी के दक्षिण अफ्रीकी जीवन की कथा एक अनूठे और मार्मिक समर्पण से शुरु होती हैः 'उन भारतीयों को और उनकी संतति को जो उन्नीसवीं शताब्दी में समृद्धि का पुल बनकर गिरमिटिया और यात्री के रूप में दूसरे देशों में फैल गए थे फिर कभी नहीं लौटे। उन भारतीयों को जिन्होंने समुद्र लील गया और उनकी संतानों को, जिनके लिए सागर की लहरों में भी वे जीवन भर जिंदा रहे। अगली पीढ़ी को यह पुस्तक समर्पित करते हुए उपन्यासकार ने लिखा कि- 'जिनके लिए मोहनदास को जानना शायद ज्यादा जरूरी होगा मोहनदास के रूप में वह अपने देश के लोगों की आजादी के लिए पराई धरती पर खटा और महात्मा गांधी के रूप में अपनी धरती पर गोली खाकर राम-राम कहता चल बसा।'

गांधी का जीवन जितना खुला और स्पष्ट है उतना ही जटिल भी है। जिसके जीवन के सारे पन्ने ऐसे खुले हों उनमें अलक्षित को निकालकर जीवनी के ताने-बाने में बुनना आसान नहीं है। खासकर दक्षिण अफ्रीका के उनके बिताए कालखंड को समझना बहुत ही कठिन है। यह कह देना आसान है कि वहां एक मुकदमे के सिलसिले में गांधी पैरवी के लिए गए पर वहां

गोरे लोगों के बीच दक्षिण-अफ्रीकियों की जो स्थिति थी वह बहुत भयावह थी। भारतीयों के लिए जो वहां मेहनत मजदूरी के लिए ले जाए गए उनके लिए बहुत यातनाप्रद जीवन था। हम मॉरीशस के अप्रवासी घाट पर देख चुके हैं कि कैसे यहां से ले जाए गए भोले-भाले भारतीयों को पीटा व मारा जाता था, यातनाएं दी जाती थीं। यातनाओं का यह स्मारक गिरमिटिया मजदूरों की करुण कहानी बयान करता है। इस तरह दक्षिण अफ्रीका भी उन दिनों भारतीयों के लिए एक यातना शिविर से कम न था जहां केवल गोरों के नियम चलते थे, काले लोगों पर जुल्म की दास्तान बयान करना मुश्किल है। अपनी आजादी के लिए दक्षिण अफ्रीका के निवासियों ने जो संघर्ष किया वह कविताओं व कहानियों में वर्णित है। ऐसे में गांधी का वहां जाना, पग-पग पर अपमान सहना, भिन्न भाषा व संस्कृति, रहन सहन, खानपान के वातावरण में रहते हुए न केवल अपने उद्दिष्ट कार्य को सिद्ध करना था बल्कि वे भारतीय नागरिकों के लिए उबारनहार भी बने। नागरिकता के अधिकारों से वंचित भारतीयों को मताधिकार दिलाने में गांधी ने अनथक परिश्रम किया। वहां जागरूकता के प्रसार के लिए प्रेस स्थापित किया। राहें बहुत कठिन थीं पर गांधी ने अपनी चाल-ढाल और जिद नहीं छोड़ी। गिरिराज किशोर कहते हैं जैसे कृष्ण के जीवन के तीन पक्ष हैं... कान्हा पक्ष, कृष्ण पक्ष एवं योगिराज कृष्ण पक्ष। उसी तरह गांधी के तीन पक्ष थे... मोहनिया पक्ष, मोहनदास पक्ष व महात्मा गांधी पक्ष। उन्होंने उपन्यास में गांधी का मोहनदास पक्ष लिया है। उन्होंने इसके लिए गांधी को समझने के लिए दक्षिण अफ्रीका व मॉरीशस की यात्राएं कीं। पहले संपूर्ण गांधी जीवन पर उपन्यास का ताना-बाना बुना जा रहा था पर वह उनके ही शब्दों में संसार के समस्त सागरों को तैरकर पार करने जैसा उपक्रम होता। उन्होंने, जैसे तुलसीदास ने राम के लौकिक पक्ष को लिया, मानवीय पक्ष को लिया, गांधी के मोहनदास पक्ष को लिया जो आम आदमियों के संघर्ष में शामिल रहा, जो नैतिक जीवन का अभ्यासी बना, जिसने भारतीय नागरिकों की पीड़ा को अपने भीतर जिया। वे कहते हैं मोहनदास का पूरा संघर्ष एक बेगानी धरती पर एक अनजाने और आम आदमी का संघर्ष था।

एक सामान्य व्यक्ति के रूप में गांधी के कर्मठ जीवन को उकेरते हुए गिरिराजजी ने उनके उस रूप को चुना जो पत्नी के जेवर बेचकर लंदन बार एट लॉ करने गया। वहां से लौटा तो पिता न थे, चाचा ने अंगूठा दिखा दिया। बेरोजगारी के इस आलम में अल्पभाषी होने के कारण वकालत भी न चल पाती थी सो एक साल के एग्रीमेंट पर उन्हें भी दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहां दादा अब्दुल्ला के साथ वकालत की पायदान पर अपने पैर जमाए। प्रिटोरिया जाते हुए मेरिट्जबर्ग के स्टेशन पर प्रथम श्रेणी टिकट होते हुए भी डिब्बे से उतार दिए गए। अपमान के घूंट पीकर भी गांधी हार नहीं माने। अपने भीतर भारतीय नैतिक कथाओं के बताए आत्म निग्रह, क्षमा, दया, करुणा और सत्य को हृदय में बसाए वे धीरे-धीरे गिरमिटियों के स्वाभिमान की लड़ाई में शामिल हो गए। गिरिराजजी दक्षिण अफ्रीका की यात्रा में अनेक लोगों से मिले, हासिम सादात के जरिए 'गांधी द साउथ अफ्रीकन एक्सपीरियंस' और 'द साउथ अफ्रीकन गांधी' पुस्तकें हासिल कीं। उनकी पत्नी फरीदा बेन, गांधी की पौत्री श्रीमती इला गांधी ने बहुत मदद की। फीनिक्स को उजाड़ देख वे बहुत आहत हुए। हासिमजी दादा अब्दुल्ला की पेढ़ी पर

उन्हें ले गए। वह कोर्टरूम देखा जहां गांधी को अपनी पगड़ी उतारनी पड़ी थी। डरबन जेल देखी जहां गांधी व कस्तूरबा बंद रह चुके थे। वे नेटाल की राजधानी पीटर मेरिट्जबर्ग भी गए। तॉल्स्तॉय फार्म का बियाबान भी देखा।

गांधी को मुड़कर देखना

किसी गांधी जैसे व्यक्ति के जीवन को पीछे मुड़ कर देखना बहुत आसान नहीं है। बहुत सारी छोटी-मोटी घटनाएं जो उनके जीवन में घटी उनके साक्ष्य नहीं मिले। उस समय के लोग नहीं मिले। जहां कहानी अधूरी लगी उसे लेखकीय कल्पना से रचना पड़ा कि वह गांधी के दक्षिण अफ्रीकी जीवन क्रम को व्यवस्थित रूप दे सके। दक्षिण अफ्रीका व मॉरीशस की यात्राएं आसान न थीं। वहां गांधी के बारे में जानने के लिए लोगों से संपर्क चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने व एक निष्कर्ष तक पहुंचने का रास्ता सरल न था पर अंततः दशक भर के परिश्रम के बाद छपा उपन्यास पहला गिरमिटिया गांधी के मानवीय पक्ष को अत्यंत करीने वृतांत के साथ प्रस्तुत करता है। उपन्यास इस एक वाक्य से शुरू होता हैः गोरों के सपने थे। यहां भी धरती वतनी लोगों की, सपने गोरों के थे। संख्या में ज्यादा वतनी लोग अल्पसंख्यक गोरों को देखकर ही सहम जाते थे। उनको अपनी ताकत का पता न था। शीतोष्ण जलवायु में फसलें उगाना हिकमत का काम है जो काम वतनी भी नहीं कर सकते थे। लिहाजा यह सोचा गया कि यदि फसलों के काम के लिए बाहर से कुली बुलाए जाएं तो वे फसलें भी उगा लेंगे और इन वतनियों से निपट भी लेंगे। लिहाजा 16 नवंबर 1860 में हिंद महासागर की अथाह जलराशि को चीरता हुआ एक जहाज एडिग्टन बंदरगाह से कुछ दूर उतरा। इस तरह इस महाद्वीप पर कुलियों के आने की शुरुआत हुई। उनकी स्वास्थ्य की जांच, उनकी मजबूती को परखना, उनसे काम करवाने की प्रक्रिया बहुत दहशत भरी है। कुली गोरे डचों के लिए चूहों से ज्यादा हैसियत न रखते थे। गिरमिटिया कुलियों के त्रासद आख्यान का जीवंत वर्णन किया है।

गोरों के सपने थे तो मोहनदास के भी थे। दादा अब्दुल्ला के काम से अनुबंध पर जाना था। सुविधाएं यथोचित मिल रही थी। सो एक दिन मोहनदास दक्षिण अफ्रीका की यात्रा पर रवाना हो गए। फर्स्ट-क्लास केबिन में जगह न होने के बावजूद चीफ आफिसर ने अपने केबिन में एक बर्थ दी और इस तरह उनका आगमन एडिग्टन बंदरगाह पर हुआ। समुद्र के वक्ष पर अनेक पड़ावों पर ठहरते पार करते आखिर मंजिल आ ही गई। रास्ते के रोमांचक सफर का क्या जीता जागता वृत्तांत उकेरा है गिरिराजजी ने। उनके लिए मोहनदास एक यात्री एक गिरिमिटिया भर न थे, वह जीवन चरित थे जिनके हर पहलू को क्षण-प्रतिक्षण महसूस करना व उसे आख्याान में दर्ज करना था। बीस साल पहले डरबन आए दादा अब्दुल्ला की अब्दुल्ला एंड कंपनी नेटाल का सबसे पुराना बड़ा भारतीय प्रतिष्ठान था। वे खासे पैसे वाले थे, तमाम भाषाओं के जानकार वाकपटु। गांधी आ तो गए दक्षिण अफ्रीका पर दादा अब्दुल्ला के मुकदमों की पैरवी में क्या कुछ सहयोग कर पाएंगे। नई-जगह-नए लोग। गोरे लोगों के बीच एक हिंदुस्तानी वकील। यह सब असंभव सा था, पर हो रहा था। तमाम कश्मकश चलती रही बातचीत में अब्दुल्ला व मोहनदास के बीच। एक दिन मोहनदास कांवर लादे एक फेरीवाले को देख ही रहे थे कि अब्दुल्ला बोले, हिंदुस्ताानी जहां जाता है अपना हिंदुस्तान बना लेता है।'

डरबन कोर्ट रूम देखने के सिलसिले में जब गांधी ने जानना चाहा कि क्या यहां कोई हिंदुस्ताानी वकील नहीं? तो दादा अब्दुल्ला बोले,' हिंदुस्तानी! पहले तो कोई हिंदुस्तानी ही नहीं जो वकील बनने के काबिल हो, अगर हो तो गोरे उसे रहने नहीं देंगे। रह भी जाए तो कोई मुवक्किल उसके पास नहीं फटकेगा।' उन्होंने कहा, 'गांधी भाई हमारे लोगों के लिए कचहरी मतगणना है। हर आदमी को लगता है, पानी वहां है, पर पानी कहीं नहीं होता।'

अस्तित्व की एक लंबी लड़ाई

एक नई जगह, वकालत, गोरों के बीच अपने अस्तित्व की एक लंबी लड़ाई लड़नी थी। यह सहज न था। इस पूरी उधेड़बुन से गुजरते हुए गांधी अपने को तैयार कर रहे थे। पहले ही दिन मजिस्ट्रेट ने गांधी का फेटा उतरवा दिया था। 'अब्दुल्ला का स्वभाव काफी धीरज वाला था। गांधी ने यह पहले ही भांप लिया था जब उन्होंने यह बात कही थी कि जिसके सामने फर्ज साफ हो, उसके लिए गुस्से की कहां गुंजाइश है।' फिर एक दिन गाड़ी से धक्के देकर उतार देने की घटना। आज भले वह एक छोटा सा स्टेशन एक ऐतिहासिक धरोहर की तरह है। वह वेटिंग रूम भी है जहां गांधी ट्रेन से उतार दिए जाने के बाद बैठे थे। वह बेंच भी है जहां वे कुछ देर बैठे थे। यह घटना बैरिस्टर किंतु गोरों में कुली मोहनदास के जीवन की एक निर्णायक घटना बन गई। अब क्या करेंगे ? तमाम सवाल मोहनदास को झकझोर रहे थे हालांकि अगली एक प्रिटोरिया यात्रा में एक अश्वेत यात्री ने उनकी मदद भी की जब गार्ड ने उन्हें उस कोच से उतरकर वैन में बैठने को कहा। बाद में भी उन्हें ऐसी यात्राएं करनी पड़ी और जद्दोजहद से गुजरना पड़ा पर कुछ ऐसे भी लोग मिले जिनसे कुछ आसानियां भी पैदा हुईं। मि. बेकर, नानबाई ये जीवन के प्रारंभिक सोपान भी हैं।

इधर मोहनदास दक्षिण अफ्रीका में उधर कस्तूरबा गुजरात में। मोहनदास के संदेश उन्हें मिलते तो यादों में खो जाती। गांधी का ध्यान भी कस्तूरबा में लगा रहता। मेटिल्डो की मेहमाननवाजी खुश करने वाली थी पर ट्रेन की यात्रा में होने वाला अपमान असह्य था। एक महीने बीतने को आए कि तैयब सेठ ने प्रिटोरिया में रह रहे हिंदुस्तानियों की एक बैठक बुलवाई जिसमें मोहनदास बोले। इस बैठक का लब्बोलुआब गांधी के इस कथन में था कि आचरण की सत्यता ही सम्मान की कसौटी बनेगी वरना हम हर जगह जानवरों की तरह दुत्कारे जाते रहेंगे। उन्होंने हिंदुस्तानियों से अंग्रेजी सीखने की गुजारिश भी की, उसकी कक्षाएं लगाईं। अपमान तो रोजमर्रा की नियति बन चुके थे । प्रेसीडेंट क्रूगर के सामने की फुटपाथ पर कुलियों का चलना वर्जित था। ऐसा करने पर मोहनदास की बुरी तरह पिटाई हुई पर अपने ऊपर ज्यादतियों के खिलाफ कानून का सहारा नहीं लिया। मुकदमे में तैयब सेठ के खिलाफ 40,000 पौंड की देनदारी के फैसले के बाद यों तो गांधी का उद्देश्य समाप्त हो जाना चाहिए था पर गांधी की मुहिम अभी पूरी नहीं हुई थी। गांधी को सब रोक लेना चाहते थे। वे चाहते थे कि गांधी उनका नेतृत्व करें। गांधी विचारों के दोराहे पर थे। एक तरफ अपना घर याद आता था दूसरी तरफ हिंदुस्तानियों की जमात जो वहां कुलियों का नागरिकता वंचित जीवन जी रहे थे। उन्हें मताधिकार न था। इस सबके खिलाफ एक बड़ी जमीन तैयार करनी थी। उन्हीं दिनों नेटाल उपनिवेश के भारतीय प्रवासी संसद में मताधिकार बिल पेश होने वाला था। गांधी ने संसद के

अध्यक्ष को तार दिया कि इस बिल का वाचन अविलंब रोका जाए। अखबारों में इस बात की चर्चा होने लगी। लोगों में जिज्ञासा हुई। फिर तो एक लंबा प्रकरण है इस बात का कि गांधी ने कैसे प्रवासियों को मताधिकार दिलवाया और कैसे वे दक्षिण अफ्रीकी सत्ता के विरुद्ध उत्तरोत्तर एक बड़ी नैतिक और निडर आवाज में बदलते गए। गोरों को यह रास न आ रहा था कि एक कुली बैरिस्टर कोर्ट-कचहरी के मामलों में निर्णायक बनने लगा है। नेटाल लॉ सोसाइटी के विरोध के चलते नेटाल सुप्रीम कोर्ट में मोहनदास का रजिस्ट्रेशन मुश्किल था किंतु एडवोकेट जनरल मि. ऐस्कम्ब ने इस काम में उनकी मदद की। अखबारों में अगले दिन की सुर्खियां थी 'एक कुली एडवोकेट बना।' यह उनकी पहली जीत थी। प्रवासियों के बीच वे धीरे-धीरे मोहनदास से गांधी भाई बन गए थे। फिर तो नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना ने यूरोपीय समाज में खलबली मचा दी। गांधी की प्रैक्टिस भी चल पड़ी थी। एक गिरमिटिया को एक गोरे रईस द्वारा बेरहमी से पीटे जाने पर गांधी ने कोर्ट से उसके नाम सम्मन जारी करा दिया था। गांधी भारतीय गिरमिटियों के नायक बन चुके थे।

अब गांधी का नाम और काम दोनों बढ़ने लगा था। साल भर का एग्रीमेंट भी खत्म होने वाला था पर अब गांधी के सामने और तमाम चुनौतियां थीं। मताधिकार संशोधन बिल की अस्वीकृति का ही परिणाम था कि नेटाल सरकार द्वारा यह प्रावधान किया गया कि एग्रीमेंट खत्म होने पर जो रहना चाहे उसे प्रति आदमी पच्चीस पौंड देने होंगे। कठिनाई बढ़ रही थी पर कई मामलों में गिरमिटियों के पक्ष में निर्णय भी हो रहे थे। दूसरी तरफ गांधी के खिलाफ माहौल भी बनाया जा रहा था कि वे गिरमिटियों को आंदोलन के लिए उकसा रहे हैं उनसे पैसे वसूल कर मौज-मजे कर रहे हैं। अखबारों में भारतीय समुदाय को एक उभरती हुई ताकत के रूप में स्वीकार किया जा रहा था। छह महीने बाद वे एक पैरवी के सिलसिले में भारत आए और इलाहाबाद होते हुए राजकोट पहुंचे। यह वह समय था जब राजकोट प्लेग की चपेट में था। राजकोट से वे भारत के अन्य जगहों पर गए। जगह-जगह भाषण दिए और नेटाल में कुलियों की दुर्दशा की बात बताई। कई संपादकों से मिले। फिर डरबन वापस हुए कस्तूरबा और बच्चों के साथ। इस बीच कस्तूरबा और गांधी में कई बार तकरार भी होती साफ-सफाई को लेकर। अंततः गांधी को भारत आना पड़ा। अनेक जगहों पर गए। उनके अभाव में कस्तूरबा को जो कष्ट झेलने पड़े उसकी अपनी अलग कहानी है। 'इंडियन ओपीनियन' के माध्यम से वे अपनी बात भारतीय समुदायों तक पहुंचाते थे। जोहांसबर्ग में रिहाइश की अलग समस्याएं थीं। कस्तूरबा की तबीयत भी कई बार बिगड़ी। गांधी उन्हें फीनिक्स आश्रम ले आए।

सत्याग्रह की राह

इस बीच ट्रांसवाल सरकार का हिंदुस्तानियों के खिलाफ लाया गया नया कानून आया जिसमें हर हिंदुस्तानी को जरायमपेशा समुदाय का सदस्य करार दिया गया था। इस कानून के विरोध में गांधी ने एंपायर थियेटर में एक सभा को संबोधित किया तथा कहा कि यदि यह कानून लागू हुआ तो यह सभी उपनिवेशों के लिए नजीर बन जाएगा और यह भारतीयों की नस्ल को खत्म कर देगा। यहीं से गांधी ने अपने संघर्ष को सत्याग्रह का नाम दिया। इसके चलते ट्रांसवाल संसद द्वारा पारित नामंजूर हो गया पर आगे का रास्ता और कठिन था। सत्याग्रहियों को जेलों

में डाला गया। गांधी भी जेल गए। एशियाटिक बिल के विरोध का रास्ता तय हो रहा था। ट्रांसवाल की जेलें भरती जा रही थी और सरकार की दिक्कतें भी। गांधी जेल में होते तो उसके सारे कायदों का पालन करते। जेल से बाहर आते तो फिर सत्याग्रहियों के साथ हो लेते। वे अपने ही अंदर के सवालों से जूझते जैसे कि स्वराज आखिर क्या है फिर खुद ही इसका उत्तर देते कि स्वराज्य मन और आत्मा का होता है, संकल्प का होता है। राष्ट्रीयता का सवाल भी उन्हें मथता। वे कहते, बाहर से आने वाले लोग राष्ट्रीयता को नहीं मिटाते वे राष्ट्र में घुल मिल जाते हैं। जब ऐसा होता है तब कोई देश राष्ट्रीय कहलाता है। एक राष्ट्र का अर्थ एक धर्म नहीं। इस तरह स्वराज का अर्थ सूझताः अपने मन पर अपना शासन। कैसे? सत्याग्रह, आत्मबल और दयाबल से। जिन व्यक्तियों ने जोहांसबर्ग की यात्रा की होगी वहां से थोड़ी दूर पर उन्होंने तॉल्स्तॉय फार्म जरूर देखा होगा। यह भी गांधी की कर्मभूमि रही है। कभी यहां हजारों दरख्त थे अब नहीं हैं। यह जमीन ग्यारह सौ एकड़ में फैली है। यह जमीन गांधीजी के मित्र हरमन कैलेनबैक ने गांधीजी के लिए खरीदा था। यह सत्याग्रहियों का एक सामुदायिक ठीहा जैसे था। यहां वे पढ़ाई के लिए स्कूल भी लगाते थे। यहीं दो लड़कियों के साथ एक छोटी सी घटना हुई तो गांधी का व्यवहार देखने लायक था। बच्चों को अनुशासित करने का गांधी का तरीका बहुत अलग होता था। एक लड़के ने जरा सा उन लड़कियों के बाल क्या छू लिए, गांधी ने दंड-स्वरूप लड़कियों के बाल कटवा दिए। वे जानते थे कि लड़कियां निर्दोष हैं पर बाल उन्हीं के काटे गए जिनके कारण लड़के के मन में पाप उपजा। समुदाय बहुल इलाका होने के बावजूद गांधी उन्हें मारने के हामी न थे। उनके दंड देने का तरीका बहुत जुदा था। एक लड़की द्वारा एक कम उम्र के लड़के के साथ व्यभिचार करने का मामला सामने आया तो उपवास ठानकर बैठ गए अंततः लड़की ने अपना अपराध कुबूल किया और गांधी ने तब अपना उपवास तोड़ा। गांधी के दक्षिण अफ्रीका रहते गोपाल कृष्ण गोखले वहां गए और तॉल्स्तॉय फार्म भी गए। उनके प्रयासों से एशियाटिक और इमिग्रेशन रेस्ट्रिक्शन कानून निरस्त किए जाने व पोल टैक्स वापसी के वायदे किए गए। वैवाहिक प्रमाणपत्र के बिना स्त्रियों को ब्याहता न मानने के कानून के खिलाफ सत्याग्रहियों का लंबा संघर्ष चला।

आजादी हर आदमी के अंदर

तॉल्स्तॉय फार्म और फीनिक्स आश्रम सत्याग्रहियों की गतिविधियों का अड्डा था। इस बीच गांधी और कस्तूरबा जेल गए पर भारतीय समुदायों में अपने अधिकारों को लेकर चेतना जागने लगी थी। एक बार एक लंबी पद यात्रा में गांधी डरबन से चार्ल्स टाउन पैदल लौट रहे थे तो एक गोरे के यह पूछने पर कि आप क्यों जा रहे हैं? वे बोले 'आजादी की तलाश में।' उसने फिर पूछा 'अगर न मिली तो?' गांधी बोले...'वह तो हर आदमी के अंदर होती है...उसे जगाना पड़ता है।' तमाम सत्याग्रहियों को जेल हुई। 'इंडियन ओपीनियन' भी बंद करने की कोशिशें हुईं। इधर गोखले को चिंता हुई। वे सोचते थे सरकार बर्बर हुई तो इन निहत्थे और बेसहारा लोगों का क्या होगा। गांधी के सारे साथी अनुयायी किसी न किसी जेल में थे। उन पर जुल्म भी होता था पर गांधी के नाम पर चुप रहते थे। भारत तक ये घटनाएं पहुंचती थीं। मजदूर वहां के कारखानों को छोड़कर सत्याग्रही बन गए। सारे विश्व में निहत्थे गिरमिटियों पर वहां की सरकार के जुल्म की भर्त्सना हो रही थी। कुछ मुद्दों पर

मोहनदास व जनरल स्मरस के बीच समझौता हुआ पर कुछ लिखत-पढ़त में नहीं। हालांकि बाद में इस बारे में गठित एक कमीशन ने भारतीयों के पक्ष में सिफारिशें की। माहौल गिरमिटियों के पक्ष में था। मोहनदास व कस्तूरबा की भारत वापसी की तारीख भी सुनिश्चित हो चुकी थी। एक लंबे संघर्ष का बेहतर नतीजा देकर गांधी केपटाउन से जहाज में बैठकर वापस लौट रहे थे, सबकी आँखें नम थीं। 21 साल बाद वे यहां से जा रहे थे। इंडियन ओपीनियन के संपादकीय का शीर्षक उन्होंने दिया थाः संघर्ष और परिणाम जिसकी शुरुआत कुरान की एक आयत से करते हुए कहा कि कितनी बार खुदा की मर्जी से छोटी-छोटी सेनाओं ने बड़ी-बड़ी सेनाओं को पराजित किया, 'वह' उन्हीं के साथ है जो धैर्यपूर्वक संघर्ष करते हैं।'

पहला गिरमिटिया के नायक के जीवन का यह पहला चरण है। यहां रहकर गांधी ने केवल अपनी स्थिति ही मजबूत नहीं की, गिरमिटियों के जीवन स्तर में सुधार लाने का यत्न ही नहीं किया बल्कि स्वाभिमान के साथ वहां मेहनत-मजदूरी करने के लिए भी एक न्यूनतम मानवीय स्थिति बहाल करने के लिए सत्याग्रह का रास्ता सुझाया। तीन घातक बिलों को निरस्त करने के लिए संगठित रास्ता अख्तियार कर अपने सत्याग्रह एवं शांतिपूर्ण रवैये से प्रिटोरियाई शासन को नरम रुख अख्तियार करने पर विवश किया। कितने साथी-संगी उनके साथ रहे। प्रेस को चलाने वाले लोग, तॉल्स्तॉय फार्म व फीनिक्स आदि को गुलजार करने वाले सत्याग्रहियों से गांधी ने वह बल अर्जित किया जिसका एक परिष्कृत प्रयोग उन्होंने भारत लौटकर किया।

उपन्यासकार गिरिराज किशोर ने पूरे उपन्यास में जैसे गांधी-मन को पढ़ लिया है 'देखत तुम ही तुम ही होइ जाई' वाले भाव से। उन्होंने गांधी के एक-एक पल के मनोविज्ञान को यहां निरूपित किया है। गांधी लंदन में रहते हुए डायरी लिखा करते थे जो क्रम यहां भी बना रहा। उनकी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' उनके अडिग व्यवहार और सदाचरण की राह पर चलने की जिद का रोजनामचा है। गिरिराजजी ने गांधी जीवन की अफ्रीका प्रवास की सारी घटनाओं को बारीकी से क्रमबद्धता में बांधते हुए उन्हें उपन्यास में पिरो दिया है। देखा जाए तो जीवनीपरक उपन्यासों में यदि बहुत डिटेल्स होते हैं तो उनका नैरेटिव एक किस्म की ऊब पैदा करता है किंतु गांधी के जीवन को विवेचित करते हुए घटना बहुलता को जिस रोचक आख्यान में गिरिराजजी ने उपन्यस्त किया है वह साधारण काम नहीं है। कुल 904 पृष्ठों की कृति आदि से अंत तक उत्सुकता जगाए रखती है। कहा जा सकता है जैसे *नानापुराणनिगमागमसम्मतंयद्* से तुलसी ने रामचरितमानस का प्रणयन किया, ठीक उसी तरह गांधी जीवन के तमाम प्रसंगों खास तौर पर दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए डरबन, जोहांसबर्ग, केपटाउन,नेटाल आदि में उनकी जो गतिविधियां रहीं उन्हें तमाम स्रोतों से छानकर जिस सहज किस्सागोई में उन्होंने पिरोया है वह उनकी गहन औपन्यासिक दृष्टि का परिचय देता है। उल्लेखनीय है कि जहां प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं थे, उन प्रसंगों में लेखकीय कल्पना से खूबसूरत अल्फाज में बांधा है कि पूरा का पूरा विन्यास प्रवाही गद्य का उदाहरण बन गया है। गांधी जीवन और दर्शन पर हजारों ग्रंथ, उपन्यास, काव्य, विवेचन, विश्लेषण एवं वृत्तांत लिखे गए हैं किंतु यह अकेला उपन्यास गांधी को समझने के लिए एक उल्लेखनीय कृति है। कितना अच्छा होता यदि गिरिराज किशोरजी भारत में गांधी के स्वातंत्र्य संघर्ष की दास्तान भी ऐसी ही ललित किस्सागोई में बयान करते। ●

गांधीजी : भारतीय साहित्यकारों के महागुरु और प्रेरणा-स्रोत

जी. गोपीनाथन

भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों के लिए गांधीजी पथ-प्रदर्शक और प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। मलयालम की राष्ट्रीय भावधारा के प्रमुख कवि वल्लत्तोल ने उन्हें अपना 'गुरुनाथ' घोषित किया था। 1924 में प्रकाशित अपनी प्रख्यात कविता 'एन्टे गुरुनाथन्' (मेरे गुरुनाथ) में वल्लत्तोल ने भारत की ऋषि-परंपरा से जोड़ते हुए गांधीजी को एक महागुरु के रूप में चित्रित किया है। इस कविता की कुछ पंक्तियों का अनुवाद यहां पर देना प्रासंगिक होगा-

'पूरी दुनिया ही जिसका खानदान है,
पृथ्वी के सारे पेड़-पौधे और तृण-कीटे
जिसके कुटुंब के अपने सदस्य हैं
त्याग जिसकी प्रमुख उपलब्धि है
समुन्नत होने की निशानी विनम्रता है
जो योग-विद्या के वेत्ता पुरुष हैं
ऐसे मेरे गुरुनाथ सर्वत्र विजयी हो रहे
गीता की जननी पुण्य भूमि ही
ऐसे कर्मयोगी को जन्म देगी, निश्चित
हिमाचल-विंध्याचल-मध्यप्रदेश में ही
शम-दम-शील ऐसे सिंह दीखेंगे
जिस देश में गंगा की धारा बहती हो
उसी देश में मंगलमूल ऐसे कल्पवृक्ष फलते हैं।'

वल्लत्तोल की परंपरा के ही वेण्णिक्कुलम गोपाल कुरुप ने गांधीजी द्वारा 'यंग इंडिया' में लिखित एक लेख से प्रेरित होकर तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का मलयालम में अनुवाद किया था। महाकवि जी. शंकर कुरुप ने भी गांधीजी और उन के अहिंसा सिद्धांत पर कई कविताएं लिखी थीं। प्रगतिशील और वामपंथी आंदोलन ने प्रारंभ में गांधी का राजनीतिक

कारणों से विरोध किया, लेकिन वर्तमान में अनेक वामपंथी कवि और साहित्यकार हैं जो गांधी के विचारों को उपयोगी और प्रासंगिक मानते हैं। एन.वी. कृष्णवारियर ने अपनी कविता 'गांधी और गोड़से' में गांधी को सर्वहारा का प्रतीक और गोड़से को शोषकों के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है-

'क्यू में चावल खरीदने
धक्का खाते हुए खड़ा है गांधी
बड़ी कार में बैठकर
पास से गुजर रहा है गोड़से।'
(मलयालम की नई कविताएं से)

भारतीय साहित्य में 'गांधीयुग' 1920 के बाद आया, ऐसा माना जाता है। तमिल के राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) की कविताओं में राष्ट्रीय भावना तो है लेकिन गांधीजी का प्रभाव उनके अंतिम समय के कुछ गीतों में ही दिखाई पड़ता है। नामक्कल रामलिंगम पिल्लै नामक कवि तो गांधीजी से सीधे प्रभावित थे, उनके गीत आजादी की लड़ाई में लोग गाते थे, नमक सत्याग्रह के दौरान लोग उनके जिस गीत को गाते थे, उसकी लोकप्रिय पंक्तियों का रूपांतर इस प्रकार है-

''लड़ाई यह हो रही, चलो, मिल चलें
हथियार कुछ भी नहीं, खून का बहाव नहीं, चलें
सत्य के भक्त साथी मिलकर हम आज चलें
चलो शीघ्र, आज मिलकर हम चलें, बढ़ें चलें।

तेलुगू भाषा के भी रायप्रोपु विश्वनाथ, तुम्मला सीताराम मूर्ति, गरिमेलल सत्यनारायण आदि ने गांधीजी और उनके सत्याग्रह आंदोलन और देशप्रेम से प्रेरित अनेक गीत लिखे थे। कन्नड़ के गोपाल कृष्ण अडिगा, गंगाधर चित्ताला, पी.जी. भट्ट, कुवेंपु, वी.के. गोकाक आदि कवियों ने गांधी-दर्शन से प्रभावित अनेक कविताएं और गीत लिखे। दक्षिण की सभी भाषाओं में गांधीजी के व्यक्तित्व और उनके आंदोलन से प्रेरित गीत और कविताओं की वेगवती धारा बह चली।

गांधी द्वारा 1918 में मद्रास में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना और पूरे दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार का आंदोलन शुरू करना एक ऐतिहासिक महत्व की घटना थी। हिंदी-प्रचार के कारण हिंदी साहित्य से दक्षिणवासी सीधे परिचित हुए। उन दिनों हिंदी प्रचार राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आंदोलन एवं देशभक्ति आंदोलन का अंग था। इस कारण से गांधीजी के सत्याग्रह-आंदोलन, अछूतों का उद्धार, देश-भक्तिपरक एवं पुराण से संबंधी विषयों पर हिंदी में जो काव्य लिखे गए, उनसे दक्षिण के हिंदी प्रेमी ज्यादा प्रभावित हुए। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सोहन लाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय 'बच्चन' आदि देश-प्रेमी कवियों की हिंदी कविताएं दक्षिण में ज्यादा लोकप्रिय हुईं। गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन से प्रभावित होने के कारण जयशंकर प्रसाद,

महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवि लोकप्रिय हुए। हिंदी के माध्यम से बांग्ला, मराठी, गुजराती, उड़िया आदि भाषाओं का साहित्य भी दक्षिण में ज्यादा लोकप्रिय हुआ। हिंदी प्रचार से लगे अनेक लोगों ने हिंदी के माध्यम से इन भाषाओं की रचनाओं का दक्षिण की भाषाओं में अनुवाद किया। इसके अलावा गांधीजी के साबरमती, सेवाग्राम आदि आश्रमों में हिंदी प्रचार आंदोलन में हिंदी, मराठी, गुजराती, बांग्ला, ओड़िया आदि भाषाओं के लोगों ने एक साथ भाग लिया और इस तरह भारतीय भाषाओं और साहित्य का संपर्क भी गांधीजी के कारण बढ़ गया। गांधीजी की आत्मकथा का सारी दक्षिणी भाषाओं में अनुवाद हुआ और उनके पूरे साहित्य को हिंदी में पढ़ने के लिए लोग दिलचस्पी लेने लगे। जिस तरह गांधीजी स्वयं गुजराती और हिंदी में लिखते थे, उसी तरह हिंदी, मराठी, गुजराती में लिखने वाले अनेक लेखक गांधीजी के प्रभाव और आंदोलनों के कारण से पैदा हुए जिन्होंने भारतीय साहित्य का स्वरूप बदला।

हिंदी के माध्यम से भारतीय कथा साहित्य का आदान-प्रदान गांधी युग में शुरू हुआ। बंकिमचंद्र और शरतचंद्र के कथा साहित्य का अनुवाद हिंदी के माध्यम से दक्षिण में खूब होता था। यहां तक कि टैगोर की रचनाओं का अनुवाद हिंदी के ही माध्यम से ज्यादा होता था। टैगोर ने गांधीजी पर 'गांधी महात्मा' जैसी जो कविताओं की रचना की वे ज्यादा लोकप्रिय बन गईं। गुरुदेव टैगोर और गांधीजी का संपर्क भी एक प्रेरक विषय था। गांधीजी राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जो काम कर रहे थे, वही काम प्रेमचंद अपने कथा साहित्य के माध्यम से कर रहे थे। प्रेमचंद के कथा साहित्य को हिंदी मूल में ही दक्षिण के लोग पढ़ने लगे। अनेक हिंदी-प्रचारकों ने दक्षिणी भाषाओं में प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यास का अनुवाद किया। प्रेमचंद ने गांधी-दर्शन का ही कथात्मक रूपांतरण किया था इसलिए प्रेमचंद के कथा साहित्य के माध्यम से भी गांधीवादी विचारधारा ज्यादा फैली। उदाहरण के लिए प्रेमचंद के सेवासदन का तमिल में जो अनुवाद हुआ था, उससे प्रेरित एक फिल्म बनी और दक्षिण के सामाजिक सुधार आंदोलन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। हिंदी प्रचार आंदोलन तथा प्रगतिशील आंदोलन, दोनों के कारण प्रेमचंद के कथा साहित्य की लोकप्रियता दक्षिण में बढ़ी। गांधीजी की विचारधारा का सीधे और प्रेमचंद के साहित्य के अनुवादों के माध्यम से दक्षिणी भाषाओं पर प्रभाव पड़ा। तकषि, केशव देव, उरूब आदि मलयालम कथाकार प्रेमचंद से प्रभावित हुए। प्रेमचंद की तरह इनके उपन्यासों में भी गांधीवाद और मार्क्सवाद का प्रभाव लक्षित है। तमिल के कल्कि नामक उपन्यासकार गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन, अहिंसा, ग्रामों का पुनर्निर्माण आदि से प्रभावित हुए। उनके 'पार्थिवन कनवु' (पार्थिव का सपना) नामक प्रख्यात उपन्यास में स्वतंत्रता आंदोलन का चित्रण है। 'अलै ओशा' नामक साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उनके उपन्यास पर भी यह प्रभाव स्पष्ट है। गांधीजी का प्रभाव राजाजी जैसे तमिल लेखकों पर बहुत ज्यादा था। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समुन्नत आदर्शों को जनता के सामने रखा था। राजाजी को लोग तमिल के गांधी भी कहते थे। शराब-बंदी, जाति की निरर्थकता, सादगी से युक्त जीवन, आदि पर बहुत प्रभावी कहानियां और निबंध राजाजी ने लिखे थे। तेलुगू के उणुवा लक्ष्मीनारायण, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि उपन्यासकार गांधीजी से प्रेरित कथाकार

थे। हरिजनों पर लिखा गया लक्ष्मीनारायण का 'मालहल्ली', तकषी का 'भंगी का बेटा' (तोट्टियुटे मक्कन) आदि गांधीजी के अस्पृश्यता निवारण और हरिजनों का उद्धार आंदोलन आदि से संबंधित हैं। कन्नड़ के रामास्वामी अय्यंगार, इनामदार, बडगेरी कृष्ण शर्मा, शिवराम कारंत आदि उपन्यासकारों ने भी स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित कथा साहित्य की रचना की थी। उड़िया के कालिंदी चरण पाणिग्रही, हरेकृष्ण महताब आदि उपन्यासकारों ने जो सामाजिक उपन्यास लिखे, उन पर गांधी का प्रभाव स्पष्ट है। मराठी के मंगेश पद्‌गांवकर, साने गुरुजी आदि भी गांधीवादी धारा से प्रत्यक्ष जुड़े थे। गुजराती के रमणलाल देसाई, जावेर चंद मेधानी, धूमकेतु आदि गांधी से सीधे प्रभावित कथाकारों की रचनाएं हिंदी के माध्यम से दक्षिण में प्रचलित हुईं। ललितांपबिका अंतर्जनं का 'अग्निसाक्षी' गांधीजी के सेवाग्राम आश्रम की पृष्ठभूमि पर लिखा गया नारीवादी उपन्यास है। आचार्य काका कालेलकर और विनोवा भावे की रचनाएं भी दक्षिण में स्वतंत्रता आंदोलन, भूदान आंदोलन, आदि के कारण खूब अनूदित और प्रचलित हुईं।

गांधीजी की आत्मकथा से प्रेरित होकर भारत के अनेक साहित्यकारों और राजनेताओं ने आत्मकथाएं लिखी थीं। के.पी. केशव मेनोन, ई.एम.एस. नंबूदिरीपाद, राजेंद्र प्रसाद आदि अनेक लेखकों की आत्मकथाओं पर गांधीजी के ईमानदार और सादगी से युक्त लेखन का प्रभाव है। डायरी, पत्रकारिता, यात्रा-वर्णन आदि नई साहित्यिक शाखाओं पर गांधीजी का जबर्दस्त प्रभाव है। गांधीजी ने डायरी लिखने पर जोर दिया, इसलिए गांधी के शिष्यों और अनुयायियों ने भारतीय भाषाओं में डायरी साहित्य लिखा। जयप्रकाश नारायण की जेल डायरी इसी प्रभाव का एक सुपरिणाम है। पत्रकारिता को सामाजिक शिक्षा और जन-जागरण का औजार बनाने में गांधीजी ने बहुत ऊंचा आदर्श स्थापित किया था, जिससे दक्षिण की 'मातृभूमि', 'कल्की', 'ईनाडु' जैसे अनेक पत्र और पत्रकार प्रभावित हुए। गांधीजी का यह प्रभाव और प्रेरणा आज भी प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप से सारे भारत के साहित्य पर मौजूद है। आधुनिक भारतीय साहित्य को सोद्देश्यक बनाने में और सामाजिक परिवर्तन का औजार-बनाने में गांधीजी की भूमिका बहुत बड़ी है। उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, पूरब सर्वत्र यह प्रभाव परिलक्षित है। आज भी भारतीय साहित्यकारों को उनका व्यक्तित्व, जीवन और कार्य अत्यंत प्रासंगिक लगते हैं। हिंसा से उत्पीड़ित आज की दुनिया में साहित्यकार उनके अहिंसा सिद्धांत और हिंसक प्रतिरोध से प्रेरणा लें तो आश्चर्य की बात नहीं। हर दृष्टि से देखा जाए तो गांधी को भारतीय साहित्यकारों के महागुरु कह सकते हैं।

●

✶ लेखक प्रख्यात भाषा-विज्ञानी एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति हैं।

गांधीवाद : सुब्रह्मण्य भारती एवं रामलिंगम पिल्लै के विशेष संदर्भ

एन. लक्ष्मी अय्यर

भाषा के माध्यम से ही भावनाओं का संप्रेषण होता है, भारत जैसे बहुभाषी समुदाय में जितने भी वैज्ञानिक विकास होने पर भी व्यक्ति के संस्कार, व्यक्तित्व, स्वभाव, आचार, व्यवहार उसके परिवार, परिवेश ,उसकी भाषा पर ही निर्भर होता है। भगवान् द्वारा प्रदत्त मधुर सशक्त वरदान वाणी है। हम सभी उत्तर आधुनिक विकास या वेब दुनिया में चाहे जितना विचरण करें लेकिन मां-बाप, भाई, बहन, पत्नी, सहपाठी, मित्र सहयोगी आदि से रागात्मक संबंध होते हुए भी भाषा के संप्रेषण से ही काम चला सकते हैं। इन सभी को 'अल्फा, बीटा, गामा, साइन थीटा, कास थीटा' के नाम से बुला नहीं सकते। आज के कुछ अकादमिक विद्वान विज्ञान के चक्कर में पड़कर सांस्कृतिक भंडार में निक्षिप्त दर्शन, राष्ट्रीय भावना, शांति, अहिंसा, भक्ति, भाषा, साहित्य की अवहेलना कर अधिकार का दुरुपयोग करते हुए, संकुचित मनोभाव से, भारतीय भाषाओं एवं विराट भारतीय प्राचीन संस्कृति का अपमान करते हुए पैशाचिक आनंद ले रहे हैं। जितना अधिक भारतीय साहित्य पढ़ा और पढ़ाया जाएगा उतना मानसिक उदारता बढ़ेगी, वसुधैव कुटुंबकम की स्थापना होगी जिससे विश्व बंधुत्व की कामना बढ़ेगी। जब तक समस्त भारतीय भाषाओं की एकता नहीं होगी तब तक राष्ट्रीय एकता संभव नहीं। उत्तर आधुनिकता से पूर्ण आजकल की वेब दुनिया में लोगों के बीच उदारता के स्थान पर संकीर्णताएं, देशी खाने के स्थान पर विदेशी फास्ट फूड, संयुक्त परिवार के स्थान पर संकीर्ण परिवार, नारी सम्मान के भाव की जगह अत्याचार घर कर चुका है। दिशाहीन भारतीय जनता विदेशी व्यामोह में फेसबुक, मोबाइल के मोह में पड़कर एक अलग दुनिया में वसुधैव कुटुंबम की संस्कृति को भूलकर जी रहे हैं। एक दूसरे से मिलना, साहित्यिक रचनाएं पढ़ना, वीर महापुरुषों की जीवनियों को जानना आदि आवश्यक तत्वों को भूलकर जी रहे हैं। वैज्ञानिक साधनों की उपस्थिति ने विद्यार्थियों और उनके लेखन कार्य को बिलकुल समाप्त कर दिया है।

महात्मा गांधी ने मां के तीन वचनों का पालन करते हुए लंदन में शिक्षा प्राप्त की। गांधीजी लंदन की संस्कृति से खासे प्रभावित हुए और यहीं से उनको जीवन का दर्शन मिला।

यही वजह थी कि उनके व्यक्तित्व और सत्याग्रह, अहिंसा, सत्यव्रती होने का प्रभाव समस्त भारतवर्ष के नागरिकों पर पड़ रहा था और दक्षिण भारत भी इससे अछूता न रहा। समाज ने स्वीकार किया कि अहिंसा के पुजारी गांधीजी का प्रभाव समस्त कारण प्रत्येक प्रदेश में गांधीवाद फैला। तमिलनाडु के साहित्यकारों और देश की समस्त प्रजा ने उस गांधीवाद को अपना आदर्श मानकर स्वतंत्रता संग्राम में जोश से भाग लिया।

भारतीय भाषाओं में साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत प्राचीन व समृद्ध भाषा तमिल के आधुनिक साहित्यकारों में खासकर गीतकारों में भारत के राष्ट्रीय कवि, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के सशक्त कवि, नारी मुक्ति के प्रथम उद्घोषक, रहस्यवादी कवि, क्रांतिकारी कवि सुब्रह्मण्य भारती पर गांधी जी के विचारों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। गांधीवादी भावनाओं से परिपूर्ण कवि सुब्रह्मण्य भारती का स्थान अत्यंत प्रमुख व सर्वोपरि है। झांसी रानी के पूर्व दक्षिण के जोनाफोर्क के नाम से प्रसिद्ध रानी वेलु नाच्चियार ने मातृभूमि के लिए अंग्रेजों से लड़कर वीरगति प्राप्त किया था। उसी श्रृंखला में तमिल के अन्य देशभक्त हैं नामकक्ल रामलिंगम पिल्लै, कोडी कात्त तिरूप्पुर कुमॅरन (जान त्यागकर झंडा बचाने वाले कुमॅरन), व. वे. सु. अय्यर (साहित्यकार व देशभक्त), व. उ. चिदांबरम् पिल्लै, (20 साल अंग्रेजों के राज में कारावास की सजा काटने वाले) सुब्रह्मण्य शिवा, राष्ट्र-प्रेमी कप्प्लोट्टिय तमिषन, दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी की प्रेरणा से भारत के तमिलनाडु के आंदोलनकारी वल्लियम्मै आदि।

दक्षिण भारत के संस्कारों, रीति-रिवाजों से पूर्ण, कट्टर ब्राह्मण-संप्रदायवादी अय्यर परिवार में जन्म लेकर भी भारती ने धर्म, जातिगत भेदभावों को अमान्य मानकर अपने समाज में छुआछूतोद्धार, नारी स्वातंत्र्य, दलितोद्धार के लिए मानवीय संवेदनाओं को अपनी लेखनी में भरकर, अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करते हुए समाजोद्धार के लिए गांधीवाद के सिद्धांतों को आवश्यक माना था। भारती ने अपने समाज में जहां वर्णाश्रम धर्म प्रबल था वहां दलित बालकों का उपनयन संस्कार कराकर गायत्री मंत्रोपदेश करके ब्राह्मण समाज के खिलाफ आवाज उठाई जबकि ब्राह्मण समाज ने उन्हें समाज से निष्कासित करके रखा था। भारती इन सबकी परवाह न करने वाले क्रांतिकारी कवि भी हैं। गांधीजी के नाम पर, तिलक, लाला लाजपत राय पर कविताएं स्तुतियों के रूप में लिखकर जनता के दिल में देशभक्ति को जागृत कर वे देश की आजादी की लड़ाई में स्वयं अंग्रेजों की यातनाओं के शिकार हुए।

सुब्रह्मण्य भारती का जन्म तिरुनेलवेली जिले के एट्टयपुरम में 11 दिसंबर 1882 को हुआ। बचपन में मातृप्रेम से वंचित भारती का लालन उनका पालन नाना के यहां हुआ, जिनके तमिल काव्य सौंदर्य के प्रति प्रेम से प्रभावित भारती को तमिल साहित्य पर लगाव सहज सिद्ध प्राप्त हुआ। 11वें साल में उनकी प्रतिभा व विद्वत्ता के कारण उनको 'भारती' (सरस्वती) की उपाधि मिली थी। सुब्रह्मण्य भारती ने अपनी किशोरावस्था में उत्तर भारत का भ्रमण करके वाराणसी में हिंदी, संस्कृत, बांग्ला आदि भाषाओं के प्रति आकर्षित होकर अध्ययन किया था। वे एनी. बेसेंट महात्मा गांधी और अंग्रेजी विद्वान कीट्स, शैली से काफी प्रभावित हुए। भारती की रचनाओं के अंतर्गत उनके समग्र गीत, उपन्यास, गद्य साहित्य आदि आते हैं। भारती ने

श्रीमद्भगवद्गीता का, उपनिषदों का तमिल में अनुवाद किया था। इसके अलावा उन्होंने ऋग्वेद के कुछ अंशों का, पतंजलि के योगसूत्र, कठोपनिषद् और कुछ वैदिक मंत्रों का भी अनुवाद किया। 'पांचाली शपथम' नामक काव्य-संग्रह भारती की अत्यंत अद्भुत रचना है, जो भारतीय संस्कृति का प्रतीक है जिसमें द्रौपदी पात्र के माध्यम से भारतीय नारी की पौरुषपूर्ण वाणी व सत्य के लिए लड़ने वाली नारी के संघर्ष को दर्शाया गया है। उनके द्वारा चित्रित द्रौपदी पराधीन भारत मां की प्रतीक है। पांडव मजबूरी के कारण मां भारती की रक्षा न करके निःसहाय स्थिति में थे। सुब्रह्मण्य भारती पराशक्ति दुर्गा मैया और कार्तिकेय (तमिल में मुरुगन) श्रीकृष्ण के परम भक्त थे।

भारतीय संस्कृति के महान् संदेश, शत्रु को भी क्षमा कर देने की क्षमता' को भारती ने अपनाया, जिसे गांधीजी ने भी माना था। यही कारण है कि गांधी के समकालीन कवि भारती ने गांधीजी को एक महान देवता के रूप में देखकर उनकी स्तुति की। सत्याग्रह व अहिंसा के सारे सिद्धांत भारती की उपदेशात्मक कविताओं में दिखते हैं। अपने गालों पर तमाचे मारने वाले शत्रु के सामने दूसरा गाल कर देने का संदेश देने वाले बापू की तरह भारती का कहना है कि 'पगैवनुक्कुरुल्वाय, नन्नेंजे' अर्थात शत्रु पर भी प्रेम बरसाओ क्योंकि उसके दिल में भी उसी परमात्मा का वास है, जिसका हमारे दिल में है। 'ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, प्यार से दो।' स्त्री शोषण के खिलाफ उन दिनों में अपनी सफल शक्तिशाली लेखनी से समर करके स्त्री स्वतंत्रता को तमिलनाडु में लाने वाले प्रथम साहित्यकार भारती ही हैं। भारती के पेण् विडुदलै, पुदुमैप्पेण (नव्य नारी) नारी विकास के प्रोत्साहन के मूल मंत्र हैं। भारती के प्रमुख गीत 'एंगलताय हमारी मां' भारत देश का प्रशस्तिगान है जिसमें कवि भारती मां का वर्णन करते हुए कहते हैं- 'तीस करोड़ मुखवाली मेरी मां प्राणों से एक ही है, 18 भाषाएं बोलने वाली मेरी माँ का विचार तो एक ही है।'

भारती की प्रत्येक रचना में गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। हिंदी भाषा के विरुद्ध आंदोलन जिस राज्य (तमिलनाडु) में शुरू हुआ, उसी में जन्म लेकर हिंदी, संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता बने सुब्रह्मण्य भारती ने कभी भी, किसी भी भाषा का विरोध तक नहीं किया। भारती ने विश्व एकता की कामना की है। इनके अलावा उनकी रचनाओं में अफगानिस्तान, चीन, मिस्र, तुर्की, अमेरिका, इंग्लैंड, आदि देशों के प्रति भी सद्भावना दिखाई देती है जो भारतीय समन्वय साधना का प्रतीक है, गांधीजी अपने गीत रघुपति राघव राजाराम में कहते हैं-

'भजु मन प्यारे राम रहीम

भजु मन प्यारे कृष्ण करीम कहकर हिंदू मुस्लिम एकता की ओर इंगित किया तो भारती ने भी अल्लाह के प्रति, ईसा-मसीह के प्रति भक्ति गीत लिखकर धार्मिक एकता को व्यक्त किया, भारती कहते हैं-

पल्लायिरम पल्लायिरम कोडी कोडी अंडंगल
एल्ला दिसैलुमो एल्लैयिल्ला वेळी वानिले।

(कई सहस्र सकल ब्रम्हांड, असीम गगन में, सर्वव्यापी अल्लाह)

अपने गीत 'भारत समुदायम' में भारती ने गांधीजी के समस्त विचारों को मूर्तिमान रूप देकर यह सिद्ध किया कि वे गांधी के परम भक्त हैं। उन्होंने छुआछूतोद्धार, वसुधैव कुटुंबकम, सत्याग्रह, अहिंसा आदि भावनाओं को व्यक्त किया था। भारती की दृष्टि मे सारी दुनिया एक परिवार है, जिसमें रहने वाले सारे मानव सहोदर हैं, गीत इस प्रकार है...

एल्लोरुम ओर कुलम, एल्लोरुम ओर इनम। एल्लोरुम इंदीया मक्कल॥

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के गीत 'वंदे मातरम्' का अनुवाद भारती ने किया, भारती का प्रसिद्ध गीत विडूदलै' में कवि ने गांधी के सपनों के भारत को साकार रूप दिया- *परैयारुकक्म इंगु तीय पुलवरुकक्म विडूदलै।*

पंचकम के नाम से भगवान् की स्तुति साधारणतः की जाती है, जबकि भारती ने 'महात्मा पंचकम' के नाम से गांधी की स्तुति की और गुणगान किया था। इनके अलावा गुरु गोविंद सिंह, दादा भाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बाबू चिदंबरम अय्यर आदि ने देश के समस्त देशभक्तों की स्तुति गीतों के माध्यम से करके, अपने समर्पण भाव को प्रकट किया था। महागांधी पंचकम में भारती कहते हैं- 'हे महान! तुम्हारी जय हो, संसार के देशों में से गरीबी से पूर्ण शोषित देशों को आपने पहचाना, हीन परिस्थितियों में घिरे हुए, पराधीन चक्रों के बीच कुचले भारत को, यहां के लोगों के उद्धार के लिए ही आप आए। लोगों को सत्याग्रह मंत्र से जिलाया, आपकी जय हो! गुलामी व्यवस्था से जकड़ी हुई दक्षिण अफ्रीका व भारत को आजादी, प्रदान करके शिक्षा संस्कार, ज्ञान का नेतृत्व किया। शत्रुओं के षडयंत्र को चूर-चूर करके अहिंसा सिद्धांत से विख्यात हुए भारत के यशस्वी महात्मा तुम्हारी जय हो।' भारती के शब्दों में-

वाषक नी एम्माण इंद, वैयत्तु नाट्टीलेल्लाम
ताशवुट्टू वरुमैमिजी, विडूदलै तवरीकेट्टू
पाष्पट्र निणर तामोर, महात्मा! नी वाशक, वाशक!

अपने कविता संग्रह 'देशीय तलैवरगल' (देश के नेतागण) में भारती ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन देशभक्तों को भारती ने पहले स्थान दिया और उनके संवेदना भरे गीतों में गांधीवाद व अहिंसावाद यत्र-तत्र मिलते हैं। गांधी की स्तुति करते हुए पंचकम गीत में भारती कहते हैं- 'हे बापू! सबके प्राण अपना प्राण सोचकर, सारे जीवों में उस परम पुरुष भगवान का स्वरूप समझकर आपने दीनों की, रोगियों की सेवा निःस्वार्थ मन से की हत्या, युद्ध के खिलाफ सत्याग्रह कर समता को व्याप्त किया। हे गांधी तुम महान हो, तुम्हारी जय हो, युद्ध से होने वाली भीषणता को पहचान कर, सत्य अहिंसा, शाकाहार से पूर्ण देवत्व सिद्धांतों से भारत के उज्ज्वल भविष्य को ध्यान में रखते हुए, शत्रुता को भुलाने के लिए सत्याग्रह मंत्र देकर देश को शांतिमय संदेश दिया। समाज में भारती ने छुआछूतोद्धार, हरिजनों का मंदिर प्रवेश, नारी का समानाधिकार, स्त्री शिक्षा आदि पर जिन तथ्यों को, अभिव्यक्तियों को पेश किया, अपनी उम्मीदों को उनके समर्थन में प्रस्तुत किया, उन गीतों में स्वतः गांधीजी के विचार प्राप्त हो जाते हैं।

राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती के गीतों से अधिक प्रेरित हुए एक और तमिल कवि थे रामलिंग कविरायर भारत के स्वतंत्रता समर में भाग लिए उन अनगिनत देश-भक्तों में भारत के राष्ट्रकवि कहलाने योग्य, गांधी के परम भक्त नामकक्ल रामलिंगम् पिल्लै अपनी कविताओं के कारण ही तमिलनाडु के जनमानस सिंहासन पर नामकक्ल कविराय के नाम से विख्यात हुए। 'कत्तियिण्रि रत्नमिण्रि युद्ध मोण्रू वरुगुदु' (बिना तलवार, बिना लहू एक युद्ध आ रहा-अहिंसा का युद्ध) इन पंक्तियों की जानकारी के बिना कोई तमिल जनता शायद ही हो सकती है।

मां भारती के सपूत वी. रामलिंगम् पिल्लै का जन्म तमिलनाडु के सेलम् के जिले के मोहन्नूर गांव में 19 अक्टूबर सन् 1888 में हुआ था। बाल गंगाधर तिलक और अरविंद के सिद्धांतों से प्रभावित होकर व राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े। वंदे मातरम् गीत उनका बचपन से ही प्रेरणा गीत रहा। प्रारंभ में उनकी विचारधारा क्रांति से पूर्ण थी लेकिन गांधीजी के सत्याग्रह से प्रभावित होकर वे अहिंसा के पुजारी बन गए। रामलिंगम् पिल्लै ने राष्ट्रप्रेम संबंधी लगभग सौ कविताएं नाट्टुकुम्मि के नाम से लिखा था। कुम्मि पाट्टु तमिलनाडु के लोकगीतों के अंतर्गत है जिनमें लड़कियां अपने को अच्छी तरह सजाकर तालियां बजाती हुई वर्तुलाकार में जयगान करती हैं। गांधीजी के आदर्शवाद, सामाजिक चिंतन, नैतिक मूल्यों की स्थापना, त्याग और बलिदान के धरातल पर स्वातंत्र्य समर, अहिंसा और सत्याग्रह की आवश्यकता, नारियों पर विशेषकर विधवाओं पर हिंदू समाज में होने वाले शारीरिक, मानसिक शोषण के खिलाफ आपकी कविताएं आवाज देती हैं।

कवि सुब्रह्मण्य भारती का सिद्धांत पेण विडूदले (नारी मुक्ति) का विशेष प्रभाव इन पर पड़ा। नारी विकास, जन-शिक्षा, गरीबी का निर्मूलन, छुआछूतोद्धार, धर्म के नाम पर होने वाले अर्थहीन, ढ़ोंगीपन का खंडन, विधवा पुनर्विवाह का प्रोत्साहन, बाल विवाह का खंडन आदि पर उन्होंने निर्भीकता से कविताएं लिखीं। उनकी विद्वता और अहिंसा से पूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर तमिल जनता ने उन्हें श्रद्धा और भक्ति से नामकक्ल कविरायर (नामकक्ल के कविराज) के नाम से विभूषित किया था।

तमिलनाडु में अंग्रेजों के खिलाफ होने वाले सत्याग्रह से पूर्ण युद्ध का वर्णन उन्होंने अपने गीत कत्तिरियण्रि रत्नमिण्रि गीत में लिखा। इस गीत ने सारे तमिलनाडु को झकझोरकर रख दिया था। गीत का सार इस प्रकार है- इसकी एक उक्ति गांधीवाद पर जन प्रचलित है- कत्थियिनरी रत्तामिनरी युद्धामोंरू वरुगुदु-बिना तलवार, बिना खून एक युद्ध आने वाला है जो सत्य की शाश्वतता का बोध कराता हुआ करने वाला युद्ध है, जो सत्यवर्ती हैं, वे सारे इसमें शामिल हो जाएं। यह अहिंसा का नया युद्ध है। इसमें न तो घोड़े होंगे, न हाथी, न मारने की इच्छा, न कोई शत्रु, समता, शांति से पूर्ण यह अहिंसा युद्ध, बापूजी के नेतृत्व में आया मातृभाषा के प्रति विशेष लगाव रखने वाले कवि कहीं न कहीं उसमें गांधीवाद और आजादी की विशेष तड़प प्रकट करते हैं।

रामलिंगम् पिल्लै तमिल-वासियों के दिल में गांधीवाद को इस प्रकार भरते हुए गीत लिखते हैं तमिशन एन्रोरु इनमुंडू, तनिए अवरुक्कोरू गुनमुंडू... तमिल नामक एक समुदाय है, उनके कुछ

विशिष्ट गुण भी होते हैं। वे अमृत जैसी भाषा से प्यार के रास्ते पर चलते हैं। आगे वे लिखते हैं युद्ध को मिटाने गांधी नामक एक शांत मुनि बुला रहे हैं। तिरुक्कुरल के कवि तिरुवल्लुवर एवं तमिल के दार्शनिक वल्ललार के रास्ते को अपनाकर गांधीवाद को मान लीजिए। गांधी की महिमा को पहचान कर सगर्व सत्याग्रह में शांति से शामिल हो जाइए। उनकी प्रत्येक रचना में गांधी शब्द मिलेगा। वे गांधी को एक देवता मूर्ति, शांतिदूत, मार्गदर्शक, अहिंसा का पुजारी, दिग्दर्शक, उन्नायक, समाज सुधारक आदि कई रूपों में मानते थे। वे उस जमाने की कांग्रेस पार्टी के सफल नेता रहे। तिरुचिरापल्ली जिले के कांग्रेस के सचिव और करूर प्रांत के कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने बहुभूमिकाएं निभाई। उन्होंने अपनी देशभक्ति से भरी आकर्षक वाणी से कई भारतीय युवकों को अपनी ओर खींचकर देशभक्त बनाया। ब्रिटिश शासन के खिलाफ सभाओं में अहिंसात्मक व्याख्यान देते थे। सन् 1932 में नमक सत्याग्रह आंदोलन में सक्रिय रूप में भाग लेने के कारण उन्हें दो साल कारावास की सजा भी भोगनी पड़ी। वे राजसभा पंडित, पद्म विभूषण आदि उपाधियों से अलंकृत अहिंसा के नेता थे। तमिल भाषा पर, सुब्रह्मण्य भारती पर, महात्मा गांधी पर, स्वातंत्र्य पर, नारी-मुक्ति पर उनकी कई कविताएं विख्यात हैं। प्रकृति के प्रत्येक कण में उस अलौकिक परमात्मा का दिव्य दर्शन पाने वाले कवि की कविताओं में प्रसिद्ध कविताएं निम्नलिखित हैं- सोलवदर्क्कु मुडियाद शक्ति (अकथनीय शक्ति) सूरियन वरुवदु यारालेः (सूर्य किसके कारण उदित होता), पराशक्ति (दुर्गा मैया), कण्णन (कृष्ण), वरुवाय्मुरुगा (आ जा कार्तिकेय) आदि।

वडनाट्टिल कोडुमैं (उत्तर भारत में हिंसा) में उत्तर भारत में जनता अंग्रेजों से कैसे त्रस्त थीः इस तथ्य का विस्तार से उन्होंने वर्णन किया। नारी मुक्ति संबंधी कई गीत इनके गीत संग्रह में प्राप्त हैं। गांधीजी के प्रति प्रेम, श्रद्धा, समर्पण भाव आदि उनके उनके गीतों में देखने को मिलते हैं। आज उनका निवास स्थान देश-भक्ति को प्रदर्शित करने वाले स्मारक के रूप में जाना जाता है। तमिलनाडु की राज्य सरकार ने चेन्नै स्थित सचिवालय भवन इनके नाम पर बनवाया है।

इस प्रकार गांधीवाद से प्रभावित होकर अपना तन, मन, धन गांधीवाद पर समर्पित करके, नारी मुक्ति हेतु अनेक गीत लिखने वाले तमिलनाडु नामक्कलं कविरायर का नाम देश के स्वातंत्र्य समर इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। उसी श्रृंखला में तमिल के अन्य देशभक्त हैं जो महात्मा गांधी के परम भक्त थे- कोड़ी कात्त तिरूप्पुर कुमॅरन, वा. वे. सु. अय्यर, व. उ. चिदांबरम पिल्लै, सुब्रह्मण्य शिवा, राष्ट्रप्रेमी कप्प्लोट्टिय तमिषन, दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी की प्रेरणा से भारत के तमिलनाडु के आंदोलनकारी वल्लियंम्मै आदि। विषय विस्तार के कारण इस लेख में मात्र दो कवियों की चर्चा ही की गयी है। इस प्रकार तमिलनाडु के असंख्य देशभक्तों ने गांधीजी के सत्याग्रह को अपनाया और गांधीवाद से प्रेरित हुए।

●

गांधी चिंतन : भाषा, संस्कृति एवं साहित्य

श्रद्धानंद

भाषा न केवल भावों एवं विचारों की संवाहिका होती है, बल्कि देश एवं संस्कृति की पहचान होती है। किसी भी देश के लिए तीन बातें आवश्यक हैं जिनमें राष्ट्र की पहचान एवं गौरव की भावना निहित होती है। वह है- भाषा, ध्वज एवं मुद्रा। ध्वज देश की भौगोलिक एवं राजनीतिक अस्मिता की पहचान कराता है, सिक्का देश की अर्थव्यवस्था को एकरूप करता है तथा भाषा देश के उदात्त भावों एवं वैचारिकी के साथ संस्कृति की सोंधी गंध को अभिव्यक्ति करती है। देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है, परंपराओं से होती है, स्थापित मूल्यों के मानदंडों से होती है। संस्कृति तथा मूल्यों को भाषा अपने में पिरोती है। भाषा एवं संस्कृति एक दूसरे से सहबद्ध होती है। किसी भी देश की जानकारी करनी हो तो उस देश की भाषा में निहित गंध से प्राप्त कर सकते हैं। उसकी गंध में देश की उदात्त परंपराएं जीवंत होती हैं, जिसमें देश के स्वत्व का प्रकाशन होता है। 'स्व' के बिना देश की भाषा गूंगी तथा संस्कृति सिरविहीन समाज की तरह होगी इसीलिए देश की भाषा एवं संस्कृति 'निजत्व' की पहल करती है। 'पर' की निर्भरता भाषा एवं संस्कृति दोनों के लिए घातक है। आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबन आवश्यक है। 'पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं' की समझ को महात्मा गांधी ने तन-मन-धन के स्तर पर भलीभांति समझा था। अंग्रेजी भाषा में पढ़े-लिखे गुजराती भाषी महात्मा गांधी ने पराधीनता के दुःख के मर्म को बखूबी समझा था। अफ्रीका में इसकी यातना को हृदयंगम किया था इसीलिए उन्होंने भारत की आजादी के लिए सुख-सुविधाओं को त्यागकर कमर कसा। देश की उदात्त तथा 'वसुधैव कुटुंबकम्' के मान मूल्यों को आजादी को अस्त्र बनाया। उन्होंने देश की ऋषि-परंपरा से प्राप्त सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि को गुलामी की जंजीर को काटने का अमोघ अस्त्र बनाया।

महात्मा गांधी एक और विशेष ऐसे नायक हैं जिन्होंने देश के एक-एक कण को, एक-एक रग को तथा एक-एक जन के दुःख-दर्द का आस्वादन किया। यही आस्वादन उन्हें 'महात्मा' तथा 'महामानव' बनाता है। महात्मा गांधी देश की समग्र आजादी के लिए कटिबद्ध थे। उन्होंने आजादी के लिए जन-आह्वान किया। जन-आह्वान की भाषा के लिए संपूर्ण हिंद की भाषा हिंदी को चुना। वे भली-भांति जानते थे कि हिंदी संपूर्ण हिंद को एक सूत्र में बांधने की ताकत रखती

है। हिंदी संपूर्ण जनमानस की आकांक्षाओं को अपने में समेटती है। देश की सामाजिक संस्कृति को जीवंतता प्रदान करने की ताकत देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं की अपेक्षा हिंदी में सर्वाधिक है। हिंदी में कार्यात्मक एवं भावात्मक शक्ति का उत्कर्ष है। राष्ट्र की वाणी बनने की संपूर्ण सामर्थ्य हिंदी में ही है। कई भाषाओं एवं बोलियों वाले देश भारत में आजादी की लड़ाई में सर्वाधिक जन-व्याख्यान हिंदी में दिए। हिंदी की तरफदारी में उन्होंने यहां तक कहा कि 'दुनिया से कह दो गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।'[1]

महात्मा गांधी ने समस्त देशवासियों को हिंदी का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेने का महत्वपूर्ण एवं दूरदर्शी सुझाव दिया था। अफ्रीका से लौटने के पश्चात् उन्होंने 'हिंद स्वराज' में लिखा- 'हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्सियन का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए।'[2] अंग्रेजी शासन में अंग्रेजी के महत्व को नकारते हुए हिंदी को प्रतिष्ठित ही नहीं करना, बल्कि राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा दिलाना गांधीजी जैसे व्यक्ति की निर्भीकता द्वारा ही संभव था।

गांधीजी ने उद्घोष किया था कि-'अपनी भाषा के बिना कोई भी राज्य गूंगा है।'[3] इसीलिए वे हिंदी में राष्ट्रभाषा की शक्ति देख रहे थे। 1914 ई. में उन्होंने भड़ौच की 'गुजरात' शिक्षा परिषद' के दूसरे महाधिवेशन में राष्ट्रभाषा के पांच लक्षणों का उल्लेख इस प्रकार किया था[4]-

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।

2. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।

3. यह बहुत जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।

4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।

5. इस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्प स्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

उनका दावा है कि अंग्रेजी या देश की अन्य भाषा-बोली इस कसौटी पर खरी उतर नहीं सकती। कसौटी पर कोई भाषा खरी उतर सकती है तो मात्र हिंदी। 'ये पांच लक्षण धारण करने में हिंदी की होड़ करने वाली दूसरी कोई भाषा नहीं है और राष्ट्रीय भाषा के नाते हिंदी का निर्माण हो चुका है।'[5]

माता के सदृश हिंदी को प्रतिष्ठित करने में गांधी का कोई मुकाबला नहीं है। 1918 ई. में गांधीजी का इंदौर के साहित्य-सम्मेलन के आठवें महाधिवेशन में दिया गया भाषण इसका प्रमाण है- 'भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह लोगों में नहीं है। शिक्षित वर्ण अंग्रेजी के मोह में फंस गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषा से उसे असंतोष हो गया है। पहली माता से (अर्थात् अंग्रेजी से) जो दूध मिलता है उसमें जहर और पानी मिला हुआ है और दूसरी माता से (अर्थात् हिंदी से) शुद्ध दूध मिलता है। बिना इस शुद्ध के हमारी उन्नति होनी असंभव है, पर जो अंधा है, वह देख नहीं सकता और गुलाम नहीं जानता कि

अपनी बेड़ियां किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं। हमारी प्रज्ञा अज्ञान में डूबी रही है।... हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रांतीय सभाओं आदि में अंग्रेजी व्यवहार बिलकुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे तो अंग्रेजी भी सर्वव्यापक न रहेगी। अब हमें अपनी मातृभाषा को नष्ट करके उसका खून नहीं करना चाहिए। आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें।'[6]

वे हिंदी तथा प्रांतीय भाषाओं से विमुख हो अंग्रेजी की तरफ झुकना और उसका हो जाना राष्ट्रीय शोक अथवा ट्रेजडी का विषय मानते हैं। कलकत्ता में 27 दिसंबर 1917 ई. को गांधीजी ने जो उद्‌गार व्यक्त किया था, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है जो आज भी प्रासंगिक है- 'यदि हम अंग्रेजी के आदी नहीं हो गए होते तो यह समझने में हमें देर नहीं लगती कि अंग्रेजी के शिक्षा का माध्यम होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कटकर दूर हो गई है, हम अपनी जनता से अलग हो गए हैं, जाति के सर्वश्रेष्ठ विभागों का विकास रुक गया है और जो विचार हमें अंग्रेजी के माध्यम से मिले, उन्हें हम जनता में फैलाने में नाकामयाब रहे हैं। पिछले साठ वर्षों से हमने विचित्र-विचित्र शब्दों को केवल रटना सीखा है, तथ्यपूर्ण ज्ञान पचाने के बदले हमने शब्दों का उच्चारण सीखा है। जो विरासत हमें अपने बाप-दादा से हासिल हुई, उसके आधार पर नव-निर्माण करने के बदले, हमने उस विरासत को भूलना सीखा है। इस दुर्गति की मिसाल सारी दुनिया के इतिहास में नहीं है। यह तो राष्ट्रीय शोक अथवा ट्रेजडी का विषय है। आज की पहली और सबसे बड़ी समाज-सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर जुड़ें और हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें। हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्यवाहियां अपनी-अपनी भाषाओं में चलानी चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्रवाइयों की भाषा हिंदी होनी चाहिए।'[7]

विदेशी भाषा माध्यम थोपने से युवकों की प्रतिभा कुंठित हो रही है। इससे राष्ट्र की आत्मा हनित होगी। वे 5 जुलाई, 1928 ई. के 'यंग इंडिया' में लिखते हैं- 'देश के नौजवानों पर एक विदेशी माध्यम थोप देने से उनकी प्रतिभा कुंठित हो रही है और इतिहास में इसे विदेशी शासन की बुराइयों में सबसे बड़ी बुराई माना जाएगा। इसने राष्ट्र की शक्ति को घुन लगा दिया है, शिक्षार्थियों को विद्योपार्जन के लिए पर्याप्त समय नहीं छोड़ा, उन्हें सर्वसाधारण से काटकर अलग कर दिया है, शिक्षा को अनावश्यक रूप से व्ययसाध्य बना दिया है। यदि यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही, तो ऐसे आसार दिखाई दे रहे हैं कि यह राष्ट्र की आत्मा का हनन कर देगी इसलिए शिक्षित भारतीय अपने-आपको विदेशी माध्यम के इस व्यामोह से जितनी जल्द मुक्त कर लेंगे, स्वयं उनके लिए और देश की जनता के लिए उतना ही अच्छा होगा।

वे राष्ट्रभाषा हिंदी की प्रशंसा या प्रतिष्ठा में देश की प्रांतीय भाषाओं को दबाने के कदापि पक्षधर नहीं हैं। वे सामाजिक संस्कृति की हिफाजत के लिए उनमें प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं। राष्ट्रभाषा हिंदी से उन्हें किसी भी प्रकार का खतरा या अस्तित्वहीनता नहीं है। इस संदर्भ में उनका कथन उल्लेखनीय है-'मैं हिंदी के जरिए प्रांतीय भाषाओं को दबाना नहीं चाहता, किंतु

उनके साथ हिंदी को भी मिला देना चाहता हूं, जिससे एक प्रांत दूसरी के साथ अपना सजीव संबंध जोड़ सके। इससे प्रांतीय भाषाओं के साथ हिंदी की भी श्रीवृद्धि होगी।'[8] 'मैं हमेशा से यह मानता हूं कि हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रांतों के पारस्परिक संबंध के लिए हम हिंदी सीखें। ऐसा कहने में हिंदी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने के लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है जिसे अधिक लोग जानते-बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिंदी ही हो सकती है।'[9]

बापू को अपनी भाषा नीति के कारण थोड़ा विरोध भी झेलना पड़ा। उनकी परिकल्पना 'हिंदुस्तानी' के आग्रह के रूप में सुदृढ़ हुई। एक भाषा और एक लिपि के समर्थन को खतरे से खाली नहीं है, मानते थे। विचारोपरांत हिंदी-उर्दू के समन्वय को अपनी भाषानीति की बुनियाद माना और उर्दू के मिलाप से पैदा होने वाली आमफहम मुश्तरका जबान को 'हिंदुस्तानी' कहा। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी तथा फारसीनुमा उर्दू, दोनों भाषा-शैलियों को राष्ट्रभाषा के स्वरूप की दृष्टि से उपयोगी नहीं माना। उत्तर भारत में हिंदी-मुसलमानों के द्वारा बोली जाने वाली हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा का आदर्श स्वरूप घोषित किया। 1945 ई. में हिंदुस्तानी प्रचार-सम्मेलन में इसे और भी स्पष्ट किया- ' हिंदी और उर्दू दो नदियां हैं, उनमें से हिंदुस्तानी की तीसरी नदी प्रकट होने वाली है। ...यदि हिंदी और उर्दू मिल जाए तो गंगा और यमुना से बड़ी हो सरस्वती, हुगली की तरह बन जाएगी। हुगली तो गंदी है, मैं उसका पानी नहीं पीता पर यह हुगली बन गई तो यह बड़ी खूबसूरत होगी।'[10] गांधीजी के 'हिंदुस्तानी' के पीछे उनकी सांप्रदायिक सद्भावना कायम रखने की रही है। अपनी भाषा में दूसरी भाषाओं के शब्द के प्रति गांधीजी की सदाशयता देखने को मिलती है- 'मैं चाहता हूं कि राष्ट्र अपनी ही भाषा का भंडार भरे और इसके लिए संसार की अन्य भाषाओं का भंडार भी अपनी ही देशी भाषाओं में संचित करें।'[11]

गांधीजी की स्पष्ट मान्यता है कि अंग्रेजी ने देशी भाषाओं की उन्नति के मार्ग में अनेक बाधाएं खड़ी की हैं। वे बढ़ती अंग्रेजियत पर प्रहार करते हैं- 'विदेशी माध्यम ने हमारी देशी भाषाओं की प्रगति और विकास को रोक दिया है। अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, मैं आज से विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली हमारे लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बंद कर दूं या उन्हें बर्खास्त करा दूं। मैं पाठ्य पुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूंगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने आप चली आएगी। यह एक ऐसी बुराई है जिसका तुरंत इलाज होना चाहिए।'[12] वे सदैव अंग्रेजी के स्थान पर अपनी भाषा पर बल देते रहे। वे प्रांतीय भाषाओं को हिंदी का प्रतिद्वंद्वी या प्रांतीय भाषाओं के लिए हिंदी को कभी बाधक नहीं मानते।

संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 की व्यवस्था को भी हम मजबूती से पूरा न करके अंग्रेजी की दुम सहला रहे हैं। ऐसी स्थिति में गांधी के सपनों का भारत कैसे बनेगा? तथाकथित तुच्छ मानसिकता वाले अंग्रेजी के हिमायती तथा राजनैतिक षडयंत्र के कारण स्वतंत्र भारत में

दिन-प्रतिदिन हिंदी की शक्ति एवं आत्मा को भोथरा किया जा रहा है। भूमंडलीकरण के नाम पर अंग्रेजी का और भी हौव्वा खड़ा किया जा रहा है। आज के अर्थावलंबित भूमंडलीकरण में हिंदी की शक्ति को पहचानने की आवश्यकता है। इसकी कार्यात्मक शक्ति अद्‌भुत है। भूमंडलीकरण के नाम पर इसे उपेक्षित करने की नहीं तराशने की आवश्यकता है। अपनी श्रेष्ठता को कुंठित कर अंग्रेजी के सम्मुख शरणागत होने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय सत्तालोलुप राजनेताओं द्वारा क्षेत्रीय भाषाओं की हिंदी के प्रति लड़ंत-भिड़ंत से बचाने की आवश्यकता है। संवैधानिक अंतहीन पंद्रह वर्षों वाली अंग्रेजी की शर्त पर नहीं, जो अंतः सलिला की भांति देश के समस्त जन को संपर्क-सूत्र में बांधने वाली हिंदी को प्रभावित कर रही है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज जो भी देश-दुनिया में अपनी शक्ति का परचम लहरा रहे हैं, उसके मूल में उनकी 'निजभाषा' एवं स्वदेशी भावना ही है।

आज सांस्कृतिक गिरावट का दौर चल रहा है। भौतिक संपन्नता तथा आध्यात्मिक ह्रास के कारण आज का व्यक्ति एवं समाज सांस्कृतिक मूल्यहीनता और वैचारिक पंगुता से ग्रस्त है। इकबाल 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' की चमक फीकी पड़ती जा रही है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव इतना बढ़ रहा है कि व्यक्ति एवं समाज मुखहीन शरीर की भांति होता जा रहा है। हमारी परंपराओं की जड़ें खोखली होती जा रही है। विकास की यात्रा में ऐसा न हो कि हम हवा हो जाएं। संस्कृति संकट के दौर में महात्मा गांधी के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं- 'मैं यह नहीं चाहता कि मेरा घर चहारदीवारी व खिड़कियों में कैद हो। मैं चाहता हूं कि दुनिया की सभी संस्कृतियों की हवाएं मेरे घर में स्वाभाविक रूप से आएं, परंतु मैं यह चाहता हूं कि इन हवाओं के थपेड़ों से मेरे पैर न उखड़ें और मैं जमीन पर अडिग खडा रहूं।'

इस समय मुझे स्मरण आ रहा है 'निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' के उद्‌घोषक भारतेंदु के बलिया के ददरी मेले के समय देशोपकारिणी सभा में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है', व्याख्यान के अंत में कही गई उनकी बात-' भाइयों अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार से उन्नति करो जिसमें तुम्हारी भलाई, वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा की उन्नति करो।' सचमुच इसी को माध्यम से हमारा देश संपूर्ण सांस्कृतिक चेतना के साथ उन्नति कर सकेगा।

जब भी कोई भारतीय बिना किसी बहकावे या प्रलोभन के देश-मन से एकाग्र हो देश हित की बात सोचेगा तो अनिवार्यतः उसे गांधी के विचार प्रासंगिक एवं सारगर्भित लगेंगे। विडंबना यह है कि गांधी के देश में हम महात्मा गांधी को ही भूल रहे हैं, जबकि पूरी दुनिया गांधी के विचारों में अपने देश को संजोने का सपना देख रही है। गांधी के सपने को अपना सपना बनाना होगा। भाषा एवं संस्कृति सपनों की आधारभूमि है, बिना इस आधारभूमि को पकड़े देश की खुशहाली संभव नहीं है।

गांधीजी का साहित्य के प्रति विशेष अनुराग था। उनके लिए नैतिक एंव आध्यात्मिक गुणों का विशेष महत्व था। मूल्यों की पक्षधरता उन्हें साहित्य से ही मिली, इस बात से इनकार

नहीं किया जा सकता। अपनी आत्मकथा को छोड़कर उन्होंने साहित्य की अन्यान्य विधाओं में स्वतंत्र रूप से लेखन नहीं किया। एक सफल पत्रकार होने के नाते उन्होंने 'यंग इंडिया', 'हरिजन', 'हरिजन सेवक' जैसे कई पत्र निकालकर राजनीति, धर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य-कला पर विचारोत्तेजक लेख लिखे जो उनके चिंतक एवं लेखक होने का प्रमाण है। अपने लेखों में उन्होंने धर्म, राजनीति, संस्कृति, भाषा, शिक्षा साहित्य तथा समाज के ज्वलंत मुद्दों पर महत्वपूर्ण सार्थक टिप्पणियां प्रस्तुत की जो उनकी वैचारिकी को स्पष्ट करते हैं। उनके लेखों का युगीन समाज एवं नेतृत्व पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा।

गांधीजी के व्यक्तित्व-निर्माण में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गीता एवं रामायण के मूल तत्वों को उन्होंने आत्मसात किया। जहां वे साहित्य से जीवन-सूत्र प्राप्त करते हैं, वहीं वे समय-समय पर समकालीन साहित्यकारों की नूतन वैचारिक दृष्टि को भी ग्रहण करते हैं। प्रख्यात रूसी कथाकार टॉल्स्टॉय तथा फ्रांस के ख्यात लेखक रोम्या रोलां से उनका आत्मीय संबंध रहा। विश्व प्रसिद्ध भारतीय साहित्यकार रवींद्रनाथ ठाकुर के पारस्परिक संबंध की आत्मीयता सर्वविदित है। बांग्ला साहित्यकार रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ ही गुजराती, मराठी, तमिल, हिंदी आदि के साहित्यकारों से उनका निकट का संबंध रहा। समकालीन साहित्यकारों से वे प्रभावित भी करते थे। हिंदी के पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, प्रेमचंद, निराला, पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, वियोगी हरि जैसे अनेक स्वनामधन्य साहित्यकार गांधी-चिंतन से गहरे रूप से जुड़े।

गांधीजी का मध्यकालीन भक्ति साहित्य से विशेष लगाव था। संतों एवं भक्ति कवियों से उन्होंने बहुत-कुछ सीखा। उन्हें धर्म, समाज, राजनीति आदि में हृदय-विवेक की महत्वपूर्ण भूमिका की अनिवार्यता का सूत्रपात संतों और भक्त कवियों की बानियों से हुआ। इसी से ऊर्जा प्राप्त कर वैचारिकी के नए मानदंड स्थापित किए। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के कर्णधार होते हुए भी इस ऊर्जा के फलस्वरूप लीडर नहीं, अपितु महात्मा और राष्ट्रपिता कहलाए। उन्होंने जिन सात सामाजिक पापों का उल्लेख किया, उनके महात्मा वाले व्यक्तित्व की झलक स्पष्टतः दिखती है। उन्होंने सिद्धांतों के बिना राजनीति, परिश्रम के बिना संपत्ति, अंतरात्मा के बिना आनंद, चरित्र के बिन ज्ञान, नैतिकता के बिना वाणिज्य, मानवता के बिना विज्ञान तथा त्याग के बिना पूजा को सामाजिक पाप बताया। इन विचारों में महामानव की विराट सोच एवं हृदय-विवेक की स्पष्ट छाप है। उनके संपूर्ण राजनीतिक जीवन में येनकेन प्रकारेण साहित्य की मूल आत्मा की नैसर्गिक आभामंडित होती रही है। उनका प्रत्येक दिन संतों की बानियों से ही शुरू होता था। गुजराती के कवि नरसिंह मेहता रचित, 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे' उनका प्रिय भजन ही नहीं, बल्कि जीवन-मंत्र बना। उन्होंने सन् 1920 ई. के 'नवजीवन' में पूरा भजन अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणियों के साथ मुद्रित किया। उसमें वैष्णव जन के 20 गुणों का उल्लेख किया। नरसिंह मेहता की इस अनुपम रचना में उन्हें भारतीय समाज ही नहीं, बल्कि विश्व-समाज में व्यक्त अनेक बुराइयों के निस्तारण की ताकत दिखाई दी।

गांधीजी की साहित्य संबंधी मान्यताएं उनके व्यक्तिगत पत्रों एवं लेखों में हमें प्राप्त होती है। इसका सांगोपांग विश्लेषण किया जाए तो निश्चित रूप से उनके साहित्य समीक्षा सिद्धांत की स्थापनाएं की जा सकती हैं। साहित्य संबंधी उनकी मान्यताएं बहुमूल्य हैं, इस पर सुधी समीक्षकों को निश्चित रूप से विचार करना चाहिए। पाठ्यक्रमों में उनके साहित्य-समीक्षा सिद्धांत को रखने की आवश्यकता है। उनकी साहित्य संबंधी मान्यताओं के कतिपय विश्लेषण प्रस्तुत हैं।

भारती नामक एक लड़की ने पत्र द्वारा गांधीजी से पूछा था कि उन्हें साहित्य में दिलचस्पी है, क्या वे कला के लिए कला के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं? उन्होंने 15 जून, 1932 ई. को उसे उत्तर देते हुए लिखा- 'साहित्य पढ़ना निश्चय ही अच्छा लगता है। ...कला के लिए कला का दावा करने वाले लोग भी वस्तुतः देखा जाए तो वैसा नहीं कर सकते। कला का जीवन में स्थान है, लेकिन कला किसे कहा जाए, यह एक अलहदा सवाल है लेकिन हम सबको जिस मार्ग का अनुसरण करना है, उसमें कला साधन मात्र है। यही जब साध्य हो जाती है, तब वह मनुष्य के लिए बंधन रूप बन जाती है और मनुष्य के पतन का कारण बनती है।'[13]

3 अगस्त, 1932 ई. में प्रेमा बहन को पत्र में लिखते हैं कि 'सेवा में अपूर्व आनंद है,अतःकह सकते हैं कि विद्याध्ययन आनंद के लिए ही है, लेकिन आज तक किसी की सेवा किए बिना केवल साहित्य विलास से अखंड आनंद की अनुभूति होने की बात मैं नहीं जानता। कला पर किसी देश का अथवा व्यक्ति का एकाधिकार नहीं हो सकता। जिस चीज में छिपाने लायक कोई बात है, वह कला नहीं है।'[14] इटली के सौंदर्यशास्त्री क्रोचे की 'अभिव्यंजनावाद' ने पूरे यूरोप में धूम मचा रखा था परंतु गांधीजी स्पष्टतः कहते हैं- 'मेरे विचार में यह मानव-मन की एक सोचनीय भूल है, मुझे नफरत है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि धर्म और कला दोनों ही की नैतिक और आध्यात्मिक के एक जैसे उद्देश्यों की पूर्ति करनी है।'[15] मेरा यह भी विश्वास है कि सच्ची कला नैतिक कार्यों और प्रभावों के छिपे हुए सौंदर्य को देखने में है और इसलिए ऐसा बहुत कुछ जिसे कला और सौंदर्य की संज्ञा दी जाती है, वह न संभवतः कला ही है और न सौंदर्य।'[16]

'कला कला के लिए' की अवधारणा को गांधीजी पतनशील मानते थे, क्योंकि जीवन से जुड़े बिना कला मूल्यवान नहीं हो सकती जिसका उल्लेख उन्होंने प्रेमा बहन को लिखे पत्र में व्यक्त किया है,'कला के लिए कला का विचार मनुष्य को कहां ले जाता है, यह तू नहीं जानती। इसके नाम पर पश्चिम में जवान लड़के-लड़की बिलकुल नरक में उतर रहे हैं।'[17] इसका आचार्य रामचंद्र शुक्ल में वैचारिक सादृश्य देखा जा सकता है। गांधीजी के प्रभाव के रूप में देख सकते हैं, 'कला, कला के लिए वाली बात को जीर्ण होकर मरे हुए दिन हुए। एक क्या कई क्रोचे उसे फिर जिला नहीं सकते।'[18]

प्रेमा बहन को लिखे पत्र में गांधीजी कहते हैं, 'जिस चीज में छिपाने लायक कोई बात है, वह कला नहीं है', से अभिप्राय यह है कि वे साहित्य या कला की पारदर्शिता का मुद्दा उठाते हैं। निश्चित रूप से इसमें सत्यान्वेषण या सत्याग्रह की भंगिमा दिखाई देती है। गांधीजी के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि वे कला के लिए कला को अमान्य करते हैं। वे साहित्य एवं कला को

समाज और जीवन से अविच्छिन्न मानते हैं। इसके बिना वह विलास है। गांधीयुगीन साहित्य में इसकी प्रतिध्वनि हमें प्रबल रूप में सुनाई देती है। अपने को गांधीजी का चेला मानने वाले प्रेमचंद[19] भी साहित्य को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते। साहित्य का आधार वे जीवन मानते हैं। साहित्य को वे जीवन की आलोचना मानते हैं। सेवा-भावना को अपने कथा-साहित्य के केंद्र में रखते हैं। प्रेमचंदजी की साहित्य संबंधी कसौटी में गांधी चिंतन ही मुखर हुआ है- 'हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'[20] उनके साहित्य में गांधीजी द्वारा गिनाए गए सात सामाजिक पापों की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है।

गांधीजी ने 16 दिसंबर, 1933 ई. को विजयवाड़ा में हरिजन सेवकों की सभा में साहित्यकारों के लिए कहा कि काव्य और कला को चापलूसी का साधन नहीं बनाना चाहिए। उसे सत्य के प्रचार का साधन होना चाहिए। 'काव्य और कला को सत्य के प्रचार का साधन होना चाहिए, उनका उपयोग कभी चापलूसी के लिए नहीं होना चाहिए, क्योंकि कविता के ऐसे प्रयोग से न केवल कला का ह्रास होगा, बल्कि सत्य का भी खंडन होगा।'[21] निश्चित रूप से साहित्य की गरिमा के लिए झूठी प्रशंसा की प्रवृत्ति से साहित्यकारों को दूर होना चाहिए, अन्यथा साहित्य की विश्वसनीयता प्रभावित होगी। इसके साथ ही साहित्यकारों को विलासितापूर्ण श्रृंगारिकता से अपने को बचाए रखना चाहिए। श्रृंगार रस की सब कुछ है, ऐसा वे नहीं मानते हैं। साहित्य को सोद्देश्य होना चाहिए। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में उसे सतत् तत्पर रहना चाहिए। आपसी सद्भाव तथा समाज में व्याप्त रूढ़ियों, धर्मांधता आदि के उन्मूलन हेतु साहित्यकारों को सक्रिय भूमिका का निर्वह करना चाहिए। 2 मई 1936 ई. को नागपुर में अखिल भारतीय साहित्य परिषद की बैठक में अध्यक्षता करते हुए श्रृंगारजनित विलासपूर्ण भावाभिव्यक्ति पर प्रहार करते हुए बेबाक कहते हैं, 'अगर आपको मेरी बात न अखरे तो मैं यही कहूंगा कि मैं श्रृंगार रस को तुच्छ रस समझता हूं और जब उससे अश्लीलता आती है, तब उसे सर्वथा त्याज्य मानता हूं। यदि मेरी चले तो इस संस्था में ऐसे रस त्याज्य मनवा दूं। इसी तरह जो साहित्य कौमी भेदों को, धर्मांधता को तथा प्रजा में अथवा व्यक्तियों में वैमनस्य को बढ़ाता है, उसका भी त्याग होना आवश्यक है।'[22]

गांधीजी ने इसलिए कहा कि श्रृंगारिकता के नाम पर अश्लीलता के विरुद्ध लगातार विरोध हेतु साहित्यकारों एवं साहित्यिक संस्थाओं को जागरूक रहकर साहित्य को गंदगी से बचाए रखना चाहिए। इसके लिए साहित्यिक आंदोलन चलाने चाहिए। अश्लीलता पर गांधीजी की स्पष्ट धारणा है। वे बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा लिखित कहानी-संग्रह 'चाकलेट' को 'घासलेटी साहित्य' कहे जाने पर 10 अक्टूबर, 1948 ई. को पत्र में कहते हैं-'भाई बनारसीदास, आपके दो पत्र मेरे पास हैं। 'चाकलेट' नामक पुस्तक पर जो पत्र था, उसको मैंने 'यंग इंडिया' के लिए नोट लिखकर दिया। पुस्तक तो नहीं पढ़ी थी। टीका

केवल आपके पत्र पर निर्भर थी। मैंने सोचा इस तरह की टीका करना उचित नहीं होगा। पुस्तक पढ़नी चाहिए, मैंने पुस्तक आज खतम की। मेरे मन पर जो असर आप पर हुआ, नहीं हुआ। मैं पुस्तक का हेतु शुद्ध मानता हूं। इसका असर अच्छा पड़ता है या बुरा, मुझे मालूम नहीं है। लेखक ने अमानुषी व्यवहार पर घृणा ही पैदा की है।' इस कथन में नैतिकता एवं सत्यनिष्ठा का मणिकांचन योग दिखता है जो मूल्य से आवेष्टित है।

गांधीजी नग्नता को अश्लीलता का अभिन्न रूप नहीं मानते हैं। अपशब्द, अशिष्ट शब्द, अमानुषी व्यवहार के प्रति घृणा पैदा करने के कारण अश्लील नहीं होता। उसमें भाव को व्यक्त करने का सामर्थ्य होना चाहिए। गांधीजी यथार्थ के नाम पर ज्यों का त्यों उतारने के पक्षधर नहीं हैं। लोक जीवन के यथार्थ के नाम पर फूहड शब्दों के प्रयोग से बचने की सलाह साहित्यकारों को देते हैं। 'साहित्य परिषद् से मैं कहूंगा कि खेतों में पानी देने वाले इन किसानों के मुंह से अपशब्दों का निकलना हटाएं, नहीं तो हमारी अवनति की जिम्मेदारी साहित्य परिषद के सिर पर होगी।'[23] यथार्थ के नाम पर गाली-गलौच को प्रस्तुत करना उचित नहीं है। उनकी मान्यता है कि भाषा का संस्कार देना भी साहित्यकार की जिम्मेदारी है। साहित्य का प्रयोजन स्वस्थ भावनाओं का जाग्रत करने का होना चाहिए।

अपनी साहित्यिक धारणाओं से ही वे किसी कृति की समीक्षा करते थे। उनके मूल्यांकन की दृष्टि 'साकेत' की समीक्षा मैथिलीशरण गुप्त को 15 अप्रैल, 1932 ई. को लिखे पत्र से स्पष्ट होती है- 'साकेत', 'अनघ', 'पंचवटी', और 'झंकार' सब रसपूर्वक पढ़ गया। बहुत अच्छे लगे, परंतु टीका करने की मैं अपनी कुछ भी योग्यता नहीं समझता हूं तो भी आपने मेरे अभिप्राय पूछे हैं और क्योंकि जैसे पढ़ता गया, वैसे विचार भी आते रहते थे, इसलिए जैसे आए, वैसे ही आपके सामने रखता हूं। उर्मिला का विषाद अगरचे भाषा की दृष्टि से सुंदर है, परंतु 'साकेत' में उसको शायद ही स्थान हो सकता है। तुलसीदासजी ने उर्मिला के बारे में बहुत कुछ नहीं कहा है। यह दोष माना गया है। मैंने इस अभाव को दोष की दृष्टि से नहीं देखा। मुझको उसमें कवि की कला प्रतीत हुई है। 'मानस' की रचना ही ऐसी है कि उर्मिला जैसे योग्य पात्र का उल्लेख अध्याहार में रखा गया है और उसी में काव्य और उन पात्रों का महत्व है। उर्मिला इत्यादि के गुणों का वर्णन सीता के गुण-विशेष बताने के लिए ही आ सकता था, परंतु उर्मिला के गुण सीता से कम थे ही नहीं। जैसी सीता, वैसी ही उनकी भगिनियां। 'मानस' एक अनुपम धर्मग्रंथ है। प्रत्येक पृष्ठ में और प्रत्येक वाक्य में सीताराम का ही जप जपाया है। साकेत में भी वह चीज देखना चाहता था।... एक और चीज भी कह दूं दशरथादि का रुदन तुलसीदासजी के 'मानस' में पढ़ने से आघात नहीं पहुंचा था। तुलसीदास से दूसरा कुछ नहीं हो सकता था परंतु इस युग की पुस्तक में ऐसा रुदन अच्छा नहीं भाता है। उसमें वीरता को हानि पहुंचती है और इधर भक्ति को भी।'[24] इसमें गांधी के साहित्य-कला विषयक महत्वपूर्ण सूत्र निहित हैं।

सेवा परमो धर्मः गांधीजी का मूल मंत्र था पर दुःखकातरता को इसी के माध्यम से उन्मूलित किया जा सकता है। सेवा में सत्य, प्रेम और कर्तव्य का अद्वितीय समन्वय होता है। गांधीजी की दृष्टि में अहिंसा अपरिमित प्रेम ही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा साहित्य की

लोकधर्मी एवं लोकमंगल की अवधारणा में गांधीजी की सेवा ही परिलक्षित होती है। सेवा में निहित विराटता ही साहित्य का औदात्य है। शुक्लजी के मनोविकार संबंधी निबंधों में निहित सामाजिक पक्ष इसी का प्रतिफल स्वीकारा जा सकता है।

इस प्रकार गांधीजी की साहित्य या कला संबंधी मान्यताएं साहित्य की उपयोगिता से है। जीवन-जगत और आदर्शपरक मूल्यों से जुड़ने में ही साहित्य की उपयोगिता है। साहित्य का आदर्श कला, कला के लिए नहीं, अपितु साहित्य या कला समाज के लिए है। साहित्य और समाज की संपूरकता एवं अविच्छिन्नता ही वास्तविक साहित्य है, यही हमारी उन्नति में सहायक है।

गांधीजी की साहित्य संबंधी मान्यताएं साहित्यकारों के लिए एक सबक है। नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों का समावेश साहित्य में अवश्यमेव होना चाहिए। इसी के द्वारा व्यष्टि एवं समष्टि में मानवीय मूल्यों की संरक्षा की जा सकती है। सत्यं, शिवं, सुंदरम् की संकल्पना जीवंत हो सकती है। इसके द्वारा ही साहित्य लोकरस या लोकधर्मी हो सकता है।

●

संदर्भ सूची-

1. स्वतंत्रता दिवसः 15 अगस्त, 1947, बी.बी. सी. लंदन को दिया गया संदेश।
2. राष्ट्रभाषा हिंदी और गांधीजी-डॉ. अंबा शंकर नागर, कमल प्रकाशन, इंदौर, 1970, पृ.7
3. हिंदीः राष्ट्रभाषा, राजभाषा जनभाषा-शंकर दयाल सिंह, पृ. 45
4. पूर्वोक्त- डॉ. अंबा शंकर नागर, पृ. 71, 5. वही, 6. पूर्वोक्त- डॉ. शंकर दयाल सिंह, पृ. 451
7. वही, 8. पूर्वोक्त- डॉ. शंकर दयाल सिंह, पृ. 84, 9. पूर्वोक्त- डॉ. शंकर दयाल सिंह, पृ. 16
10. पूर्वोक्त- डॉ. अंबा शंकर नागर, पृ. 16
11. मेरे सपनों का भारत- मोहनदास करमचंद गांधी (संक्षिप्त), सर्व सेवा संघ, वाराणसी, पृ. 98
12. वही, पृ. 97, 13. समग्र गांधी वाङ्मय, खंड-50, पृ. 35
14. वही, पृ. 335, 15. वही, पृ. 165,16. वही, पृ. 324,17. वही, पृ. 314,18. चिंतामणि (भाग-2), पृ. 117, 19. प्रेमचंद घर में, शिवरानी देवी, पृ. 94
20. प्रेमचंद के श्रेष्ठ निबंध, सत्यप्रकाश मिश्र, पृ. 98 (सन् 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति के आसन से दिया गया भाषण)।
21. गांधी वाङ्मय, खंड-56, पृ. 355
22. शिक्षण और संस्कृति, पृ. 720
23. गांधी वाङ्मय, खंड-17, पृ. 354
24. गांधी वाङ्मय, खंड-49, पृ. 265।

राम और रामायण : गांधी दृष्टि

मनोज कुमार/ सुशील कुमार त्रिपाठी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा में गांधीजी अपने जीवन में धर्म की झांकी का विशद् वर्णन करते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि सात साल से लेकर सोलह साल के पढ़ाई में उन्हें धर्म की शिक्षा नहीं मिली। वही रम्या (नौकरानी) ने समझाया कि भूत-प्रेत की दवा राम-नाम है। दरअसल उन्हें अँधेरे में भूत-प्रेत का डर लगता था। आया ने उनसे कहा था, अगर तुम राम-नाम लोगे तो तमाम भूत-प्रेत भाग जाएंगे। वे तो बच्चा ही थे लेकिन आया की बात पर उनकी श्रद्धा थी। उन्होंने उसकी सलाह पर पूरा-पूरा अमल किया। इससे उनका डर भाग गया। उन्होंने कहा कि यदि एक बच्चे का यह अनुभव है, तो सोचिए कि व्यस्क आदमियों द्वारा बुद्धि और श्रृद्धा के साथ राम-नाम लेने से उन्हें कितना लाभ हो सकता है। बचपन में बोया गया यह बीज नष्ट नहीं हुआ। गांधीजी ने लिखा है कि मैंने बचपन में जो सीखा, उसने मेरे मानसिक आकाश में विशाल रूप धारण कर लिया है। इस सूर्य ने मेरी घोर से घोर अंधकार की घड़ी में मुझे प्रकाश प्रदान किया है। यही आश्वासन ईसाई का ईसा का नाम लेने से और मुसलमानों को अल्ला का नाम लेने से मिलता है। (हरिजन सेवक 12.12.1936, गांधीजी, राम-नाम, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, पृष्ठ-14, बाद में गांधीजी के लिए राम-नाम 'अमोघ शक्ति' बन गया। रामायण के भक्त चाचाजी के लड़के ने उन्हें राम-रक्षा पाठ सिखाने की व्यवस्था की। गांधीजी ने उसे कंठाग्र कर लिया और स्नान के बाद नित्य पाठ का नियम बना लिया। गांधीजी पर रामायण के पारायण का गहरा प्रभाव पड़ा। वीलेश्वयर के पंडित लाघा महाराज के बारे में इन्होंने सुन रखा था कि उनके कोढ़ की बीमारी महादेव पर चढ़े वेल पत्र लगाने और राम-नाम के जप से खत्म हो गई। तेरह साल की उम्र में लाघा महाराज के मीठे कंठ से दोहा-चौपाई सुनी। गांधीजी कहते हैं कि 'उनके पाठ में मुझे खूब रस आता था। यह रामायण-श्रवण रामायण के प्रति मेरे अत्याधिक प्रेम की बुनियाद है। वे तुलसीदास की रामायण को भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते थे। (आत्मकथा, 2014) नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 28-29)' माता-पिता राम-मंदिर के अलावा शिवालय और वैष्णव मंदिर जाते थे, इससे इनमें धर्मों के प्रति समान भाव उत्पन्न हुआ। इसी कारण धर्म का इन्होंने उदार अर्थ ग्रहण किया अर्थात आत्म बोध, आत्मज्ञान (पृ.28) 'धर्मों के अभ्यास से, संयम से, ईश्वर उसके हृदय में प्रकट होता है' गांधीजी के आध्यात्मिक प्रसंगों में, वकालत के प्रसंगों में, संस्थाएं चलाने में, राजनीति में ईश्वर

ने उन्हें बचाया है (पृ. 69) उन्हें इस विषय में कोई शंका नहीं थी कि विकार रूपी मनों की शुद्धि के लिए हार्दिक उपासना एक रामबाण औषधि है लेकिन इस प्रसादी के लिए नम्रता आवश्यक है।

श्रीमद् राजचंद्र भाई का स्थान गांधीजी के जीवन में महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने स्वीकार किया है कि उनके जीवन पर प्रभाव डालने वाले तीन आधुनिक पुरुषों में राजचंद्र भाई से उनका सजीव संपर्क था जबकि टॉल्सटॉय और रस्किन की पुस्तक ने उन्हें चकित कर दिया था। बावजूद इसके गांधीजी धर्मगुरु के रूप में उन्हें हृदय में स्थान नहीं दे सके। 'आत्म-दर्शन कराने वाले अपूर्ण शिक्षक से काम नहीं चल सकता'। विशेष की योग्यता के अनुसार ही गुरु मिलता है। योग्यता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने का हमें अधिकार है पर फल ईश्वराधीन है (पृ. 83) कवि राजचंद्र भाई के साथ अंत तक इनका संबंध बना रहा उन्होंने 'पंचीकरण' 'मणिरत्नमाला' योगवासिष्ठ' का 'मुमुक्ष' प्रकरण हरिभद्रसूरी का 'षड्दर्शन- सम्मुच्चय', नर्मदा शंकर की 'धर्म विचार' इत्यादि पुस्तकें गांधीजी के लिए भेजी थी। (पृ. 129) ईश्वर की पहचान सेवा से ही होगी, यह मानकर गांधीजी ने सेवा धर्म स्वीकार किया पर वे ईश्वर की खोज में आत्म दर्शन के प्रयत्न में पड़ गए। दक्षिण अफ्रीका में ईसाई मित्रों के संपर्क और प्रभावित करने की कोशिश के बाद भी मतभेद दूर नहीं हुए गांधीजी जी कहते हैं कि 'जहां उदारता, सहिष्णुता और सत्य होता है वहां मतभेद भी लाभदायक सिद्ध होते हैं' हिंदू धर्म के प्रति उनके मन में आदर उत्पन्न करने में नर्मदा शंकर के जीवन में हुए परिवर्तन, मैक्समूलर की 'हिंदुस्तान क्या सिखाता है' तथा थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा प्रकाशित उपनिषदों का भाषातंर महत्वपूर्ण रहा।

गांधीजी ईश्वर और धर्म में गहरी आस्था पैदा करना चाहते थे। उनके अनुसार आस्था अंधविश्वास नहीं 'अंतरतम आध्यात्मिक आवश्यकता की तुष्टि है' (ई. 14.4.1927, पृ. 120)। आस्था तर्क का खंडन नहीं करती बल्कि उसे लांघ जाती है। जो तर्क की परिधि से बाहर हैं यह वहां काम आती है (हरिजन 6.31937 पृ.26)। गांधीजी के धर्म का आशय हिंदू धर्म नहीं है लेकिन वे इसे (हिंदू धर्म) सभी धर्मों से अधिक आदर देते हैं। गांधीजी का धर्म हिंदुत्व से भी परे है, यह मनुष्य की प्रति को बदल देता है, भीतर के सत्य के साथ तदाकार कर निरंतर पवित्रीकरण करता है। गांधीजी का धर्म औपचारिक धर्म या प्रथागत धर्म नहीं है बल्कि वह सभी धर्मों का मूल है और जो हमारे सृष्टि से हमारा साक्षात्कार कराता है। (जे.जे.डोक (1909 एम. के. गांधीजीः एन इंडियन पैट्रियट इन साउथ अफ्रीका, द.लंदन इंडियन कॉमिक्स, लंदनः7) गांधीजी के धर्म की भौगोलिक सीमाएं नहीं है फिर भी इनके देश हित और धर्म हित में अंतर नहीं है। ईश्वर का सर्वोच्च गुण और नाम सत्य है, वे सत्य को राम के नाम से पहचानते हैं। परीक्षा की कठिन घड़ी में इसी नाम ने उनकी रक्षा की है। उन्होंने कहा है कि मैं स्वयं बचपन से तुलसीदास का भक्त रहा हूं और मैंने सदा ईश्वर को राम के नाम से पूजा है। (हरिजन 24. 3.1946 पृ. 56) नवजीवन के लेख से उनकी आंतरिक एवं धार्मिक भावनाओं को समझा जा सकता है। (स.गां.वा.खं. 24, पृ.201-2) गांधीजी ने लेख में आपत्तियों का जवाब दिया है। आपत्ति यह थी कि वे रामचंद्र व प्रभु का उल्लेख 'राम' लिखकर करते हैं। यद्यपि गांधीजी सदैव

'ईश्वर सत्य है' और 'सत्य ही ईश्वर है' कहते थे। नैतिक आदर्शों का आधार निर्गुण भगवान को मानने के बावजूद उनके अंदर सगुणभक्ति की धारा वहा करती थी। गांधीजी लिखते हैं कि 'श्री रामचंद्र प्रभु' मुझे अपने से बहुत दूर के मालूम होते हैं जबकि 'राम' तो मेरे हृदय में राज्य कर रहे हैं। वे दावा करते हैं कि किसी वैष्णव से राम के प्रति उनका अनुराग कम नहीं है। वे हनुमान की तरह परीक्षा देना चाहते हैं। पहले वे राम को श्री रामचंद्र के रूप में पहचानते थे लेकिन अब तो राम उनके घर आ गए हैं। उन्हें मैं, तुम या आप कैसे कह सकता हूं। 'मुझे न मां है, न बाप है और न भाई ऐसा आश्रय-विहीन हूं तो मेरे तो अब राम ही सर्वस्व है। उसी के जिलाए जी रहा हूं', मैं उसी राम को भंगी और ब्राह्मण में देखता हूं। (नवजीवन 5.6.1924 गुजराती, सं.गां.वा. खं. 24 पृ. 201-02)

दर्शन और अनुकरण का हेतु भिन्न है। दर्शन, अनुकरण का सहायक है राम की प्रतिमा का ध्यान करके गांधीजी राम के समान बनना चाहते थे। उन्होंने कहा है कि मंदिर में हजारों भक्तों ने भगवान का दर्शन किया है, जैसे तुलसीदास ने और अंधभक्त सूरदास ने। केवल श्रद्धा ही संकट से उबारती है। राम-नाम उन लोगों के लिए नहीं है जो ईश्वर को हर तरह से फुसलाना चाहते हैं और उससे हमेशा अपनी रक्षा की आशा लगाए रहते हैं। यह उन लोगों के लिए है जो ईश्वर से डर कर चलते है, संयम-पूर्वक जीवन बिताना चाहते है और जो अपनी निर्बलता के कारण उसका पालन नहीं कर पाते (यंग इंडिया 22.1.1925 रामनाथ सुमन, पृ. 14) ईश्वर को पत्र लिखने के लिए कागज नहीं चाहिए। मंदिर में करोड़ों लोग प्रतिदिन पत्र लिखते हैं, उन्हें श्रद्धा है। उसकी श्रद्धा ही उसका प्रमाण है।

एक प्रश्न कि मैं तीन बहनों से बच गया वह केवल ईश्वर नाम के बल पर। 'सौराष्ट्र' की खबर में यह लेख है कि आप मानसिक पापवृत्ति से नहीं बच पाए। उत्तर में गांधीजी ने कहा मेरा व्यक्तिगत जीवन सार्वजनिक हो गया हैं। मेरे लिए संसार में एक भी बात नहीं जिसे मैं निजी रख सकूं। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक हैं, अनेक नए है। उन प्रयोगों का आधार आत्मनिरीक्षण पर है 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांड' के अनुसार मैंने प्रयोग किए है। जो बात मेरे लिए संभव है वह दूसरों के लिए भी संभव है। तीनों प्रसंगों में मुझे कहीं मूर्ख बनाकर उबार लिया। 'जिसे राम रक्खै उसे कौन चक्खेस'। राम उस समय मेरे मुंह में तो न था, पर वह मेरे हृदय का स्वामी था। मेरे मुख में तो विषयोत्तेजक भाषा थी। ...माता से की गयी प्रतिज्ञा याद दिलाया, मैं जगा। राम-नाम शुरू हुआ। मन में कहने लगा, कौन बचा, किसने बचाया? धन्य प्रतिज्ञा। धन्य माता। धन्य मित्र। धन्य राम। मेरे लिए तो यह चमत्कार ही था। यदि मेरे मित्र ने मुझ पर रामबाण न चलाए होते तो मैं आज कहां होता।

राम-बाण वाग्यों रे होय ते जाने,
प्रेम-बाण वाग्यांग रे होय ते जाने।

मेरे लिए तो यह अवसर ईश्वर-साक्षात्कार का था। अब यदि सारा संसार कहे कि ईश्वर नहीं, राम नहीं है तो मैं उसे झूठा कहूंगा।...

मैने स्वच्छंदता का प्रयोग करते हुए संयम सीखा।
मुझे राम को भूलते समय राम के दर्शन हुए। अहो।

रघुवीर तुम तो मेरी लाज है तो पतित पुरातन कहिए पर उतारो जहाज।

गांधीजी ने तीसरे प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा कि मैं अपने पुरुषार्थ के बल नहीं बचा था, बल्कि ईश्वर ने ही मुझे ऐसी बात में मूढ़ रखकर बचाया। वे कहते हैं कि यह न समझा जाय कि इन तीनो प्रसंगों को छोड़कर और प्रसंग नहीं बीते थे लेकिन प्रत्येक अवसर पर मैं राम-नाम के बल बचा हूं। ईश्वर खाली हाथ जाने वाले निर्बल को ही बल देता है

जब लग गज बल अपनो बरत्यों,
नेक सरयो नहि काम।
निर्बल है बल राम पुकारयो
आए आधे नाम।

राम-नाम क्या चीज है? तोते की तरह रटना? राम-नाम का उच्चारण शुद्ध न हो तो कोई हर्ज नहीं। हृदय की तोतली बोली ईश्वर के दरबार में स्वीकार होती है। हृदय भले ही मरा-मरा पुकारता रहे फिर भी हृदय से निकली पुकार जमा के खाते में जमा होती है। पर मुख राम-नाम का शुद्ध उच्चारण करता होगा और हृदय का स्वाामी रावण होगा, तो वह शुद्ध उच्चारण भी नाम के खाते में दर्ज होगा।

बिगड़ी को सुधारने वाला राम ही है भक्त सूरदास ने गाया है-
बिगड़ी कौन सुधारे?
राम बिन बिगड़ी कौन सुधारे रे
बनी बनी के सब कोई साथी
बिगड़ी के नहि कोई रे।

(नवजीवन 21.5.1925, रामनाथ सुमन, पृ. 153-56)

गांधीजी ने लिखा है कि आज मेरा एक मात्र-वैद्य मेरा राम है। राम सारी शारीरिक, मानसिक और नैतिक बुराईयों को दूर करने वाला है। (बिड़ला भवन, नई दिल्ली, 27.9.1947, रामनाथ सुमन 220) राम-नाम सारी बीमारियों का सबसे बड़ा इलाज है, इसलिए वह सारे इलाजों से श्रेष्ठ है। (बिड़ला भवन, नई दिल्ली, 17.10.47,30 ह.से. 26.10.1947, रामनाथ सुमन 221) आत्मिक शक्ति भी मनुष्य की सेवा के लिए है। सदियों से इसका उपयोग शारीरिक रोगों को ठीक करने के लिए हुआ है। आदमी पदार्थ भी है और आत्मा भी इन दोनों का एक दूसरे पर असर होता है। सभी दवाओं और सारी खुराकों से राम-नाम में अधिक शक्ति है, इसकी शक्ति विद्युत-शक्ति से अधिक है। यह शांति और उत्साह देने वाला है। (यरवदा मंदिर 17.12. 1932, रामनाथ सुमन, नीति, धर्म, दर्शन, पृ. 181) सबके लिए राम-नाम रामबाण औषधि है राम-नाम निर्दोष और निरोगी के लिए नहीं, हमारे जैसे पातकी और रोगग्रस्त लोगों के लिए है। (ह. से. 13.10.1933, रामनाथ सुमन धर्मः नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 189) दूसरी सब चीजों की तरह मेरी प्राकृतिक चिकित्सा की कल्पना ने भी धीरे-धीरे विकास किया है। वर्षों से मेरा यह विश्वास रहा है कि जो मनुष्य अपने में ईश्वर का अस्तित्व अनुभव करता है और इस तरह विकार रहित स्थिति की प्राप्ति कर चुकता है, वह लंबे जीवन के रास्ते में आने वाली भारी कठिनाइयों को जीत सकता है। मैंने जो देखा और धर्मशास्त्रों में पढ़ा है, उसके आधार पर मैं

इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जब मनुष्य में उस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीर में भीतरी परिवर्तन होता है लेकिन यह सिर्फ इच्छा करने मात्र से नहीं हो जाता, इसके लिए हमेशा सावधान रहने और अभ्यास करने की जरूरत रहती है। दोनों के होते हुए भी ईश्वर प्राप्ति न हो, तो मानव प्रयत्न व्यर्थ जाता है। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 298) जो डॉ. बीमारी की बुराइयों को बनाए रखने में या उन्हें सहेजने में अपनी होशियारी का उपयोग करता है, वह खुद गिरता है और अपने बीमारी को भी नीचे गिराता है। अपने शरीर को अपने सृजनहार की पूजा के लिए मिला हुआ एक साधन समझने के बदले उसी की पूजा करने और उसको किसी भी तरह बनाए रखने के लिए पानी की तरह पैसा बहाने से बढ़कर बुरी गत और क्या हो सकती है? इसके खिलाफ राम-नाम मर्ज को मिटाने के साथ ही साथ आदमी को भी शुद्ध बनाता है और इस तरह उसको ऊंचा उठाता है। यही राम-नाम का उपयोग है और यही उसकी मर्यादा है। (ह. से. 7.4.1946, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 300-01) मनु बहिन को दिए गए उपदेश में गांधीजी ने कहा है कि राम ही सच्चा, चिकित्सक है। जब तक राम मुझसे सेवा चाहेगा वह मुझे जीवित रखेगा; जब नहीं चाहेगा, तब वह मुझे अपने पास वापस बुला लेगा।

गांधीजी को इस पर गहरा विश्वास था कि यदि हृदय की गहराई में राम-नाम प्रविष्टि हो गया है तो वे रोग से नहीं मर सकते। हर एक आदमी को अपनी भूल के लिए कष्ट सहना पड़ता है और इसी कारण उन्हें। पीड़ा सहनी पड़ी। व्यक्ति की अंतिम सांस तक उसके ओठों पर राम-नाम होना चाहिए किंतु इसका उच्चारण तोते की तरह नहीं किया जाना चाहिए। इसे हृदय से निकालना चाहिए जैसा हनुमान के संबंध में था। जब सीताजी ने उन्हें एक मोतियों की माला भेंट की उन्होंने मोतियों को यह देखने के लिए तोड़ डाला कि उनमें राम-नाम लिखा है या नहीं? हम अपने शरीर को हनुमानजी के समान बलशाली बनाने में समर्थ नहीं हो सकते किंतु हम अपनी आत्मा को निश्चय ही उनके समान श्रेष्ठ बना सकते हैं। कोई व्यक्ति हनुमान की भक्ति का अनुभव कर सकता है यदि वह उसके लिए उत्सुक हो। यदि वह उतनी ऊंचाई तक नहीं पहुंच सकता, तो यही बहुत है कि उसने निष्ठापूर्ण प्रयत्न किया। प्रत्येक प्रयत्न को और उसके फल को भगवान के हाथ छोड़ दो। हमें इस शिक्षा का अनुकरण करने का पूरा प्रयास करना चाहिए। समस्त संसार में केवल एक सर्व-रोग-नाशिनी औषधि है और वह है राम-नाम किंतु उसका नाम तभी प्रभावशाली हो सकता है जब उसके संबंध में (निश्चित) नियमों से दृढ़तापूर्वक चिपके रहा जाए। (बापू-भाई मदर, फरवरी 1949, न.जी. प्र. मंदिर, पृ. 31-32, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 365) लेकिन राम-नाम जैसी रामबाण औषधि लेने में सतत जागृति नहीं है; तो राम-नाम व्यर्थ जाय और अनेक भ्रमों में एक भ्रम और बढ़ा दे। (हि. न. जी. 2.6.1946, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन पृ. 703) गांधी स्पष्ट- कहते हैं कि राम-नाम को मैं सब बीमारियों की रामबाण दवा कहता हूं, वह राम न तो ऐतिहासिक राम है और न उन लोगों का राम है, जो उसका इस्तेमाल जादू टोने के लिए करते हैं। सब रोगों की रामबाण दवा के रूप में वे जिस राम का नाम सुझाते हैं, वह तो खुद ईश्वर ही है, जिसके नाम का जाप करके भक्तों ने शुद्धि और शांति पाई है और उनका यह दावा है कि राम-नाम सभी बीमारियों की, फिर

वे तन की हों, मन की या आत्मिक हों, एक ही अचूक दवा है। इसमें शक नहीं कि डॉक्टरों या वैद्यों से शरीर की बीमारियों का इलाज कराया जा सकता है। लेकिन राम-नाम तो आदमी को खुद ही अपना वैद्य या डॉक्टर बना देता है और उसे अपने को अंदर से निरोग बनाने की संजीवनी प्राप्त करा देता है। जब कोई बीमारी इस हद तक पहुंच जाती है कि उसे मिटाना संभव नहीं रहता, उस वक्त भी राम-नाम व्यक्ति को उसे शांत और स्वस्थ भाव से सह लेने की शक्ति देता है। जिस आदमी को राम-नाम में श्रद्धा है, वह जैसे-तैसे अपनी जिंदगी के दिन बढ़ाने के लिए नामी-गिरामी डॉक्टरों और वैद्यों के हाथ टेक देने के बाद लेने की चीज भी नहीं। वह तो आदमी को डॉक्टरों और वैद्यों के बिना भी अपना काम चला सकने वाला बनाने की चीज है। राम-नाम में श्रद्धा रखने वालों के लिए वही उसकी पहेली और आखिरी दवा है। (ह. से. 2.6.1946, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 706) उन्होंने कहा कि जब तक खुद इलाज करने वाले में राम-नाम की सिद्धि न आ जाए, तब तक राम-नाम रूपी इलाज को एकमत आम नहीं बनाया जा सकता। (हरिजन, 11.08.1946, गांधीजी, राम-नाम, पृ. 42)। उस शास्त्र में हम गहरे पैठे ही नहीं हैं। करोड़ों को ध्यान में रखकर उस पर सोचा नहीं गया है। सभी शुभ साहसों की तरह उसके पीछे भी तप की ताकत जरूरी है।

'मनुष्य का भौतिक शरीर पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु नाम के पांच तत्त्वों से बना है, जो पंच महाभूत कहलाते हैं। इनमें से तेज तत्त्व शरीर को शक्ति पहुंचाता है। आत्मा उसको चैतन्य प्रदान करती है।' 'इन सब में सबसे जरूरी चीज हवा है। आदमी बिना खाए कई हफ्तों तक जी सकता है, पानी के बिना भी वह कुछ घंटे बिता सकता है, लेकिन हवा के बिना तो कुछ ही मिनटों में उसकी देह का अंत हो सकता है इसलिए ईश्वर ने हवा को सबके लिए सुलभ बनाया है। अन्न और पानी की तंगी कभी-कभी पैदा हो सकती है, हवा की कभी नहीं। ऐसा होते हुए भी हम बेवकूफों की तरह अपने घरों के अंदर खिड़की और दरवाजे बंद करके सोते हैं और ईश्वर की प्रत्यक्ष प्रसादी-सी ताजी और साफ हवा से फायदा नहीं उठाते। अगर चोरों का डर लगता है तो रात में अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियां बंद रखिए, लेकिन खुद अपने को उनमें बंद रखने की क्या जरूरत है?' 'साफ और ताजी हवा पाने के लिए आदमी को खुले में सोना चाहिए लेकिन खुले में धूल और गंदगी से भरी हवा लेने का कोई मतलब नहीं। इसलिए आप जिस जगह सोयें, वहां धूल और गंदगी नहीं होनी चाहिए। धूल और गंदगी से बचने के लिए कुछ लोग सिर से पैर तक ओढ़ लेने के आदी होते हैं। यह तो बीमारी से भी बदतर इलाज हुआ। दूसरी बुरी आदत मुंह से सांस लेने की है। नथुनों की राह फेफड़ों में पहुंचने वाली हवा छनकर साफ हो जाती है और उसे जितना गरम होना चाहिए उतनी गरम भी हो जाती है।' जो आदमी जहां चाहे वहां और जिस तरह चाहे उस तरह थूककर, कूड़ा-करकट डालकर या गंदगी फैलाकर या दूसरे तरीकों से हवा को प्रदूषित करता है, वह कुदरत का और मनुष्यों का गुनहगार है। मनुष्य का शरीर ईश्वर का मंदिर है। मंदिर में जाने वाली हवा को जो गंदी करता है, वह मंदिर को भी बिगाड़ता है। उसका राम-नाम लेना फजूल है। (हरिजन, 07.04.1946, गांधीजी, राम-नाम, पृ. 38-39)।

एक ज्ञानी ने तो गांधीजी की बात पढ़कर यह लिखा है कि राम-नाम ऐसा कीमिया है, जो शरीर को बदल डालता है। वीर्य को इकट्ठा कर, दबा कर रखे हुए धन के समान है। उसमें से अमोघ शक्ति पैदा करने वाला तो राम-नाम ही है। खाली संग्रह करने से तो घबराहट होती है। किसी भी समय उसका पतन हो सकता है लेकिन राम-नाम को स्पर्श से वह वीर्य गतिमान हो जाता है। शरीर के पोषण के लिए शुद्ध खून जरूरी है। आत्मा के पोषण के लिए शुद्ध वीर्य शक्ति की जरूरत है। इसे दिव्य शक्ति कह सकते हैं। यह शक्ति सारी इंद्रियों की शिथिलता को मिटा सकती है इसलिए कहा गया है कि राम-नाम हृदय में बैठ जाए, तो नयी जिंदगी शुरू होती है। यह कानून जवानों, वृद्धों, औरतों सब पर लागू होता है। पश्चिम में भी यह ख्याल पाया जाता है। क्रिश्चियन साइंस का संप्रदाय बिलकुल यही नहीं, तो करीब-करीब इसी तरह की बात कहता है लेकिन मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान को ऐसे सहारे की जरूरत नहीं क्योंकि हिंदुस्तान में तो यह दिव्या विद्या पुराने जमाने से चली आ रही है। (हरिजन सेवक, 29.06.1947, गांधीजी, राम-नाम, पृ. 52)।

एक प्रश्नकर्ता जो सच्चिदानंद की जय के साथ डॉक्टरी इलाज भी लेते हैं वे 25 बरस से मिताहारी और युक्तानहार ले रहे हैं फिर भी बीमारी बनी हुई है। उन्होंने पूछा कि क्या इसे पूर्वजन्म की या इस जन्म की कम नसीबी कहा जाए। उन्होंने यह भी पूछा कि 125 वर्ष मनुष्य के जीवन जी सकने की बात करते हैं युक्तानहारी और मिताहारी महादेव भाई आपको ईश्वर-स्वरूप मानकर जीते थे फिर भी वे ब्लड़-प्रेशर के शिकार बनकर सदा के लिए चल बसे। भगवान का अवतार माने जाने वाले रामकृष्ण परमहंस क्षय जैसी खतरनाक बीमारी के शिकार होकर कैसे मर गए इस पर गांधीजी ने कहा कि कुछ लोग जिंदगी को प्रयोगशाला कहते हैं। कई लोगों के तर्जुबों को इकट्ठा करना चाहिए और उनमें से जानने लायक बात को लेकर आगे बढ़ना चाहिए लेकिन ऐसा करते हुए अगर कामयाबी न मिले, तो भी किसी को दोष नहीं दिया जा सकता। खुद को भी दोषी नहीं कहा जा सकता। नियम गलत है, यह करने की भी एकदम हिम्मत न करनी चाहिए लेकिन अगर हमारी बुद्धि को कोई नियम गलत मालूम हो, तो सही नियम कौन-सा है यह बताने की ताकत अपने में पैदा करके उसका प्रचार करना चाहिए। महादेव और रामकृष्ण परमहंस के बारे में आपने जो शंका उठाई उसका जवाब भी मेरी ऊपर की बात में आ जाता है। कुदरत के नियम को गलत कहने के बजाय यह कहना ज्यादा युक्तिसंगत मालूम होता है कि इन्होंने भी कहीं-न-कहीं भूल की होगी। नियम कोई मेरा बनाया हुआ नहीं है, वह तो कुदरत का नियम है; कई अनुभवी लोगों ने ऐसा कहा है और इसी बात को मानकर मैं चलने की कोशिश करता हूं। आखिरकार मनुष्य अपूर्ण प्राणी है और कोई अपूर्ण मनुष्य इसे कैसे जान सकता है? डॉक्टर इसे नहीं मानते। मानते भी हैं तो उसका दूसरा अर्थ करते हैं। इसका मुझ पर कोई असर नहीं होता। नियम की ऐसी करने पर भी मेरे कहने का यह मतलब नहीं होता, न निकाला जाना चाहिए कि इसके ऊपर के किसी व्यक्ति का महत्व कम होता है। (हरिजन, 04.08.1946, गांधीजी, राम-नाम, पृ. 44-45)। 29 जनवरी, 1948 को किशोर लाल को उन्होंने पत्र में लिखा कि इस बार किडनी और लिवर दोनों बिगड़े हैं। मेरी दृष्टि से यह राम-नाम में मेरे विश्वास के कच्चेपन की वजह से है। (राम-नाम, पृ. 55)।

एक मित्र ने लिखा कि क्या-कुदरती इलाज और विश्वास चिकित्सा एक है? मरीज को इलाज में श्रद्धा तो होनी ही चाहिए। मरिअम्मा देवी की पूजा कर बहुत से रोगी अच्छे हो जाते हैं। यह करामात सी लगती है फिर भी बहुत लोग मन्नते मांगते हैं। क्या हम कुदरती इलाज पर इसी प्रकार का विश्वास रखें। गांधीजी ने कहा कि इससे यह पता जरूर चलता है कि कुदरत बहुत से रोगियों को बिना किसी इलाज के भी अच्छा कर देती है। ये मिसालें यह भी दिखाती हैं कि हिंदुस्तान में वहम हमारी जिंदगी का कितना बड़ा हिस्सा बन गया है। कुदरती इलाज का मध्य बिंदु यानी राम-नाम तो वहम का दुश्मन है। यों खाली जबान से राम-नाम रटने से इलाज का कोई संबंध नहीं। विश्वास-चिकित्सा में यह माना जाता है कि रोगी अंध-विश्वास से अच्छा हो जाता है। यह मानना तो ईश्वर के नाम की हँसी उड़ाता है। राम-नाम सिर्फ कल्पना की चीज नहीं, उन्होंने कहा कि परमात्मा में ज्ञान के साथ विश्वास हो और उसके साथ-साथ कुदरत के नियमों का पालन किया जाए, तभी किसी दूसरी मदद के बिना रोगी बिलकुल अच्छा हो सकता है। उसूल यह है कि शरीर की सेहत तभी बिलकुल अच्छी हो सकती है, जब मन की सेहत पूरी-पूरी ठीक हो। और मन पूरा-पूरा ठीक तभी होता है, जब दिल पूरा-पूरा ठीक हो। यह वह दिल नहीं जिसे डॉक्टर छाती जांचने के यंत्र (स्टेथोस्कोप) से देखते हैं, बल्कि वह दिल है जो ईश्वर का घर है। कहा जाता है कि अगर कोई अपने अंदर के परमात्मा को पहचान ले, तो एक भी गंदा या फिजूल खयाल उसके मन में नहीं आ सकता। जहां विचार शुद्ध हों वहां बीमारी आ ही नहीं सकती। राम-नाम कोई अटकल पच्चू तजवीज नहीं है, और न कोई काम-चलाऊ चीज है। (राम-नाम, पृ. 46-47)।

एक मित्र ने पत्र में लिखा कि जिस्मानी बीमारियों के लिए रूहानी ताकत पर भरोसा करना मेरी समझ से बाहर है। गांधीजी कहते हैं कि दूसरी ताकतों की तरह रूहानी ताकत भी मनुष्य की सेवा के लिए है। सदियों से थोड़ी-बहुत सफलता के साथ शारीरिक रोगों को ठीक करने के लिए उसका उपयोग होता रहा है। अगर जिस्मानी बीमारियों के इलाज के लिए कामयाबी के साथ उसका इस्तेमाल हो सकता हो, तो उसका उपयोग न करना बहुत बड़ी गलती है क्योंकि आदमी जड़ तत्व भी है और आत्मा भी है और इन दोनों का एक-दूसरे पर असर होता है। सेवाग्राम आश्रम का एक कार्यकर्ता जिस पर पागलपन का दूसरा हमला हुआ था डॉक्टर की सलाह पर उसे जेल भेजना पड़ा। यह गांधीजी के लिए दुःखद प्रसंग था। वे अच्छे सेवक थे। लगन के साथ काम करते थे उन्हें मलेरिया हुआ था। कुनैन का उन्हें इंजेक्शन दिया गया था। इस पर गांधीजी से पूछा गया कि आप दावा करते हैं कि राम-नाम सब रोगों का रामबाण इलाज है तो फिर आपका वह राम-नाम कहां गया? सच है कि इस मामले में मैं नाकाम रहा हूं, फिर भी मैं कहता हूं कि राम-नाम में मेरी श्रद्धा ज्यों की त्यों बनी हुई है। राम-नाम कभी नाकाम नहीं हो सकता। नाकामी का मतलब तो यही है कि हममें कहीं कोई खामी है। इस नाकामी की वजह को हमें अपने अंदर ही ढूंढना चाहिए। (राम-नाम, पृ. 49-50)।

राम-नाम का अर्थ ईश्वर नाम है, मंत्र भी वही फल देता है। जिस नाम का अभ्यास हो उसका स्मरण करना चाहिए। निवकार संसार में चित्र-वृत्ति का निरोध-निर्विकार बनना शक्य है, चेष्टा करना कर्तव्य है। निर्विकार होने की साधना राजा राम-नाम है। प्रातः काल उठते ही

राम-नाम लेना और राम से कहना 'मुझे निवकार कर'। यह प्रार्थना हार्दिक होनी चाहिए। (रामनाथ सुमन पृ.248-49)

दशरथ-नंदन अविनाशी कैसे हो सकते हैं? एक प्रश्न कि यह सवाल स्वयं तुलसीदासजी ने उठाया था और उन्होंने ही इसका जवाब भी दिया था। गांधीजी कहते हैं कि ऐसे सवालों का जवाब बुद्धि से नहीं दिया जा सकता; यह दिल की बात है। 'दिल की बात दिल ही जाने।' शुरू में गांधीजी ने राम को सीता-पति के रूप में पाया लेकिन जैसे-जैसे उनका ज्ञान और अनुभव बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनका राम अविनाशी और सर्वव्यापी बना है, और है। इसका मतलब यह है कि यह सीता पति बना रहा साथ ही सीता-पति का अर्थ भी विस्तृत हो गया। जिसका राम दशरथ राजा का कुमार ही रहा, उसका राम सर्वव्यापी नहीं हो सकता, लेकिन सर्वव्यापी राम के पिता दशरथ भी सर्वव्यापी बन जाते हैं। कहा जा सकता है कि यह सब मनमानी है- 'जैसी जिसकी भावना, वैसा उसको होय।' गांधीजी कहते हैं कि अलग धर्म तो पड़े ही हैं, और उन्हें अलग मानकर हम एक-दूसरे से लड़ते हैं और जब थक जाते है, तो नास्तिक बन जाते हैं और फिर सिवा 'हम' के नश्वर रहता है, न कुछ और लेकिन जब समझ जाते हैं, तो हम कुछ नहीं रह जाते, ईश्वर ही सब कुछ बन जाता है- वह दशरथ नंदन सीतापति, भरत व लक्ष्मण का भाई है, और नहीं भी। (रामनाथ सुमन नीति-धर्म-दर्शन, सं.गां. वा. खंड-9, पृ. 99)।

हम पापों का प्रायश्चित तो तपस्या के द्वारा कर सकते हैं। पाप का प्रक्षलन गायत्री के जप से हो सकता है पर उसके लिए गांधीजी अवकाश नहीं देखते। इन तमाम महाजंजालों से छूटने का रामबाण उपाय तुलसीदास ने राम-नाम बताया है- राम-नाम के प्रताप से पत्थर तैरने लगे। राम-नाम के बल से बानर सेना ने रावण के छक्के छुड़ा दिए, राम-नाम के सहारे हनुमान ने पर्वत उठा लिया और राक्षसों से घर अनेक वर्ष रहने पर भी सीता अपना सतीत्व बचा सकीं। भरत राम-नाम का जाप चौदह वर्ष करते रहे इसी कारण तुलसीदास ने कहा कलिकाल का मल धो डालने के लिए राम-नाम जपो। जिह्वा और हृदय को एक रस करके राम-नाम लेना चाहिए। (हि.न.जी.30.4.1925 रामनाथ सुमन 249-50)

यदि राम-नाम का स्मरण हृदय से किया जाए तो उससे अवश्य ही आत्म साक्षात्कार होगा। आत्म साक्षात्कार का अर्थ है सत्य से साक्षात्कार (ह. से. 13.10.1933, रामनाथ सुमन नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 190) राम-नाम राम-बाण है, यह अटल विश्वास है। एक पत्र में उन्होंने लिखा कि सर्वत्र अंधकार दिखाई देता हो तो राम-नाम रटन करते ही रहना। इससे भला ही होगा। (बापू के पत्रः कुमारी प्रेमा बहिन कंटक के नाम, पृ. 291, न. जी. प्र. मं.) अगर लाख प्रयत्न करने पर भी मनुष्य का मन अपवित्र रहे, तो राम-नाम ही उसका एकमात्र आधार होना चाहिए। (रामनाथ सुमन नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 298) उनका मानना है कि राम-नाम का अमोघ मंत्र ही वह जादुई चीज है जो डर को भगा सकती है। अगर राम-नाम में आपको विश्वास नहीं है, आप उसे नहीं जानते, लेकिन उसके बिना आप एक सांस भी नहीं ले सकते। आप उसे चाहे ईश्वर कहिए, अल्लाह कहिए, गाड कहिए या अहुर मज्द कहिए। संसार में जितने मनुष्य हैं, उतने ही उसके असंख्य नाम हैं। विश्वास में उसके जैसा अन्य कोई नहीं है। वही एक महान विभु

है। संसार में उससे बड़ा कोई नहीं। वह अनादि, अनंत, निरंजन, निराकार है। मेरा राम ऐसा है। केवल वही मेरा स्वामी और मालिक है। राम पवित्र लोगों के हृदय में हमेशा रहता है। जिस तरह बंगाल में श्री चैतन्य और श्री रामकृष्ण का नाम प्रसिद्ध है उसी प्रकार कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रत्येक हिंदू घर जिनके नाम से परिचित हैं, उन भक्त शिरोमणि तुलसीदास ने अपने अमर महाकाव्य रामायण में हमको राम-नाम का मंत्र दिया है। अगर आप राम-नाम से डरकर चलें तो आपको संसार में राजा या रंक किसी से डरने की जरूरत न रह जाए। राम किसी मनुष्य का नहीं भगवान का ही नाम है। (ह. से. 16.3.1947, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 366) वे कहते है कि नाम जपने के पीछे तू भूत की तरह पड़े रहना। कहीं से सहायता नहीं मिले, तब भी इससे जरूर मिलेगी। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ.435)

राम-नाम खजाना है, जो पूर्ण है यह समस्त रोगों का इलाज है इसे स्पष्ट करते हुए गांधीजी कहते हैं कि राम-नाम सिर्फ थोड़े-से विशिष्ट व्यक्तियों के लिए नहीं है। वह सबके लिए है जो उसका नाम लेता है, वह अपने लिए एक बड़ा खजाना जमा करता है। यह ऐसा खजाना है जो कभी नहीं चुकता। इसमें से जितना निकालें उतना ही बढ़ता जाता है। इसका अंत नहीं है। जैसा कि उपनिषद कहता है, पूर्ण में से पूर्ण निकालें तो पूर्ण ही शेष रह जाता है। वैसे ही राम-नाम समस्त रोगों का इलाज है, फिर चाहे वे शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक हो। राम-नाम ईश्वर के कई नामों में से एक है। सच बात यह है कि दुनिया में जितने इनसान हैं, उतने ही ईश्वर के नाम हैं। आप राम के स्थान पर कृष्ण कहें या ईश्वर के अगणित नामों में से कोई और नाम लें, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। (ह. से. 16.6.1946, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 304) राम-नाम तो भ्रम का शत्रु है। जो बुराई करने से नहीं झिझकते, वे राम-नाम का नाजायज फायदा उठाएंगे। राम-नाम सिर्फ कल्पना की वस्तु नहीं। उसे तो हृदय से निकलना चाहिए। परमात्मा में ज्ञान-सहित विश्वास हो और उसके साथ-साथ प्रति के नियमों का पालन किया जाय, तभी किसी अन्य की सहायता बिना रोगी बिलकुल अच्छा हो सकता है। यदि कोई अपने अंदर परमात्मा को पहचान ले तो एक भी गंदा या व्यर्थ विचार मन में नहीं आ सकता। मुझे राम-नाम के सिवा पवित्रता पाने का कोई और तरीका मालूम नहीं। संसार में हर जगह प्राचीन ऋषि भी इसी रास्ते पर चले हैं। वे खुदा के बंदे थे, कोई वहमी या ढोंगी आदमी नहीं। मैं यह नहीं कहता कि राम-नाम मेरी ही शोध है। जहां तक मैं जानता हूं, राम-नाम ईसाई धर्म से भी पुराना है। (ह. से. 9.6.1946, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 303) मन में आने वाले बुरे विचारों के परिशोधन के लिए गांधीजी शर्त रखते हैं कि राम-नाम दिल से निकले। एक पत्र में उन्होंने लिखा कि अगर आपके मन में बुरे विचार आते हैं; क्यों काम और लोभ आपको सताते हैं? अगर ऐसा है तो राम-नाम जैसा काई जादू नहीं मगर राम-नाम का जप निरंतर चलता रहे तो वह एक दिन आपके कष्ट से हृदय तक उतर आएगा और वह रामबाण सिद्ध होगा; वह आपके समस्त भ्रम मिटा देगा; झूठे मोह और अज्ञान को छुड़ा देगा तब आप समझ जाएंगे कि आप कितने पागल थे, जो अपने बाल-बच्चों के लिए करोड़ों की इच्छा करते थे, बजाय इसके कि आप उन्हें राम-नाम का वह खजाना देते, जिसका मूल्य कोई नहीं लगा सकता; जो हमें भटकने नहीं देता और जो मुक्तिदाता है। जो करोड़ों का पति है, उसे

हृदय में रखकर आया हूं। इसके बाद तुम भी चैन से रहोगी, मैं भी चैन से रहूंगा। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 304) मंदिर क्या है? मूर्ति क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए गांधीजी कहते हैं कि हम मंदिरों में धातु या पत्थर की मूर्ति को नहीं, बल्कि उसमें रहने वाले भगवान को पूजने जाते हैं। मूर्ति तो आदमी जैसी बनाता है, वैसी बन जाती है। मूर्ति में पुजारी जिस पवित्रता की प्रतिष्ठा करता है, उसके सिवा उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती इसलिए प्रार्थना के समय बच्चों समेत सभी को पूरी शांति रखनी चाहिए। (ह. से. 5.5.1946, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 701) जो आदमी हृदय से राम-नाम लेता है, वह आसानी से स्वतंत्र पर नियंत्रण रख सकता है और अनुशासन में रह सकता है। उसके लिए स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों का पालन करना सरल हो जाएगा। उसका जीवन सहज भाव से बीत सकेगा, उसमें कोई विषमता न होगी। वह किसी को सताना या दुःख पहुंचाना पसंद नहीं करेगा। दूसरों के दुःखों को मिटाने के लिए उन्हें सुख पहुंचाने के लिए स्वयं कष्ट उठा लेना उसका स्वभाव हो जाएगा और उसकी हमेशा के लिए एक अमिट सुख मिलेगा; उसका मन एक स्वच्छ और अमर सुख से भर जाएगा। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 704-05) गांधीजी कहते हैं कि आप लगे रहिए और जब तक काम करते हैं, तब तक सारा समय मन-ही-मन में राम-नाम लेते रहिए। इस तरह करने से एक दिन ऐसा भी आएगा जब राम-नाम आपका सोते-जगते का साथी बन जाएगा और उस दशा में आप ईश्वर की कृपा से तन, मन और आत्मा से पूरे-पूरे स्वस्थ बन जाएंगे। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ.705)

रामधुन में राजाराम, सीताराम रटा जाता है, वह दशरथ-नंदन राम नहीं तो कौन है? तुलसीदासजी ने उसका उत्तर दिया है, गांधीजी उनसे सहमत हैं और इसको विस्तार देते हुए स्पष्ट करते हैं कि राम से राम-नाम बड़ा है। हिंदू धर्म महासागर है। उसमें अनेक रत्न भरे हैं। जितने गहरे पानी में जाओ, उतने अधिक रत्न मिलते हैं। हिंदू धर्म में ईश्वर के अनेक नाम हैं। सैकड़ों लोग रामकृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्ति कहते हैं और मानते हैं कि जो राम दशरथ के पुत्र माने जाते हैं, वही ईश्वर के रूप में पृथ्वी पर आए और यह कि उनकी पूजा से आदमी मुक्ति पाता है। ऐसा ही कृष्ण के लिए है। इतिहास, कल्पना और शुद्ध सत्य आपस में इतने ओतप्रोत हैं कि उन्हें अलग करना लगभग असंभव है। गांधीजी उन सबमें निराकार, सर्वज्ञ राम को ही देखते हैं। उनके लिए राम सीतापति दशरथ-नंदन कहलाते हुए भी सर्वशक्तिमान ईश्वर ही है, जिसका नाम हृदय में होने से सब दुःखों का नाश हो जाता है। (ह. से. 2.6.1946, रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन पृ. 363) राम-नाम और ऊकार एक ही चीज है। जप जपते हुए मन स्थिर नहीं रहता, इसीलिए तो तुलसीदास ने राम महिमा गाई है। यदि कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक जप करेगा, तो अंत में वह स्थिर चित्त अवश्य होगा, ऐसी सब शास्त्रों की प्रतिज्ञा है और ऐसा जप करने वालों का अनुभव है। जप करते समय आँख मूंदना ही काफी होगा। भृकुटि में ध्यान रखा जाए, तो अवश्य अच्छा है। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ.439-40) वास्तव में राम-नाम जाने-अनजाने हमेशा ही होना चाहिए, जैसे संगीत में तंबूरा पर हाथ जो काम करते हों उसमें हम एक ध्यान न हो सकें तो भी राम-नाम का इच्छापूर्वक रटन होना चाहिए। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन, पृ. 654) राम-नाम उन्हीं की मदद करता है, जो उसे जपने की शर्तें पूरी

करते हैं। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन पृ. 699) दूसरी ओर गांधीजी कहते हैं कि राम-नाम-जप के साथ-साथ राम के योग्य सेवा न की जाए, तो वह व्यर्थ जाता है। प्रार्थना केवल आध्यात्मिक मुक्ति पाने का साधन नहीं है, बल्कि इन सांसारिक बंधनों से छूटने का भी जरिया है। बड़े में छोटे का समावेश हो जाता है। स्थितप्रज्ञ के भाव इससे आते हैं स्थितप्रज्ञ वह है जो अपनी इंद्रियों को इंद्रियार्थों से हटाकर उन्हें आत्मा की ढ़ाल के नीचे छुपा लेता है, जिस तरह कछुआ अपने अंगों को अपनी ढ़ाल (कड़े आवरण) के नीचे छिपाता है। लाखों आदमियों द्वारा सच्चे हृदय और एक ताल, एकलय से गाए जाने वाली रामधुन की शक्ति सैनिक शक्ति के दिखावे से बिलकुल अलग और कई गुणा श्रेष्ठ होती है। (रामनाथ सुमन, नीति-धर्म-दर्शन पृ.718)

●

★ हरिजन सेवक को संक्षेप में ह.से लिखा गया है।

गांधी के नैतिक मूल्यों का छायावादोत्तर हिंदी काव्य पर प्रभाव

श्रीनिवास पांडेय

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी बहुमुखी प्रतिभा एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी महापुरुष थे। उन्होंने भारत की आध्यात्मिक चिंतन पद्धति एवं सांस्कृतिक परंपरा का न केवल अध्ययन किया था, अपितु अपने युग के बदले हुए परिवेश में उन्हें नवीन कलेवर प्रदान कर रहे उस जीवंत स्वरूप प्रदान किया और उन नैतिक मूल्यों का समकालीन जीवन संदर्भों में अत्यंत सार्थक प्रयोग किया। उनके नैतिक मूल्यों की आधार भूमि भारतीय ज्ञान एवं चिंतन परंपरा थी फिर भी उन्होंने पाश्चात्य चिंतन परंपरा के सारभूत तत्वों का भी संतुलित उपयोग कर उन्हें नवीन स्वरूप प्रदान किया। वे भारतीय चिंतन परंपरा एवं सामाजिक रूढ़ियों में व्याप्त जर्जर मूल्यों को छोड़ने का अपार साहस रखते थे। वे अपनी जड़ों से जुड़े हुए होने के बावजूद किन्ही संकीर्ण दीवारों एवं तंग विचारों से आबद्ध नहीं रहे। यही कारण है कि उनकी चिंतन पद्धति एवं उनके द्वारा स्थापित नैतिक मूल्यों का उनके युग एवं उसके परवर्ती काल में भी अनेक लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके विचारों से प्रभावित होकर छायावादोत्तर काल के अनेक कृतियों ने उनके नैतिक मूल्यों की अपने-अपने ढंग से मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

महात्मा गांधी द्वारा समर्थित नैतिक मूल्यों में दया, का केंद्रीय महत्व है। दया, करूणा एवं परोपकार जैसे भाव इस केंद्रीय तत्व में समाहित हैं। वे अपने-अपने व्याख्यानों एवं लेखों में दया के महत्व पर जोर देते थे। इस दया भूख की अभिव्यक्ति राष्ट्रकवि दिनकर ने इन शब्दों में की है-

'ऊंच नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है
दया धर्म जिसमें हो, सबसे वही, पूज्य प्राणी है।"

स्पष्ट है कि दिनकरजी महात्मा गांधी के स्वर में स्वर मिलाते हुए लिखते हैं कि वही प्राणी जगत में आदरणीय है, जिसमें सभी जीवों के प्रति दया का भाव हो। उसे अपने परमात्मा की झलक हर प्राणी में मिले। ऐसी सोच रखने वाला मनुष्य श्रेष्ठ ज्ञानी कहने का अधिकारी है। नरेंद्र शर्मा राम नाम को ब्रह्मज्ञान का प्रतीक मानते हैं-

'राम नाम पुण्यात्माओं का अंत समय का धन है
ब्रह्मज्ञान का है प्रतीक, ऐसा अनमोल रतन है।'[2]

महात्मा गांधी को ब्रह्मज्ञान का प्रतीक 'राम नाम' तुलसी के रामायण से मिला था। उन्होंने अपनी आत्मकथा, के प्रारंभ में स्पष्ट लिखा है कि उनके मन पर गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' जिसे वे तुलसी रामायण कहते थे, का गहरा प्रभाव बचपन में ही पड़ गया था- 'पर जिस चीज का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा, वह था रामायण का परायण। यह रामायण-श्रवण रामायण पर मेरे आंतरिक प्रेम की बुनियाद है।'

सत्य : महात्मा गांधी के नैतिक मूल्यों में 'सत्य' की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय वाङ्मय में सत्य की सम्यक प्रतिष्ठा की गई है। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक चरित्र से महात्मा गांधी बाल्यावस्था में ही प्रभावित हो गए थे। इनका सत्य-ईश्वर के समान महत्वपूर्ण है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है कि 'सत्य न दूसर धर्म समाना' इस सत्य के बारे में गोपालशरण सिंह लिखते हैं-

'सत्य ध्येय था, सत्य साध्य था तथा सत्य था साधन
सत्यदेव का ही होता था, वहां सदा आराधन।' [3]

स्पष्ट है कि उपर्युक्त पंक्तियों में महात्मा गांधी के विचार एवं सत्य के प्रति उनकी निष्ठा की स्पष्ट एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। गांधी के यहां सत्य साहस भी था और साधन भी था। सत्य का महत्व उनके कर्म में अथा से लेकर इति तक व्याप्त था। बालकृष्ण शर्मा नवीन ने भी सत्य के महत्व पर प्रकाश डाला है-

'सदा एक ही वस्तु पूज्य है, वह है सत्य, असत्य नहीं
असत्य अर्चना का इस जग में, हो सकता है तथ्य नहीं।'[4]

अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'उर्मिला' में नवीनजी ने अनेक स्थानों पर सत्य की प्रतिष्ठा की है। वे जीवन में सत्य को ही पूज्य एवं वरेण्य मानते हैं, असत्य को वे इस जगत में अनुपयोगी एवं निरर्थक समझते हैं।

'उर्मिला' काव्य में एक और महत्वपूर्ण प्रसंग में नवीनजी ने पौराणिक आख्यानों के माध्यम से सत्य की प्रतिष्ठा की है

'सत्य पराङ्गमुख सदा त्याज्य है,
रावण हो या शूर्पणखा
जो सन्मार्ग गमन करता है
वही हमारा बंधु सखा।'[5]

'स्वर्ण धूलि' में छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत भी सत्य के महत्व को प्रतिष्ठित करते हुए लिखते हैं कि भौतिक जगत के आकर्षण से मुक्त व्यक्ति ही अपने जीवन में सत्याचरण कर सकता है-

'वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज तन प्रजावाद जिसका मन।'[6]

'संशय की एक रात' नामक काव्य नाटक मे नरेश मेहता के राम संशय गहरे क्षणों में भी सत्य की स्थापना के प्रति चिंतित हैं-

'मैं सत्य चाहता हूं/ युद्ध से नहीं/खड्ग से भी नहीं,
मानव का मानव से सत्य चाहता हूं।' [7]

यहां पर गांधीजी के विचारों की स्पष्ट झलक मिलती है कि युद्ध के लिए सन्नद्ध राम भी रावण के प्रति भेदभाव से युद्ध नहीं चाहते। वे बिना युद्ध के सत्य को मानव जीवन में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं लेकिन अंत में विवश होकर उन्हें युद्ध करना पड़ता है।

श्याम नारायण पांडेय अपने प्रसिद्ध काव्य 'झांसी की रानी' में असत्य के विनाश की घोषणा करते हैं और स्वधर्म की स्थापना में सत्य के महत्व को स्वीकार करते हैं-

'सत्य धर्म पर चलो, असत्य का विनाश हो
नम्र भाव जग पड़े, स्वधर्म का प्रकाश हो।[8]

'जन नायक' काव्य के रचयिता रघुवीर शरण मिश्र के अनुसार सत्य परेशान हो सकता है, पराजित नहीं हो सकता, जैसे शास्त्र वचनों को अपने काव्य में वाणी प्रदान की है, यहां भी गांधी का समग्र चिंतन परलक्षित होता है-

'सत्य टंगे शूली पर चाहे, लेकिन पूजा जाएगा
सत के आगे अन्यायों का, मस्तक न उठ पाएगा
मंजिल पर चलने वाले के चरणों में दीपक जलते हैं
सत्यवान के साथ तिमिर में, ईश्वर दीप से जलते हैं।[9]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि प्रबल आत्मबल से संपन्न निडर व्यक्ति ही सत्य मार्ग पर चल सकता है, क्योंकि सत्य के अनुयायी के मार्ग में कदम-कदम पर कांटे गड़े होते हैं इसलिए उसमें यह आत्मविश्वास होना आवश्यक है कि भले ही उसे शूली पर चढ़ना पड़े परंतु अंततः अन्याय का सिर नीचा ही होगा। सत्यमार्ग के पथिक के साथ सदा ईश्वरीय शक्ति सक्रिय रहती है।

गांधीजी आस्थावादी व्यक्ति थे। उनके मन में ईश्वर (राम) के प्रति गहरी निष्ठा थी। इस संदर्भ में रघुवीर शरण मिश्र की पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

'तन की पूजा छोड़ो, जोड़ो प्रभु से नाता
नश्वर यह संसार एक दिन सब मर जाता
शांति यहीं और सुख यहीं और यहीं सुख धाम है
रामनाम सब लिखो पढ़ो, यह सत्य नाम है।'[10]

स्पष्ट है कि इस नश्वर संसार को सर्वस्व मानने वाला पुरुष ईश्वर की शाश्वत सत्ता को हृदय से स्वीकार नहीं कर पाता। आस्थावान मनुष्य को इस सत्य को स्वीकार करना पड़ेगा कि 'राम नाम पुण्यात्माओं का अंत समय का धन है।' भारतीय आध्यात्मिक चिंतन परंपरा में लौकिक जगत के साथ-साथ सर्वत्र अलौकिक जगत की चर्चा की गई है। 'ब्रह्म सत्यं जगत

मिथ्या' की अवधारणा की भारतीय दार्शनिकों ने तरह-तरह से व्याख्याएं की हैं। एक बात सर्वमान्य है कि भारतीय चिंतन परंपरा लौकिक जीवन की भौतिक उपलब्धियों को ही सर्वस्व नहीं मानता यही विचार गांधीजी के यहां अनेक रूपों में व्यक्त हुआ है, जिसकी अनुगूंज छायावादोत्तर काल के अनेक कवियों में दिखाई पड़ती है।

अहिंसा : महात्मा गांधी सत्य एवं अहिंसा को एक दूसरे का पूरक मानते थे। उनका मानना था कि 'अहिंसा' के मूल में घृणा, द्वेष एवं वैमनस्य है, जिससे मानव का कल्याण संभव नहीं है-

'हिंसा से हिंसा न जीतती, विजय अहिंसा से ही होती
मोती हंसा चुगा करते हैं, काग नहीं चुनते मोती।' [11]

उपर्युक्त पंक्तियों में रघुवीर शरण मिश्र गांधीजी के विचारों का वाणी देते हैं कि विश्व में हिंसा के द्वारा शांति एवं मैत्री भाव स्थापित नहीं हो सकता। विवेकवान मनुष्य शांति का ही वरण करते हैं अतः वह अहिंसा का सहारा लेता है। इस संदर्भ में माखनलालजी की पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

'हिंसा और घृणा दोनों ही/हैं मेरे मजहब में पाप
दोनों मेरे साथ नहीं हैं/ होते करता पश्चाताप।'[12]

माखनलाल चतुर्वेदीजी भारतीय धर्म व्यवस्था में घृणा नफरत, हिंसा, द्वेष एवं वैमनस्य को महापाप समझते हैं। इस अहिंसा के अवलंबन हेतु व्यक्ति में संचय आवश्यक है। संयम्-ब्रह्मचर्य से भला है। इसके महत्व पर निम्न पंक्तियों पर प्रकाश डाला गया है-

ब्रह्मचर्य व्रत बिना विश्व में, दुःखों से उद्धार नहीं है
संयम बिन न सुख मिलता है, जीवन का विस्तार नहीं है।'[13]

यम, नियम एवं संयम का महत्व भारतीय वाङ्मय में सर्वत्र विद्यमान है, विशेष करके पंतजलि के योगसूत्र में। 'ब्रह्मचर्य' के महत्व एवं प्रयोग संबंधी गांधी के विचार सर्वविदित हैं।

सर्वोदय की अवधारणा : गांधीजी के नैतिक मूल्यों में सर्वोदय की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। सर्वोदय व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति सर्वजन के हित में ही अपना हित समझता है। यह अद्वैत वेदांत का आधुनिक रूपांतरण है। इसी अवधारणा के भीतर सामाजिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समरसता, अछूतोद्धार, शराबबंदी, मूलभूत शिक्षा का अधिकार, स्वच्छता अभियान, स्वास्थ्य सुविधाएं, नारी शिक्षा एवं उत्थान आदि अनेक तत्व समाहित हैं।

सर्वजन सुखाय एवं सर्वजनहिताय का भाव सर्वोदय की अवधारणा में समाहित है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया' भारतीय चिंतन धारा का प्रमुख लक्ष्य है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' का भाव भी सर्वोदय की अवधारणा में अंतर्निहित है। महात्मा गांधी की सर्वोदय की अवधारणा अत्यंत व्यापक, विस्तृत एवं बहुआयामी है। भारतीय चिंतनधारा को नए तर्कों से समन्वित करके गांधीजी को उसे अभिनव स्वरूप प्रदान कर समकालीन परिवेश के लिए अनुकूल एवं उपयोगी बनाया। शोषणवृत्ति का त्याग एवं अपरिग्रह, त्याग एवं संचय की प्रवृत्ति छुआछूत का प्रभाव

एंव ऊंच-नीच का भेद, निष्काम कर्म एवं सेवा भाव का निरूपण तथा नारी शिक्षा एवं उनका उत्थान आदि अनेक तत्व इसे सर्वोदय की अवधारणा के प्रमुख घटक तत्व हैं।

भारतीय जीवन पद्धति में अपरिग्रह अर्थात अधिकाधिक संचय करने की प्रवृत्ति का त्याग करना गांधीजी विचार का प्रमुख तत्व है। मिलिंदजी का कथन इस संदर्भ में दृष्टव्य है-

'उन शोषित पीड़ित दलितों की सेवा में मर-खप जाने में
गांधी पथ की खोज मिलेगी, अपरिग्रह के अपनाने में।'[14]

अभावग्रस्त दीन-दुखियों की सेवा करना मनुष्य का परम धर्म है। दरिद्रनारायण की परिकल्पना हमारे भारतीय चिंतन का प्रमुख तत्व है। इसी भाव को जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद ने व्यक्त किया है। इससे विश्व जीवन में त्याग एवं संचय आवश्यक है। इस संदर्भ में नवीनजी की निम्न पंक्तियां अत्यंत विचारणीय हैं-

'भौतिकता की चाह भयंकर है जीवन विकार राजन
संचय नहीं अपितु जीवन में है नित-त्याग राजन।'[15]

भारतीय अध्यात्म चिंतन की मूल भावना है कि हर आत्मा उसी परमपिता की संतान है। सबका मालिक या पिता परमात्मा है। सभी प्राणी उसके भाई-बंधु हैं, फिर छुआ-छूत एवं ऊंच-नीच का भेदभाव क्यों?

'छुआ-छूत का भेद मिटेगा, वर्ना मेरी लाश चलेगी,
या तो यहां एकता होगी, वर्ना मेरी चिता जलेगी।'[16]

गांधीजी के चिंतन में ये भाव प्रमुखता से उभरकर आए हैं। इसे रघुवीर शरण मिश्र ने सशक्त वाणी प्रदान की है। गांधी 'गीता' एवं तुलसी रामायण से अत्यधिक प्रभावित थे। वे गीता में प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग को अपने जीवन में अत्यंत उपयोगी मानते थे। कर्म की इस महत्ता को नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' में व्यक्त किया है-

मेरे पुत्र! संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है/ यश जिसकी छाया है
उस कर्म को बढ़ा।'[17]

यह संदेश महाराजा दशरथ की आत्मा राम को देती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त गांधीजी के विचारों से अत्यंत गहराई से प्रभावित थे। उनकी प्रमुख रचनाओं में अनेक स्थल पर गांधी वाणी अभिव्यक्त हुई है। 'जयभारत' में वे स्पष्ट लिखते हैं-

'कर्म कर तू होकर निष्काम
जयाजय अर्पण कर मुझ को
नहीं फिर कुछ चिंता, तुझको।'[18]

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' में उपेक्षित उर्मिला के चरित्र का अत्यंत विस्तृत एवं हृदय स्पर्शी चित्रण किया है। अपने पति लक्ष्मण के अभाव से उर्मिला चौदह वर्षों तक प्रिय विरह की पीड़ा को झेलती रहीं। इस स्त्री पात्र के चरित्र निर्माण में गांधीजी की नारी विषयक मान्यताओं एवं विचारों की अत्यंत प्रेरक भूमिका रही है।

समग्रतः - युग पुरुष महात्मा गांधी ने अपने विचारों द्वारा हमारे देश में युगांतकारी परिवर्तन किया। उन्होंने न केवल विचारों में अपितु अपने आचरण एवं व्यवहारों में भी अपने सिद्धांतों को जिया। बहुत कम लोग होते हैं जिनकी कथनी एवं करनी में एकता होती है। उनके सद्विचार एवं सद्आचरण से न केवल देश के अपितु विदेश के भी अनेक लोग प्रभावित हुए। साहित्यकार एक जागरूक एवं संवेदनशील प्राणी होता है अतः वह अपने परिवेश की संवेदनाओं, समकालीन परिस्थितियों एवं विचारों से प्रभावित होता है। हिंदी के अनेक कवियों ने भी इस दिशा में अपनी रचनात्मक एवं सक्रिय भूमिका निभाई। गांधीजी के विचारों, उनके आध्यात्मिक चिंतनों, उनके सामाजिक सुधारों उनके राजनैतिक सिद्धांतों एवं उनकी सांस्कृतिक सोच को छायावादोत्तर काल के प्रमुख कवियों ने सशक्त वाणी प्रदान की।

इस दृष्टि से छायावादोत्तर कवियों रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, नरेश मेहता, नरेंद्र शर्मा, गोपाल शरण सिंह, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्याम नारायण पांडेय, रघुवीर शरण मिश्र, माखनलाल चतुर्वेदी, एवं जगन्नाथ मिलिंद आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय हैं।

●

संदर्भ सूची-

1. रामधारी सिंह दिनकर 'रश्मिरथी' प्रथम सर्ग, पृ. 01
2. नरेंद्र शर्मा, 'रक्त चंदन' देवालय पृ. 32
3. गोपाल शरण सिंह, जगदालोक सर्ग 4, पृ. 07
4. बालकृष्ण शर्मा नवीन 'उर्मिला' पृ.526
5. वही, पृ. 526, 6. सुमित्रानंदन पंत, 'स्वर्णधूलि' पृ. 13
7. नरेश मेहता 'संशय की एक रात' द्वितीय सर्ग, पृ. 39
8. श्याम नारायण पांडेय, 'झांसी की रानी' 19वीं हुंकार पृ. 254
9. रघुवीर शरण मिश्र, 'जन नायक' पृ. 297
10. वही, पृ. 55,11. वही, 326, 12. माखनलाल चतुर्वेदी 'माता' पृ. 71
13. रघुवीर शरण मिश्र, 'जन नायक' पृ. 131
14. जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, 'बापू तुम्हें प्रणाम' पृ. 31
15. बालकृष्ण शर्मा नवीन 'उर्मिला' पृ. 57
16. रघुवीर शरण मिश्र, 'जन नायक' 20वां सर्ग पृ. 280
17. नरेश मेहता, 'संशय की एक रात' पृ. 67
18. मैथिलीशरण गुप्त, 'जय भारत' अर्जुन का मोह' पृ. 363।

गांधी : विदेशी साहित्य में...

उमाकांत मालवीय

यह एक मात्र संयोग है क्या अथवा पूर्वाभास? 30 जनवरी, 1948 को महात्मा गांधी का बलिदान हुआ और जनवरी, 1927 में मृत्यु के ठीक इक्कीस वर्ष पूर्व, सतारा के कुछ विद्यार्थी महात्मा गांधी के पास एक अनुरोध लेकर पहुंचे, 'आप हमारे सौभाग्य से इस समय सतारा में हैं, हम बच्चों ने मारुति प्रतिमा की स्थापना की है, उसके प्राण-प्रतिष्ठा समारोह में आप हमारे बीच चलकर, हमें आशीर्वाद देने की कृपा करें।' गांधीजी उन बच्चों के बीच गए वहां उन्होंने कहा, मेरे भीतर मारुति अथवा हनुमान जैसी सामर्थ्य तो नहीं है कि मैं अपना सीना चीरूं तो तुम्हें दिखा सकूं, यदि तुममे से कोई चाकू से मेरा सीना चीरे तो तुम्हें यहां राम-राम लिखा मिलेगा और जब कभी मुझे गोली मारी जाएगी तो मेरे भीतर से राम ही बाहर आएगा।' संसार साक्षी है इस सत्य का कि जब गांधीजी को गोली लगी तो उनके अंतिम शब्द थे हे राम! वह गोली गांधी पर नहीं आदमीयत पर दागी गई थी, जिससे विंध गयी ब्राजील की एक कवयित्री सिसीलिया मेयरलीज बरबस कह उठी...

मायावनियों के नीले, मोहक स्वर
पर फैलाकर उड़ जाने वाले वे घोड़े-
अंतर्मन के वे सारे सुंदर स्वप्न-सुमन
जो सबके सब यहां पहुंच कर मुरझा गए हैं
त्यागती हूं, उन सबको
उन सबका प्रत्याख्यान करती हूं
कोने-कोने में उड़-उड़ कर
पहुंच रही है यह खबर
'मारा गया वह दुआ देता लोगों को।'

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

आह संघर्ष के वे दिन
घर-घर में घरघराते हुए वे चरखे
सुनहरे रेशमी परिवेश में

छोटे से हारमोनियम पर 'वंदे मातरम्'
दार्जिलिंग की चाय में सफेद गुलाब की महक
'मानव बर्बर पशु भी होता है क्या?'

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

क्या चाहता था वह व्यक्ति?
क्यों आया था वह इस संसार में?
सुनूं तो....
'मैं उस दिव्य कुंभकार के हाथों गढ़ा
मिट्टी का छोटा-सा पात्र हूं, और कुछ नहीं;
जब उसे न रहेगी, मेरी और आवश्यकता
तब गिर कर चूर-चूर हो जाने देगा'
उसने तुम्हें गिर जाने दिया- एकबारगी
अचानक
भीतर खून की कुछ और बूंदें बाकी थीं
तुम्हारा हृदय अभी सूखा नहीं था
ओ पराक्रमी प्रिय
पवित्र शब्दों के बीच, चादर में लिपटे हुए,
ओ नन्हें, अतिशय विकसित पुष्प
सांझ की हवा, भारत और ब्राजील के बीच
बहती चली जाती है
और वह थकती नहीं
सबसे बड़ी चीज है अहिंसा!
सब अपनी जेबों में धुँआ उगलती बंदूकें रक्खे हैं
सचमुच तुम अकेले थे
जिसके पास न बंदूक थी, न जेब थी, न एक भी असत्य;
अपनी एक-एक नस तक निरस्त्र
बीते हुए और आने वाले
दोनों कल से मुक्त
वह सांझ, पांच बजे की हवा
तुम्हारा संपूर्ण जीवन
और मेरे जीवन का उत्तमांश लेकर चली जाती है
भारत की नारियां आहों की गठरियां बनी झुकी हुई हैं
तुम्हारी चिता जल रही है
जमुना तुम्हारी मुट्ठी भर राख को

गंगा तक ले जाएगी
गंगा जल उसे स्नेह से चूमेगा
और सूरज उसे जल से उठाकर
पहुंचा देगा ईश्वर के असीम हाथों तक
ईश्वर से तुम क्या कहोगे
उन व्यक्तियों के बारे में जिनसे तुम मिले थे?
शायद एक छोटी-सी बकरी
जगा देगी सुकोमल स्मृतियों को
समाचार पत्रों के शीर्षक हवाओं में थरथराते हैं
हर जगह पागलपन और लिप्सा की तेज आवाजें
संत शांति के साथ प्राण त्याग देते हैं
अपने हत्यारों को आशीर्वाद देते हुए
संगति समन्वय का अंतिम स्वर
आकाश की चिरंतन शांति में लौट जाता है
वह महात्मा जो हमें, जो तुम्हें, जो सबको प्यार करता था
सौंदर्य और शौर्य का एक उत्सर्ग
मेर अंजुरी से रिसता जा रहा है
मेरे और तुम्हारे बीच वह कौन-सी मानस तरंगें थीं
कि मेरा रक्त आंदोलित हो उठा है
क्योंकि तुम्हारा रक्त बहाया गया है
ईश्वर तुमसे कहेगा
'मानव बर्बर होते हैं मेरे बेटे!
हमने बहुत कर लिया, आओ अब इन्हें खुला छोड़ दें
आओ मेरे नीले महल, इनकी भ्रांतियों का भयानक युद्ध देखो'
वह महात्मा, प्रार्थना में झुकता है
मेरे पिता इन्हें माफ कर दे
इन्हें नहीं मालूम, इन्होंने क्या किया है
परमात्मा इस परिचित स्वर से
चौंक उठता है, उसके भीतर
जीसस पिरा उठता है।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार आल्डुअस हक्सले ने अपने उपन्यास 'एप एंड दि एसेन्स' का प्रारंभ ही उस रक्तरंजिता संध्या से किया है, जिस सांझ को महात्मा पर गोली चलाई गई थी। बर्नार्ड शॉ कहता है 'गांधी की हत्या से यह पता चलता है कि बहुत भला होना कितना पुरखतर है।' तीस जनवरी सन् 1948 की उस रात एक थका-मांदा डाकिया सामने जाम रक्खे हुए अपना

गम गलत कर रहा था, वह डाकिया था अफ्रीका स्वातंत्र्य संग्राम का अप्रतिम हुतात्मा पेट्रिस लुमुंबा। लुमुंबा कवि भी था। केवल कवि ही नहीं, अपनी संघर्षरत जनता का सक्रिय साझीदार। गांधी निर्वाण का समाचार जब उसे मिला-

महात्मा! तुमने आदमी को
प्यार अहिंसा और सद्भावना देनी चाही
कैसी जुर्रत की तुमने गांधी!
कैसा था दुःसाहस!
ऐसा ही दुःसाहस किया था यीशु ने
फिर यीशु से इतर तुम्हारी
परिणिति क्या होती?
यह अंत कितना अपूर्व है?
कितना मोहक!
क्या मौत इतनी मेहरबान होती है?
अगर ऐसी मौत मिलनी हो तो
मैं आज ही
आज ही नहीं अभी इसी क्षण मरना चाहूंगा
मृत्यु इतनी शलाघ्य!
मृत्यु इतनी वरेण्य!
ऐसी ही मृत्यु मुझे भी देना मेरे अंतर्यामी।

और हमने देखा कि लुमुंबा ने तिल-तिल कर भयानक यातना को झेलते हुए शहीद की मृत्यु पाई। दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों के प्रति हो रहे अत्याचारों का अहिंसक प्रतिरोध महात्मा गांधी ने प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में गुजराती में लिखी उनकी पुस्तिका को सरकार ने जब्त कर लिया था जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'इंडियन ओपिनियन' महात्मा गांधी ने स्वयं तैयार किया और उसे महान् रूसी लेखक चिंतक एवं विचारक महात्मा टॉल्सटॉय के पास भेजी। महात्मा गांधी और टॉल्सटॉय के बीच पत्राचार हुआ। महात्मा गांधी के अहिंसक प्रतिरोध पर उन्होंने लिखा है-

'दूसरों के साथ तादात्म्य स्थापित करके और एकात्म होने की अभिलाषा ही प्रेम है। ऐसी अभिलाषा सदैव सत्कर्मों की प्रेरणा जगाती है। प्रेम ही मानव जीवन का सर्वोपरि और अनुपम धर्म है। आपके अहिंसक प्रतिरोध की धुरी यही प्रेम है, मुझे यह महसूस कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। परमात्मा आपको शक्ति, धैर्य और संकल्प दे, मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं।'

मेक्सिको के शिल्पकार कानेसी, महात्मा गांधी को प्रस्तर कांसे और मिट्टी में उतारने में तन्मय थे। उन्होंने मेक्सिको के राष्ट्रपिता हिल्दागो की भी प्रतिमा बनाई थी। प्रतिमा निर्माण के बाद उन्होंने अपने अनुभव को अभिव्यक्ति दी-

मैं सदा महान आत्माओं
का चरित्र पढ़ता रहा
जितना जो कुछ पढ़ा है
मुझे गांधी उन सबमें आगे नजर आता है
इस मूर्ति का निर्माण
मेरे लिए एक आध्यात्मिक अनुभव है
इसने मेरे भीतर का
मौसम बदल दिया है
मेरे भीतर एक अपूर्व पतझर घटित हुआ
तदुपरांत
नई-नई कोपलें फूटीं
मैं एकदम नया हो उठा हूं।

द्वितीय गोलमेज कांफ्रेंस में हिस्सा लेने के बाद महात्मा गांधी नोबेल पुरस्कार विजेता रोम्यां रोलां के अतिथि हुए। पुस्तक 'Mahatma Gandhi : The man who become one with universal being' के नजरिये से महात्मा गांधी के अहिंसक संघर्ष को मैं अत्यंत उत्सुकता से दूर से ही देखता सुनता रहा, उनसे भेंट हुई तो लगा जो कुछ बहुत दूर से देख सुन रहा था, उसे केवल एकदम करीब से देख रहा हूं बल्कि उसे अपने भीतर धड़कता महसूस कर रहा हूं। गांधी मूर्तिमान सर्वभौम प्रेम हैं, अपने विरोधियों के प्रति इतनी ममता, इतनी सहानुभूति, कारक बना दे संभव है, मैंने इसके पहले इसकी कल्पना भी नहीं की थी।' घाना के भूतपूर्व राष्ट्रपति अफ्रीकी स्वातंत्र्य संघर्ष के अप्रतिम सेनानी और कवि नकुमा ने अपने स्वतंत्रता संघर्ष दौर का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज अपनी कविता में प्रस्तुत किया हैः-

घने जंगल में थका हारा सिपाही
हताश में सो गया था
उसके सपने को कृतार्थ किया
एक महात्मा ने,
एक गुरुदेव ने
एक ने मुसकराते हुए अग्निपथ से
पर चलने की प्रेरणा दी
अपने आचरण के उदाहरण से
मूर्छित चेतना की झकझोर दिया
और उस सिपाही की हार
उसकी थकान
अब अतीत का दस्तावेज मात्र रह गयी है

और उसके हाथ में आ गई है
अहर्निश संघर्ष की एक सुलगती मशाल
मेरे नमन् लो महात्मा!
मेरे नमन् लो गुरुदेव।

वेन्डेल विल्को ने अपनी पुस्तक 'One world' में महात्मा गांधी को इस शब्दों में स्मरण किया है- 'वह जो सबके लिए कुछ त्याग चुका है, वही सबका प्रतिनिधित्व कर सकता है। इस समय सारे संसार में ऐसा एक ही व्यक्ति है और वह है महात्मा गांधी। उसने संसार के शोषितों, दलितों, भूखों, नंगों, दरिद्र लोगों के साथ स्वयं को एकाकार कर दिया है। वह पूर्ण सद्भावना के अन्य शोषकों, अत्याचारियों, अन्यायियों से टकराता है तब वे अपने को असहाय महसूस करते हैं। उनके भीतर का दानव निरुपाय हो जाता है।'

अमरीका में अश्वेतों के अधिकारों के लिए संघर्ष के प्रतीक थे मार्टिन लूथर किंग। मार्टिन लूथर किंग ने अपनी पुस्तक 'स्ट्राइड् टुवर्डस फ्रीडम' में लिखा है- 'मैं कई महीनों से सामाजिक सुधार की जिस पद्धति की तलाश में था, वह मुझे प्रेम और अहिंसा पर गांधीवादी बलाघात में मिली। मुझे लगा है कि दलितों के लिए, उनके मुक्ति संघर्ष के लिए, वही तरीका नैतिक और व्यावहारिक दृष्टि से ठीक है।' मार्टिन लूथर किंग स्वयं को गांधी का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कहते थे। कैसा संयोग था यह कि उत्तराधिकार में उन्होंने महात्मा गांधी जैसी मौत भी पाई थी। वे महात्मा गांधी को अपनी कविता में स्मरण करते हैं-

मुझे नहीं मालूम किस धातु का बना था वह
उसकी आँखों में गंगाजल ही नहीं
टेक्स, मिसीसिपी, वोल्गा और ह्वांगहो
सभी तो लहराती थीं
उसमें हिमालय ही नहीं
अल्प्स की ऊंचाई भी समाहित थी
उनमें हिंद महासागर ही नहीं
काला सागर, प्रशांत महासागर
सभी अपनी गहनता लिए बैठे थे
कैसे थे उनके संघर्ष के हथियार
नमक सत्याग्रह
दांडी प्रयाण
चर्खा, खादी, असहयोग
और अनशन
कैसी थी उनकी लड़ाई
जिसमें विद्वेष घृणा के लिए

कोई जगह नहीं थी
हड्डियों के उस ढांचे में
कैसा था वह आत्मबल
मैं सर्वदा उनके प्रसाद का अभिलाषी रहा
हूं और रहूंगा।

4 अप्रैल, 1921, न्यूयार्क के कम्युनिटी चर्च में तत्कालीन अमरीकी समाज के सर्वाधिक निर्भीक वक्ता चिंतक डॉ. जे. एच. होम्स ने विश्व के महानतम व्यक्ति व्याख्यानमाला में बोलते हुए गांधीजी को संसार के श्रेष्ठतम व्यक्तियों में स्थान देते हुए उनकी तुलना महात्मा ईसा से की थी।

सुप्रसिद्ध अमरीकन समाज दार्शनिक पिटरिम ए. सोरोकिन ने सन् 1948 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'रीकांस्ट्रक्सन ऑफ ह्यूमैनिटी' गांधीजी को समर्पित की थी और उन्हें डेथलेस अर्थात् मृत्युहीन बतलाया था। सन् 1926 में डॉ. रूफस जोन्स महात्मा गांधी से मिले थे। वे उनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उनकी तुलना संत फ्रांसिस से की थी।

अंग्रेजी के कवि लारियर क्रिस्टोफर ने 'प्रणाम और गोली' शीर्षक अपनी कविता में कहा है-

पहले उसने प्रणाम किया
फिर गोली दागी
हम महाभारत काल में पहुंच गए हैं
जब द्रोण के चरणों में प्रणाम के लिए तीर
और उसके बाद सर उतार लिया गया
यह साजिश है हमें पांच हजार वर्ष पीछे ढकेल
देने की
यदि इसी प्रकार पहले प्रणाम
और बाद में गोली दागने का क्रम जारी रहा
तो लोगों का
प्रणाम पर से भरोसा उठ जाएगा
लोग प्रणाम को केवल एक
प्रवंचना, एक ढकोसला और धोखा ही मानेंगे।

प्रो. एल्बर्ट आइंस्टीन कहते हैं, 'आने वाली पीढ़ी, आश्चर्य करेगी, वे विस्मयपूर्वक पूछेंगी, क्या ऐसा कोई हाड़-मांसवाला व्यक्ति कभी किसी युग में इस धरती पर चलता-फिरता भी था? वे मुश्किल से यह विश्वास करेंगी कि आदमी के ऐसे शरीर में देवता, संत अथवा देवदूत का होना कभी संभव हुआ है।' मिस्र के अरब चिंतक, विचारक, मनीषी, जन्मांध कवि, फारुक शाही के विरुद्ध मिस्री क्रांति के सूत्रधार डॉ. ताहा हुसेन ने चौरीचौरा कांड के पश्चात् गांधीजी द्वारा आंदोलन वापस लेने पर कहा था-

कथनी और करनी का योग
उपदेश और आचरण का संगम
उसका नाम है
मोहनदास करमचंद गांधी
वही है, जो सर ऊंचा कर
कह सकता है
मैं हूं, जिसने ईसा का सलीब
अपने कंधों पर उठाया है
मैं हूं, जो बुद्ध और महावीर का
सही वारिस हूं
लोग क्या कहेंगे
यह चिंता किए बिना
अभियान में हिंसा का प्रवेश होते ही
उसने आंदोलन वापस ले लिया
पीछे आ रहे अनुयायी स्तब्ध रह गए
उन्हें कबूल करना पड़ा
साध्य के साथ साधन की पवित्रता भी अनिवार्य है
कैसा नैतिक बल था यह
कैसा आत्मिक बल था वह
अपनी भूल को स्वीकारते हुए
बढ़ा हुआ कदम
तात्कालिक रूप से सफल होता अभियान
वापस ले लिया गया।

कु. म्यूरील लीस्टर की पुस्तक है 'Gandhi : The world Citizen' (गांधीः विश्व नागरिक) जिसमें उन्होंने गांधीजी से अपने संवादों को लिपिबद्ध किया है। 'बापू ने मुझसे पूछा, 'तुमने तो विश्व भ्रमण किया है, बच्चों के लालन-पालन की दृष्टि से तुम्हें कौन-सा देश, कौन-सी व्यवस्था सर्वाधिक पसंद आई?' मैंने उनकी आँखों में सहज अदम्य जिज्ञासा की चमक देखी। मैंने कहा, 'बापू बच्चों के लालन-पालन की दृष्टि से रूस देश स्वर्ग है, वह बच्चों का स्वर्ग है, वह व्यवस्था अपने बच्चों को एक मूल्यवान धरोहर की तरह सहेजती, संजोती, संवारती है। गांधीजी की आँखों में एक ललक कौंध गई, उन्होंने कहा, 'बच्चों के उस स्वर्ग को मैं देखना चाहूंगा। उस समय मुझे लगा मेडोना की बांहों का विश्व शिशु मेरे सामने पुलक भरी किलकारी भर रहा है, उस प्रौढ़ शरीर में एक नन्हा फरिश्ता उतर आया है।'

साबरमती आश्रम से गांधीजी ऐतिहासिक प्रमाण का संदर्भ अंग्रेजी कवि वेल्सफोर्ड अपनी रचना A Historic March में उकेरता हुआ कहता है।

यह कौन दुःसाहसी है
यह कौन योद्धा है
जो अपने प्यार से
अपनी निःसीम सद्भावना से
अपने सत्य से
संसार के सर्वाधिक शक्तिशाली
साम्राज्य को चुनौती दे रहा है
अन्याय के विरुद्ध सतत् संघर्ष
इसकी नीयत और नियति है
यह झुकेगा नहीं
यह रुकेगा नहीं
यह चुकेगा नहीं
जब तक अन्यायी का हृदय परिवर्तन नहीं होता
यह केवल भारत की मुक्ति के लिए नहीं
वरन् मानव मात्र की मुक्ति के लिए
संघर्षरत है
कल संसार के मानव को
एक भीतरी नैतिक दबाव के कारण
इसके पीछे आना होगा
फिर यह कल क्यों
हम आज ही क्यों न उसके पीछे हो लें
उसका अनुकरण
उसका अनुसरण
उसका अनुगमन ही
हमारी तुम्हारी सबकी मुक्ति है।

सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर भारत आए थे। वे गांधीजी के साथ उनके आश्रम में सात दिन तक रहे उन्होंने एक पुस्तक लिखी 'Sevan days with Mahatma Gandhi।' इस पुस्तक में उन्होंने गांधीजी से संबंधित अनेक रोचक प्रसंग दिए हैं।

गांधीजी से हाथ मिलाते ही मेरे भीतर की अहंकार ग्रंथि जैसे पिघलने लगी, उन्होंने मुझे बात करने के लिए एक घंटे का समय दिया था, बात अपराह्न ठीक साढ़े तीन बजे शुरू हुई, साढ़े चार बजे अभी जबकि मेरा वाक्य अधूरा ही था, उन्होंने मुझसे कहा, बस समय हो गया अब बात बंद। मैंने संसार के अनेक महान एवं व्यस्ततम लोगों से चर्चा की है परंतु यह पहला व्यक्ति है, जिसने मुझे इस तरह टोक दिया कि मैं अपना वाक्य भी पूरा नहीं कर पाया। समय का इतना पाबंद, इतनी कठोरता से उसका पालन, मेरे लिए एक अपूर्व अनुभव था।

अगले दिन आश्रमवासियों एवं गांधीजी के साथ भोजन के लिए पंक्ति में मुझे बैठाया गया। एक वर्गफुट का आसन था, उस पर मैं बैठा था। इस प्रकार पालथी मारकर बैठने का मेरा अभ्यास नहीं था, मेरे घुटने दुखने लगे। रोटी, साग और कुछ आम परोसे गए, मैंने जैसे ही खाना शुरू करना चाहा, गांधीजी ने मुझे रोक दिया, पहले प्रार्थना होगी, भगवान का भोग लगेगा, उसके बाद खाना शुरू होगा। प्रार्थना हुई, भगवान का भोग लगा और फिर भोजन प्रारंभ हुआ। मैंने उतावली में आम में दांत लगाया, उसका रस मेरे कपड़ों पर छितर गया, मैं झेंप गया। आम खाने का वह मेरा पहला अवसर था। गांधीजी अत्यंत वत्सल भाव से हँसे और उन्होंने आम पिलपिलाकर चूसने का तरीका मुझे बतलाया। संसार की गूढ़तम समस्याओं पर चर्चा करते हुए महानतम सिद्धांतों, आदर्शों और उसकी व्यावहारिकता पर चर्चा करते हुए भी उनका ध्यान रोजमर्रा की उन छोटी-छोटी बातों पर भी रहता था, जिनकी हम बहुधा उपेक्षा कर जाते हैं।' गांधीजी के सर्वाभौम व्यक्तित्व का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि जिन अंग्रेज शासकों के विरुद्ध वे संघर्ष कर रहे थे, वे उनका कितना सम्मान करते थे। संयुक्त प्रांत के गवर्नर सर हैरिस प्रांतीय प्रशासन सलाहकार समिति में बोलने को खड़े हुए-

'Then Gandhi Said...'

'Say Mr. Gandhi, what do you mean by Gandhi said...'

समिति के सदस्य पं. मोतीलाल नेहरू ने बीच ही में उन्हें टोंककर कहा। सर हैरिस मुस्कुराए 'Shall I adress Christ as Mr. Christ?' और कहना न होगा कि पं. मोतीलाल नेहरू जैसा प्रत्युत्पन्नमति व्यक्ति निरुत्तर हो गया।

और अंत में प्रस्तुत है जापान के संत कवि तोशियों साका की कविता के कुछ अंश-

'गांधी प्रथमतः और अंततः
एक वैष्णव हिंदू थे
हिंदू जो अंतिम रूप से कभी नहीं मरता
जब तक इस धरती का
एक भी व्यक्ति उदास है दुःखी है
गांधी उसकी उदासी, उसके दुःख में
हिस्सा बटाने के लिए
बराबर आते रहेंगे
वे आवागमन से न कभी मुक्त होंगे
और न होना चाहेंगे।

तोशियों की इन पंक्तियों पर गांधीजी ने जरूर कहा होगा, तथास्तु हमें उन्हें पहचान कर उनका स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

●

✶ स्व. उमाकांत मालवीय का यह लेख प्रतिष्ठित कवि यश मालवीय के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।

गांधी की दृष्टि में सौंदर्य

सुधांशु शेखर

आम तौर पर महात्मा गांधी का नाम लेते ही हमारे सामने एक ऐसे अर्धनग्न फकीर का चेहरा नजर आता है, जिसे जीवन से वितृष्णा हो लेकिन, गहराई से देखने पर हम पाते हैं कि गांधी ने जीवन को सहजता एवं समग्रता में जीया और इसके हर पहलू को संस्पर्श किया। जीवन-जगत का शायद ही कोई आयाम हो, जो उनकी दृष्टि से अछूता रहा हो और कला, आनंद एवं सौंदर्य भी इसका अपवाद नहीं है।

दार्शनिक प्रेरणा : गांधी ने टॉल्स्टॉय के 'व्हाट इज आर्ट?' ;'कला क्या है?' को न केवल स्वयं पढ़ा था, बल्कि उसका गुजराती अनुवाद भी कराया था। इसके अलावा रस्किन की कला विषयक पुस्तक 'ए ज्वॉय फार एवर' आनंद सदा के लिए, का भी गांधी पर काफी प्रभाव था। इन दोनों पुस्तकों को पढ़ने की संस्तुति उन्होंने 'हिंद-स्वराज' के पाठकों के लिए कर रखी है। बाद में उन्होंने पूरे मनोयोग से टॉल्स्टॉय के 'व्हाट इज आर्ट?' 'कला क्या है?' को न केवल स्वयं पढ़ा था, बल्कि उसका गुजराती में अनुवाद भी कराया था। टॉल्स्टॉय का मत था कि सच्ची कला का स्रोत अंतर का धर्मिक भाव था। आंतरिक रूप से कला को मनुष्य के हृदय की अनुभूति क्षमता और संवेदनशीलता का विकास करना चाहिए और बाह्य रूप से उसे मनुष्य के बंधुत्व और पास पड़ोस के प्रति व्यापक आत्मीयता के प्रसार में सहायक सिद्ध होना चाहिए। उनके अनुसार कला का एक अपरिहार्य उद्देश्य आधुनिक सभ्यता की लगातार बढती भोगवादी प्रवृत्ति का प्रतिरोध है। टॉल्स्टॉय की ही तरह गांधी ने भी स्वीकार किया कि प्रकृति, कला, सौंदर्य, नैतिकता तथा राजनीति गतिविधियां सब आपस में जुड़ी हुई हैं। यदि हम कला को प्रकृति या नैतिकता से अलग कर देते हैं, तो यह जीवन में भ्रष्टता ला देगी। गांधी टॉल्स्टॉय की तरह यह भी स्वीकार करते थे कि कला हममें भावनाएं जागृत करती हैं। गांधी 'चरखा चलाने' की बात करते हैं, वह भी एक कला ही है। यह चरखा हमें शारीरिक श्रम की महत्ता समझाता है, स्वदेशी की बात करता है और एक नई तकनीक को सामने लाता है।[1] संक्षेप में, गांधी सरल, सहज एवं अत्यंत परिष्कृत, सौंदर्य, आनंद एवं कलाबोध का पोषण करते हैं। यह कलाबोध जन-जीवन के यथार्थ से जुड़कर उस आनंद-दर्शन का सूत्रपात करता है, जिसका सीधा तादात्म्य मनुष्य एवं मनुष्यता से है। यहां कला, आनंद एवं सौंदर्य सत्य और शिव से

अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है और इसलिए अस्तित्व का ही अभिन्न अंग है।[1] गांधी के सरल सहज और अत्यंत परिष्कृत सौंदर्य तथा कलाबोध का जिक्र महान कलाकार नंदलाल बोस ने सेवाग्राम आश्रम स्थित उनके कमरे के सात्विक रखरखाव के सूक्ष्म निर्धरण के उपरांत अपने एक आत्मीय संस्मरण में भी किया है। उन्होंने बड़ी ही दिलचस्प चर्चा कमरे में रखे स्वच्छ चमाचम फूल के लोटे और उस पर धरे हुए पीपल के आकार के चमकते लोहे के ढक्कन का किया है, जिसे एक स्थानीय लोहार ने अपने हाथों से बनाकर उन्हें प्रेमपूर्वक भेंट किया था। बाद में उन्होंने वह पूरा मनोरम सात्विक दृश्य अपनी एक पेंटिंग में अद्‌भुत रचनात्मकता के साथ संजो दिया था। कला के उदात्त भाव जागृत करने की व्यापक क्षमता, स्थूलता का अतिक्रमण कर असीम सूक्ष्म आंतरिक शक्ति में विस्तार की उसकी अनंत संभावना और सत्य से अंतः प्रेरित शिव की सेवा में लोकमंगल हेतु सुंदर के नियोजन की कामना गांधी के सौंदर्य और कलाबोध के ऐसे आयाम है, जिससे पूरा स्वतंत्रता आंदोलन अनुप्राणित रहा। देश के लोकजीवन में युगों से व्याप्त चरखे का पुर्ननुसंधन उन्होंने आर्थिक पराधीनता से जूझने के लिए स्वालंबन के एक सबल हथियार के रूप में तो किया ही था, पर वह शीघ्र ही निरंकुश साम्राज्य के लड़ने का एक ऐसा चमत्कारिक कला प्रतीक बन गया कि राष्ट्रीय झंडे की अहिंसक श्वेत सात्विक पट्टी पर अंकित हो वह लाखों को आत्मत्याग और आत्मबलिदान की अपूर्व प्रेरणा देने लगा। लोकमन उसकी तुलना शीघ्र ही लोकमंगल के देवता विष्णु के सुदर्शन चक्र से करने लगा, जो पापशमन और दुष्टदलन के लिए सदैव तत्पर रहता है।

उन्होंने जॉन रस्किन की 'एक ज्वॉय फार एवर' 'आनंद सदा के लिए' पुस्तक पढ़ने की संस्तुति 'हिंद-स्वराज' के पाठकों के लिए कर रखी है।[3] यह 1857 में मैनचेस्टर में आयोजित कला प्रदर्शनी के दौरान दिए गए रस्किन के दो भाषणों का संकलन है। पुस्तक का नाम विख्यात रोमांटिक कवि जॉन कीट्स की प्रसिद्ध कविता 'ओड टू ग्रेशियन अर्न' के अंतिम चरण से प्रेरित है। यह पुस्तक औद्योगिक सभ्यता की रस्किन द्वारा की गयी समीक्षा का प्रस्थान बिंदु है। उनके अनुसार राष्ट्रीय श्रम का समुचित प्रबंध कौशल सही राजनैतिक अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इसका उद्देश्य उपयोगिता और भव्यता दोनों होना चाहिए। इसे सर्वप्रथम सामान्य जन-मजदूरों और किसानों की मूलभूत आवश्यकताओं और सुविधाओं की ओर ध्यान देना चाहिए। उसकी संतुष्टि के बाद ही भव्यता पर विचार करना चाहिए। दुर्भाग्यवश इसका ठीक उलटा हो रहा था। समूची राजनीतिक अर्थव्यवस्था का ध्यान मुट्ठीभर श्रीमंत वर्ग को सुख, सुविधा और विलासिता के अधिक-से-अधिक संसाधन उपलब्ध कराने पर केंद्रित था और बहुसंख्यक श्रमजीवी वर्ग अपनी अल्पतम जरूरतों की संतुष्टि और रंचमात्र सुविधा के संसाधनों से भी वंचित था। जब तक लोगों के तन पर कपड़े और ओढ़ने के लिए कंबल जैसी जरूरतें पूरी नहीं हो जातीं, तब तक समृद्ध समाज के लिए भव्य परिधान और विलास के उपकरण का ख्याल भी अपराध था।[4]

रस्किन ने औद्योगिक सभ्यता की कड़ी-आलोचना की है। पुस्तक में कहा गया है कि इस सभ्यता की सबसे बड़ी बुराई यह है कि वह कला और सौंदर्य के प्रति उदासीन है। उनके अनुसार

सच्ची राजनैतिक अर्थ-व्यवस्था देश की श्रम-शक्ति का उचित प्रबंधन है। इसका अर्थ यह होगा कि श्रमिकों को न्यूनतम सुख-सुविधाएं उपलब्ध हों अर्थात् उन्हें रोटी, कपड़ा, मकान तो मिले ही साथ में आराम, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि की सुविधाएं भी उपलब्ध हों। यदि श्रम को सही तरीके से संतुलित किया जाए तो ये सुविधाएं प्रदान की जा सकती है। आधुनिक राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था में ये सारी सुख-सुविधाएं समाज के खास वर्ग में सीमित है, जबकि समाज के अधिकतर लोगों की न्यूनतम आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो पाती हैं।[5]

जाहिर है कि गांधी सौंदर्य, कला एवं आनंद से दूर एक निरस राजनीतिज्ञ एवं शुष्क दार्शनिक नहीं थे, अपितु उन्होंने जीवनपर्यंत सौंदर्य, कला और आनंद में गहरी दिलचस्पी ली और इसे समझने की उनकी दृष्टि भी विलक्षण थी। उनके जीवन एवं चिंतन में सौंदर्य, कला एवं आनंद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनका जीवनपर्यंत देश-दुनिया के प्रमुख सौंदर्यशास्त्रियों एवं कलाकारों से जीवंत संपर्क रहा और वे आनंद की खोज में भी निरंतर लगे रहे। गांधी की सजगता इस बात में दिखाई देती है कि वे सौंदर्य, कला एवं आनंद को लोक, समाज एवं जीवन की परिधि में ही देखने-समझने के पक्षधर थे।[6]

जीवन-दृष्टि : दरअसल, गांधी 'सर्वोदय' के उपासक थे इसलिए वे न केवल मानव-समाज, बल्कि समस्त जगत का हित चाहते थे, उसी के अंतर्गत उन्होंने सौंदर्य, कला एवं आनंद का महत्व स्वीकार किया है। उनके अनुसार केवल भावुकता में निमग्न करने वाली एवं आसक्ति, आलस्य, प्रमाद एवं उत्तेजना पैदा करने वाली कला अवांछनीय है। वही कला श्रेष्ठ है, जो मनुष्यों में पुरुषार्थ जगावे, उन्हें वीर्यवान एवं बलशाली बनाकर उनकी चित्त-वृत्तियों को सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह की ओर मोड़े। यह कला केवल मुट्ठी भर लोगों की ही आवश्यकताओं की नहीं, बल्कि समस्त जनता अथवा आम लोगों की आवश्यकताओं और विषयों की चर्चा करने वाला होना चाहिए।

गांधी के लिए मानव-जीवन की पूर्ण खिलावट मोक्ष परम साध्य है और सौंदर्य, कला, साहित्य एवं विज्ञान आदि सभी विधाएं उसके निमित्त शुभ साध्य हैं। वे सभी मनुष्यों को समान रूप से उक्त साध्य एवं साधन दोनों का अधिकारी मानते थे। उन्होंने कहा है, जो कला जनता के हित में न होकर केवल गिने-चुने भाग्यवानों के लिए है, वह व्यर्थ है।[7] कला जीवन की दासी है और उसका कार्य यही है कि वह जीवन की सेवा करे। वह कला, जो मानव-जीवन को ऊंचा न उठाए और उसमें नई आशाएं तथा संभावनाएं न भरे, कला नहीं कही जा सकती है। इस प्रकार कला जीवन के लिए है, मात्र कला के लिए नहीं। जिस कला का संबंध नीति, हितकरिता और उपयोगिता से नहीं है, केवल सौंदर्य से ही है-यह कहना सौंदर्य और कला को न समझने के जैसा है। सत्य ही ऊंची-से-ऊंची कला और श्रेष्ठ सौंदर्य है और वह नीति, हितकरिता तथा उपयोगिता से रहित नहीं हो सकता।

गांधी आस्कर वाइल्ड के कला विषयक विचारों के विरोधी थे, जिसके अनुसार, कला अनैतिकता एवं अश्लीलता सहित किसी भी चीज को सुंदर, सभ्य एवं आकर्षक बनाने में सक्षम है। यही कारण है कि वे तथाकथित अध्यात्मपरक व्याख्या के प्रयासों के बावजूद जयदेव के 'गीत

गोविंदम्' को कामोद्दीपक एवं कुरूचिपूर्ण मानते थे। जाहिर है कि गांधी को किसी भी हालत में अश्लीलता एवं अनैतिकता स्वीकार्य नहीं था। वे प्रेम, भक्ति, धर्म एवं अध्यात्म जैसे मामलों में भी मानव के उदात्त भावनाओं के पोषक थे। इन्हीं आदर्शों के आलोक में उन्होंने मीरा की गहन भक्ति एवं उसके प्रेमपरक पदों के भावों की सच्चाई एवं ऊंचाई की प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है, मीरा के गीत सदैव सुंदर होते हैं। बिना उनके संगीत के भारतीय धार्मिक जीवन के विकास की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।[8]

गांधी जीवन-जगत के बाह्य एवं आंतरिक दोनों पक्षों का महत्त्व स्वीकार करते थे, लेकिन उनके लिए बाह्य का मूल्य केवल यह है कि वह आंतरिक की सहायता करे। उनके शब्दों में, इस तरह गांधी ईश्वरीय एवं प्राकृतिक सौंदर्य को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्ववांछनीय मानते है। उनके लिए मानवीकृत कला-सौंदर्य का वहीं तक मूल्य है, जहां तक यह ईश्वरीय प्राकृतिक, कला, सौंदर्य के साक्षात्कार में सहायक है। इस बाबत उन्होंने लिखा है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं सामान्यतः मानी गयी कला-वस्तुओं के मूल को स्वीकार करने से इनकार करता हूं, बल्कि सिर्फ यह है कि मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूं कि ये प्राकृतिक सौंदर्य के शाश्वत प्रतीकों की तुलना में मानवीकृत कला वस्तुएं कितनी अपूर्ण हैं। मानवकृत इन कला-वस्तुओं का मूल्य वहीं तक है, जहां तक कि वे आत्मा को किस दिशा में अग्रसर होने में सहायक होती है।[9] गांधी कला में, बाह्य सौंदर्य को उसी हद तक महत्वपूर्ण मानते थे, जहां तक वह आंतरिक सौंदर्यवृत्ति में सहयोगी हो। उनका कहना था कि सौंदर्य आभ्यंतरिक है, इसलिए यह आत्मा का सौंदर्य होता है। सत्य के उद्घाटन में जिस आत्मिक सौंदर्य का प्रयोग होता है, वह नैतिक होता है और नैतिक होने से वह 'शिव' कल्याणकारी भी होता है। इसलिए, गांधी ने साफ-साफ कहा है, जब लोग सत्य में सौंदर्य का दर्शन करने लगेंगे, तब सच्ची कला का उदय होगा।[10] उनकी इस जागतिक जीवन-दृष्टि का उनके सौंदर्य कला एवं आनंद संबंधी विचारों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। इसी दृष्टि से उन्होंने साफ-साफ कहा है कि सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति है और बाह्य रूपों का भी इसलिए मूल्य है क्योंकि वह मनुष्य की आंतरिक भावना की अभिव्यक्ति है। अतः उनकी दृष्टि में, प्रत्येक सच्ची कला आत्मा के आंतरिक स्वरूप की दिशा में सहायक होनी चाहिए। इस दृष्टि से उन्होंने प्राकृतिक कला एवं सौंदर्य को आदर्श माना है और कला के बाह्यरूपों की निरर्थकता बताने की कोशिश की है। स्वयं अपने बारे में उन्होंने लिखा है, जहां तक मेरा ताल्लुक है, मुझे अपनी आत्म में बाह्य रूपों की सहायता की कतई जरूरत नहीं है इसलिए मैं यह दावा कर सकता हूं कि मेरे जीवन में सच्ची फलदायी कला है, हालांकि मैं कोई कलाकृतियां प्रस्तुत नहीं कर सकता। हो सकता है कि मेरे कमरे की दीवारें नंगी हों, मुझे तो शायद सिर पर छत की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि तब मैं असीम विस्तार वाले तारों भरे आकाश को निहार सकता हूं। जब मैं चमकते तारों से भरे आकाश को निहारता हूं, तो मेरे सामने ऐसा अद्भुत परिदृश्य होता है, जिसकी बराबरी मनुष्य की स्वकृत कला कभी नहीं कर सकती।[11] इस तरह उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि जिस कला में आत्मा का बिलकुल ही अभाव हो, वह कला नहीं होगी, किंतु केवल कृति ही बनकर रह जाएगी और क्षणभंगुर होगी। उस अमृतकला

का अंश जिसमें अधिक है, वह मोक्षदायी है। उनके शब्दों में, समस्त कला अंतर के विकास का आविर्भाव ही है। ... जो कला आत्मा को आत्म-दर्शन करने की शिक्षा नहीं देती, वह कला ही नहीं है।[12] साथ ही ऐसी कला को सहज एवं सर्वग्राही भी होनी चाहिए। वास्तव में वही कला चिरंजीवी रहेगी, जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे, जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे। कलाकार जब कला को कल्याणकारी बनाएंगे और उसे जन-साधरण के लिए सुलभ कर देंगे, तभी उस कला का जीवन में स्थान रहेगा...।

सत्यम्-शिवं-सुंदरम् : गांधी के लिए कला में 'सत्यम्' सत्य का स्थान सर्वोपरि था। उनका संपूर्ण जीवन इस बात का एक ज्वलंत प्रमाण है। उन्होंने सत्य-शोधन के लिए अपना सारा जीवन ही लगा दिया। सत्य की शोध पहली चीज है, सौंदर्य और शुभत्व उसमें अपने आप जुड़ जाएंगे। मैं समझता हूं कि ईसा मसीह सर्वोत्कृष्ट कलाकार थे, चूंकि उन्होंने सत्य के दर्शन किए थे और उसे अभिव्यक्त किया था, ऐसे ही मोहम्मद भी थे, जिनकी कुरान संपूर्ण अरबी साहित्य की सबसे श्रेष्ठ कृति है कम-से-कम विद्वानों का मत यही है। कारण यह है कि दोनों ने पहले सत्य को पाने का प्रयास किया था, इसलिए उनकी वाणी में अभिव्यक्ति का सौंदर्य सहज ही आ गया, हालांकि उन्होंने कोई कला-रचना नहीं की थी। मुझे इसी सत्य और सौंदर्य की चाह है, मैं इसी के लिए जीऊंगा और इसी के लिए मरूंगा।[13] उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' को भी 'सत्य का प्रयोग' नाम दिया और जीवन भर इस प्रयोग में निष्काम भाव से लगे रहे। इस क्रम में वे न केवल बाह्य सत्य, वरन् आंतरिक सत्य के साक्षात्कार हेतु भी निरंतर सजग रहे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, मेरा कर्तव्य तो आत्मदर्शन है, मेरी सारी क्रियाएं इसी दृष्टि से होती हैं, मेरा सारा लेखन इसी दृष्टि से है।[14] गांधी के जीवन में किसी भी प्रकार की रूढ़िवादिता एवं जड़ता के लिए कोई स्थान नहीं था और यह बात उनके सत्य एवं ईश्वर संबंधी अवधारणा के मुतलिक भी अपवाद नहीं है। उन्होंने सत्य को ही आत्मा एवं ईश्वर माना और इसके साक्षात्कार हेतु अनवरत प्रयासरत रहे। इस बाबत् 'आत्मकथा' की प्रस्तावना में वे लिखते हैं 'परमेश्वर की व्याख्याएं अनगिनत हैं पर मैं पुजारी तो सत्य रूपी परमेश्वर का ही हूं, वही एक सत्य है और अन्य सब मिथ्या है। यह सत्य मुझे मिला नहीं, पर मैं इसका शोधक हूं। इसकी शोध में मैं अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु भी त्यागने को तैयार हूं। इस शोध रूपी यज्ञ में इस शरीर को भी होमने को मेरी तैयारी है और शक्ति है ऐसा मुझे विश्वास है। पर इस सत्य का साक्षात् न कर लेने तक मेरी अंतरात्मा, जिसे सत्य समझती है, उस 'काल्पनिक सत्य' को अपना आधार मानकर, अपना दीपक समझकर, उसके आश्रय में अपना जीवन बिताता हूं।'[15]

गांधी के लिए सत्य, सत्यम् की साधना में ही, कल्याणभाव शिवम् और सौंदर्य सुंदरम् की प्राप्ति अंतर्निहित है।[16] वे कला एवं आनंद में कल्याणभाव शिवं की उपेक्षा नहीं चाहते हैं। उन्होंने जोर देकर कहा है, कला मुझे उसी अंश तक स्वीकार्य है, जिस अंश तक वह कल्याणकारी है।[17] सौंदर्य, कला एवं आनंद में जब गांधी 'शिवं' खोजते हैं, तब वह सच्चे कर्म की भी प्रतिष्ठा करते हैं। निज का विकास करके, स्वार्थ को विस्तृत करके, जब कलाकार कला में प्रवेश करता है, तब वह दानवत्व का क्षय करता हुआ देवत्व की ओर अग्रसर होता है। इन क्षणों की ही

अनुभूतियां, जिस कला एवं आनंद को जन्म देती हैं, वही कला 'शिवं' से ओत-प्रोत रहती है। गांधी के अनुसार, कलाकार जब कला को कल्याणकारी बनाएंगे और उसे जनसाधारण के लिए सुलभ कर देंगे, तभी कला का जीवन में स्थान रहेगा।[18] जाहिर है कि गांधी 'प्रेय' की बजाय 'श्रेय' के मार्ग का अनुसरण करने का संदेश देते हैं।

वस्तुओं के दो पक्ष होते हैं, बाह्य और आंतरिक। बाह्य का मूल्य केवल यह है कि वह आंतरिक की सहायता करे। इस प्रकार प्रत्येक सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। बाह्य रूपों का मूल्य यही है कि वे मनुष्य की आंतरिक भावना की अभिव्यक्ति है। जिन लोगों में आंतरिक सौंदर्य को निखारने की ओर ध्यान नहीं दिया हो, उसे गांधी सच्चा कलाकार नहीं मानते हैं। उन्होंने लिखा है, बहुत-से व्यक्ति अपने को कलाकार कहते हैं, और उन्हें इस रूप में मान्यता भी प्राप्त है, लेकिन उनकी कृतियों में आत्मा के उदग्र आवेग और आकुलता का लेश भी नहीं होता।[19]

अन्य सभी बातों की तरह इसमें भी मैं करोड़ों जनता के संदर्भ में सोचता हूं। करोड़ों लोगों को अपने में ऐसा सौंदर्य-बोध पैदा करने का प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता कि वे सौंदर्य में सत्य के दर्शन कर सकें इसलिए पहले उन्हें सत्य के दर्शन कराओ, सौंदर्य के दर्शन वे बाद में कर लेंगे। इन करोड़ों लोगों के लिए जो भी उपयोगी हो सकता है, मेरी दृष्टि में वही सुंदर है। पहले उन्हें जीवन के लिए अनिवार्य वस्तुएं दो, शोभा और अलंकरण की वस्तुएं बाद में आ जाएंगी।[20]

गांधी उस कला और साहित्य के पक्षधर थे, जो जनता से जुड़ा हो। उनकी दृष्टि में वही सच्ची कला है, जो जनता के लिए सुखकर हो।[21]

आखिर, कला बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली निर्जीव विद्युतचालित मशीनों के जरिए तो प्रकट की नहीं जा सकती, उसके लिए तो पुरुषों और स्त्रियों के हाथों का कोमल सजीव स्पर्श चाहिए। सच्ची कला केवल आकार पर ही नहीं, बल्कि उसकी पृष्ठभूमि में है, जो उस पर भी ध्यान केंद्रित करती है। एक कला वह है, जो मारती है और एक कला वह है, जो जीवन देती है। हमें जीवनदायिनी कला की जरूरत है। सच्ची कला अपने रचनाकार की सुख-शांति, संतोष और शुचिता का प्रमाण होनी चाहिए।[22] आखिर, सच्चा सौंदर्य हृदय की शुचिता में ही तो निहित है।[23]

सामान्यतः गांधी संगीत और अन्य सभी कलाओं के प्रेमी थे, लेकिन वे उसे उतना महत्व नहीं देता, जितना कि आम तौर पर दिया जाता। मिसाल के तौर पर, वे उन कार्यकलापों के महत्व को स्वीकार नहीं करते थे जिन्हें समझने के लिए तकनीकी ज्ञान की जरूरत होती है। जीवन सब कलाओं से बढ़कर है। जिसने अपने जीवन में प्रायः पूर्णता को प्राप्त कर लिया है, वह सबसे बड़ा कलाकार है, कारण कि उदात्त जीवन के निश्चित आधार और संरचना के बिना कला है भी क्या?[24]

सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि कला व्यक्तिगत जीवन की शुचिता से स्वतंत्र है लेकिन, गांधी का कहना है कि जीवन की शुचिता सबसे ऊंची और सबसे सच्ची कला है। आवाज का

परिष्कार करके अच्छा संगीत उत्पन्न करने की कला बहुत-से लोग अर्जित कर सकते हैं, लेकिन शुचितापूर्ण जीवन के सामंजस्य से वैसा संगीत पैदा करने की कला बिरले ही लोगो में आ सकती है।[25] उन्होंने स्वयं कहा है, मैं सत्य में अथवा सत्य के द्वारा सौंदर्य को खोजता और पाता हूं। सत्य के सभी रूप केवल सच्चे विचार ही नहीं, बल्कि सच्ची तसवीरें या गीत भी अत्यंत सुंदर होते हैं। लोग प्रायः सत्य में सौंदर्य के दर्शन नहीं कर पाते, आम आदमी उससे दूर भागता है और उसमें सौंदर्य के दर्शन की क्षमता ही खो बैठता है। जब लोग सत्य में सौंदर्य के दर्शन करने लगेंगे, तब सच्ची कला का उदय होगा।[26]

सच्चे कलाकार की दृष्टि में वही मुख सुंदर है, जो अपने बाह्य रूप से भिन्न, आत्मा के भीतर प्रतिष्ठित सत्य से आलोकित है। सत्य से भिन्न कोई सौंदर्य नहीं है। इसके विपरीत, सत्य अपने आपको ऐसे रूपों में प्रकट कर सकता है, जो बाहर से तनिक भी सुंदर न हों। कहा जाता है कि सुकरात अपने जमाने का सबसे सत्यनिष्ठ व्यक्ति था लेकिन, कहते हैं कि, उसकी मुखाकृति ग्रीस में सबसे कुरूप थी। मेरी दृष्टि में, सुकरात सुंदर था, क्योंकि उसने आजीवन सत्य के लिए संघर्ष किया। सुकरात की बाह्याकृति के कारण पिडिएस को उसके अंदर के सत्य की सुंदरता को सराहने में कोई बाधा नहीं आई हालांकि कलाकार के नाते वह बाह्याकृतियों में भी सौंदर्य के दर्शन का अभ्यस्त था।[27]

सत्य और असत्य प्रायः साथ-साथ मौजूद रहते हैं, उसी तरह अच्छाई और बुराई का भी साथ है। कलाकार में भी अनेक बार वस्तुओं की सच्ची और झूठी धारणाओं का सह-अस्तित्व रहता है। सच्ची सुंदर कृति तब जन्म लेती हैं, जब कलाकार सच्ची धारणा से प्रेरित होता है। यदि इसके उदाहरण जीवन में विरल है, तो कला के क्षेत्र में भी विरल ही हैं।[28]

प्रकृति के सौंदर्य के सामने मानव-निर्मित सब कलाओं का सौंदर्य तुच्छ है। आकाश और पृथ्वी का सौंदर्य कला-रसिक को आंनद देने के लिए काफी है। उस कला का स्वाद जो नहीं ले सकता वह यदि मनुष्य-निर्मित कला का शौकीन समझा जाता हो, तो वह मोहक दृश्यों को ही कला समझाने वाला होगा। सच्ची कला का उसे ज्ञान नहीं है।

ये सुंदर दृश्य 'सूर्यास्त अथवा तारों भरी रात में जगमगाता अर्धचंद्र' सत्यमय है, क्योंकि इन्हें देखकर हमारा ध्यान इनके सर्जक ईश्वर की ओर आकर्षित होता है। इनकी सृष्टि के केंद्र में सत्य है, इसीलिए तो ये सुंदर है। जब सूर्यास्त और सूर्योदय मुझे ईश्वर के स्मरण में सहायक न हों, तो मात्र अवरोध ही सिद्ध होंगे। आत्मा की उड़ान में अवरोध पैदा करने वाली हर चीज एक भ्रम है और पाश है, देह भी ऐसी ही चीज है, जो प्रायः मुक्ति के पथ में अवरोध पैदा करती है।[29]

तुम सब्जियों के रंग में सुंदरता क्यों नहीं देख पाते? और निरभ्र आकाश भी तो सुंदर है लेकिन नहीं, तुम तो इंद्रधनुष के रंगों से आकर्षित होते हो, जो केवल एक दृष्टिभ्रम है। हमें यह मानने की शिक्षा दी गई है कि जो सुंदर है, उसका उपयोगी होना आवश्यक नहीं है और जो उपयोगी है, वह सुंदर नहीं हो सकता। गांधी की मान्यता इसके विपरीत थी। उन्होंने लिखा है, मैं यह दिखाना चाहता हूं कि जो उपयोगी है, वह सुंदर भी हो सकता है।[30]

गांधी सौंदर्य कला को अपने आप में साध्य मानने के विरुद्ध थे और उसका महत्व, स्थान जीवन-जगत प्रांगण में ही स्वीकार करते थे। जो सौंदर्य एवं कला जीवन को अनदेखा कर केवल कला ही साधना के ध्येय से की जाती है, ऐसी साध्यस्वरूप कला गांधी को स्वीकार्य नहीं थी। कला या साहित्य जीवन की सेवा करने का साधन है। अगर इस उद्देश्य से वह भी गांधी की दृष्टि में सेवा-प्रयोजन से सन्निहित होने पर ही सौंदर्य एवं कला से आनंद निःसृत हो सकता है। सेवा विमुख साहित्य विलास तो हो सकता है, परंतु अखंड आनंद की अनुभूति का स्रोत नहीं।

10 मई 1928 को एक ईसाई महिला को लिखे पत्र में गांधी ने लिखा, मेरा यह भी विश्वास है कि सच्ची कला नैतिक कार्यों और प्रभावों के छिपे हुए सौंदर्य को देखने में है और इसलिए ऐसा बहुत कुछ जिसे कला और सौंदर्य की संज्ञा दी जाती है वह न संभवतः कला ही है और न सौंदर्य।[31] कवि या कलाकार को यह अधिकार है कि वह प्रचलित विश्वास या विश्वासहीनता का विरोध करे और उसके अपने अंतर्ज्ञान के वृहत्तर मूल्य के कारण वह कार्य न्यायोचित होगा। कला के बारे में कुछ जानने का मैं दावा नहीं करता, पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि धर्म और कला दोनों को नैतिक और आध्यात्मिक के एक जैसे उद्देश्यों की पूर्ति करनी है।[32]

गांधी ऐसी कला के पक्षधर थे, जो मनुष्य को ऊंचा उठाए। इसके लिए वे यथार्थ चित्रण को ही सब कुछ नहीं मानते थे। 25 जनवरी 1932 को प्रेमा बहन कंटक को लिखे पत्र में रोम में चित्रकला के संबंध में अपने विचार रखे हैं उन्होंने लिखा है, रोम में चित्रकला देखकर खूब आनंद लिया लेकिन वहां की कला भारत से अधिक ऊंची है, ऐसा मुझे बिलकुल नहीं लगा। दोनों भिन्न रीति से विकसित हुई है। भारत की कला कल्पना प्रधान है। योरोप की कला में यथार्थ का अनुकरण है। इससे पश्चिम की कला को समझना तो शायद सरल हो, लेकिन समझाने के बाद वह हमें पृथ्वी पर चिपकाए रहती है। और भारत की कला जैसे-जैसे समझ में आती है, वैसे-वैसे वह हमें ऊंचाई पर ले जाती है।[33] जाहिर है गांधी के लिए कला की श्रेष्ठता इस बात में भी है कि वह केवल यथार्थ का ज्ञान कराकर उसी से चिपकाये न रखे, अपितु व्यक्ति की सोच को ऊंचाई पर ले जाए, यानी दृष्टि का उन्मेष भी करे। ऐसे कार्य में कल्पना की भूमिका स्वयं सिद्ध है इसलिए वे भारत की कला को 'कल्पना-प्रधान' मानते हैं लेकिन उनके लिए कला में कल्पना का मतलब स्वेच्छाचार भी नहीं है जिससे कला सामाजिक प्रयोजनशीलता से च्युत हो जाए और उसके नाम पर कला के लिए कला की साधना होने लगे। इस प्रवृत्ति से आगाह करते हुए उन्होंने 18 अप्रैल 1932 को प्रेमा बहन कंटक को लिखे पत्र में 'कला के लिए कला का विरोध किया। उन्होंने लिखा, कला के लिए कला, का विचार मनुष्य को कहां ले जाता है, यह तू नहीं जानती। इसके नाम पर पश्चिम के जवान लड़के-लड़की बिलकुल नरक में उतर रहे है।[34] इस तरह जो कला मनुष्य की हीनवृत्तियों को उभारती और भाषा की इच्छा को बढाती है, वह कला गंदे साहित्य की श्रेणी मे ही समझी जाएगी। जिस कला के पीछे प्राणियों पर जुल्म, उनकी हिंसा, उत्पीड़न आदि हों उसमें बाह्य सौंदर्य कितना ही हो, तो भी वह कला

कलि अथवा शैतान का ही दूसरा नाम है। इस तरह के शृंगार के बहाने अश्लीलता फैलाने के विरोधी थे।

गांधी ने अपने नख-शिख सौंदर्य के वर्णन से मुग्ध होने वाली स्त्रियों को भी सजग करते हुए 11 जनवरी 1936 के 'हरिजन सेवक' में एक लेख लिखा उनके अनुसार, आश्चर्य तो यह है कि पुरुषों के सौंदर्य की प्रशंसा में पुस्तकें बिलकुल नहीं लिखी गई। तो फिर पुरुष की विषय-वासना को उत्तेजित करने के लिए ही साहित्य क्यों हमेशा तैयार होता रहे? यह बात तो नहीं कि पुरुष ने स्त्री को जिन विशेषणों से भूषित किया है, उन विशेषणों को सार्थक करना उसे पसंद है? स्त्री को क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीर के सौंदर्य का पुरुष अपनी भोग-लालसा के लिए दुरूपयोग करे? पुरुष के आगे अपनी देह की सुंदरता दिखाना क्या उसे पसंद होगा? यदि हां, तो किसलिए? मैं चाहता हूं कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहने स्वयं अपने दिल से पूछें। यदि ऐसे अश्लील विज्ञापनों और साहित्य से उनका दिल दुखता हो, तो उन्हें इनके विरुद्ध अविराम युद्ध चलाना चाहिए।[35]

31 अक्टूबर 1936 को 'गुजरात साहित्य परिषद्' में रविशंकर रावल की चित्रकला पर बोलते हुए गांधी ने रोम में देखी हुई एक मूर्ति के बारे में कहा, चित्र ऐसे होने चाहिए जो मुझसे बोलें, मेरे आगे नाचें। ऐसे चित्र दुनिया भर में थोड़े हैं। रोम में पोप के संग्रह में मैंने एक मूर्ति देखी जिसे देखकर मैं अपना भान भूल गया था। यह मूर्ति 'क्राइस्ट ऑन दि क्रॉस' 'सलीब पर ईसा' की है।

यह मूर्ति देखकर मनुष्य पागल हो जाता है। उसे देखकर मैं स्तब्ध हो गया था। वहां के पुराने मंदिर में नग्न अवस्था में खड़ी एक स्त्री की मूर्ति देखी थी। वह मुझे किसी ने बताई नहीं थी, परंतु एकदम मेरा ध्यान उधर गया और मैं आकर्षित हुआ। मैं नग्न अवस्था में खड़ी स्त्री का वर्णन यहां नहीं करना चाहता, किंतु जो चित्र का भाव मैंने समझा, वह बताता हूं। उसके पैर के सामने एक बिच्छू पड़ा है। उसका कवि वीभत्स नहीं था, इसलिए स्त्री को उसने कपड़े से कुछ ढंक दिया था। यह काले संगमरमर की मूर्ति है। उसे देखकर ऐसा लगता है कि कोई रंभा है जो बेचैन हो रही है। मैं उसका वर्णन अपनी देहाती शैली में ही करता हूं। मैं तो देखता ही रह गया। वह अपने शरीर पर से कपड़े को झटक रही है। कला को वाणी की जरूरत नहीं होती। मुझे ऐसा लगा, साक्षात् कामदेव यहां बिच्छू बनकर बैठा है। उस स्त्री के शरीर में आग जल रही है। कवि ने कामदेव की विजय होने दी है, परंतु उस स्त्री ने आखिर अपने कपड़े में से उसे झाड़कर फेंक दिया है और उसकी जीत नहीं होने दी। उस स्त्री के अंग-प्रत्यंग पर उसकी वेदना चित्रित है।[36]

जाहिर है कि गांधी के लिए मनुष्य एवं उसकी मनुष्यता सर्वोपरि है, इसकी तुलना किसी भी कला एवं साहित्य से नहीं की जा सकती है। कुल मिलाकर, हम देखते हैं कि सौंदर्य, कला एवं आनंद की गांधी-दृष्टि आधुनिक भोगवादी पश्चिमी सभ्यता की दानवी प्रवृत्तियों के विपरीत प्राचीन भारतीय सभ्यता में अंतर्निहित मानवीय मूल्यों, नैतिक संस्कारों एवं सामाजिक

सरोकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करती है। आज जिस तरह से 'सौंदर्य' एवं 'कला' का बाजारीकरण हो रहा है और 'आनंद' को संकुचित कर महज ऐंद्रिक सुखोपभोग तक सीमित किया जा रहा है, तो हमें गांधी-दृष्टि से प्रेरणा लेने की जरूरत है।

●

संदर्भ सूची-

1. बरनवाल, वीरेंद्र कुमार, हिंद स्वराज : नव सभ्यता-विमर्श, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 46-47.,2. वही. 3. वही. 4. वही. 5. वही. 6.वही. 7. द्विवेदी, डॉ. शिवगोविंद, गांधीः जीवन-दर्शन, साहित्य एवं कला, गांधी विचार केंद्र, कानपुर (उत्तर प्रदेश), पृ. 38. 8. वही, पृ. 24. 9. गांधी, यंग इंडिया, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, गुजरात, 13 नवंबर 1924, पृ. 377. 10. वही, पृ. 378. 11. वही, पृ. 377. 12. द्विवेदी, डॉ. शिवगोविंद, गांधीः जीवन-दर्शन, साहित्य एवं कला, पूर्वोक्त, पृ. 48 13.गांधी,यंग इंडिया, 20 नवंबर 1924, पृ. 386. 14. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, गुजरात, भूमिका। 15. वही. 16. द्विवेदी, डॉ. शिवगोविंद, गांधी : जीवन-दर्शन, साहित्य एवं कला, पूर्वोक्त, पृ. 53. 17. वही, द्रष्टव्य. 18. वही. 19. गांधी, यंग इंडिया, 13 नवंबर 1924, पृ. 377. 20. गांधी, यंग इंडिया, 20 नवंबर 1924, पृ. 386. 21. गांधी, यंग इंडिया, 27 मई 1926, पृ. 196. 22. वही, 11 अगस्त 1921, पृ. 253. 23. वही, पृ. 228. 24.एग्रो, पृ. 65-66. 25. गांधी, हरिजन, 19 फरवरी 1938, पृ. 10. 26. गांधी, यंग इंडिया, 13 नवंबर 1924, पृ. 377. 27. वही. 28. वही. 29.गांधी, हरिजन, 13 नवंबर 1924, पृ. 328. 30. वही, 7 अप्रैल 1946, पृ. 67.31.गांधी, संपूर्ण गांधी वाड़मय, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, खंड 36, पृ. 324. 32. वही, खंड 48, पृ. 165. 33. वही, खंड 49, पृ. 38. 34. वही, पृ. 314. 35. रंगनाथन्, सुमन, शिक्षण और संस्कृति, उत्तर प्रदेश गांधी-स्मारक निधि, वाराणसी; उत्तर प्रदेश, पृ. 719-20, 'गांधी' हरिजन सेवक, 11 जनवरी 1936, 36. 'गांधी' संपूर्ण गांधी वाड्मय, पूर्वक्त, खंड 63, पृ. 449।

नयी तालीम का भविष्य

ऋषभ कुमार मिश्र

शिक्षा के लक्ष्यों को परिभाषित करने के लिए महात्मा गांधी ने हक्सले के इस कथन का अनेक बार उल्लेख किया है- ''उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गयी है कि वह उसके बस में रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और इंसाफ को परखने वाली है। उसने सच्ची शिक्षा पायी है जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियां उसके बस में हैं। जिसके मन की भावनाएं शुद्ध हैं, जिसे घृणित कामों से नफरत है, जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित माना जाएगा क्योंकि वह कुदरत के नियम के अनुसार चलता है। कुदरत उसका उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा। इस कसौटी पर अपने और अपने बच्चों की शिक्षा का मूल्यांकन करें तो हममें से अधिकांश लोगों के हाथ निराशा लगेगी। शिक्षा एक ऐसा सार्वजनिक विषय है जिसके बारे में समाज का हर व्यक्ति कोई न कोई राय रखता है। प्रायः ऐसी राय में आलोचना का स्वर अधिक होता है जिसमें औपचारिक शिक्षा से असंतुष्टियां प्रकट होती हैं। इसके साथ ही सुधारों और संभावनाओं का पुलिंदा होता है। ऐसा जान पड़ता है कि यदि हर व्यक्ति की रायशुमारी को ध्यान में रखकर कोई नीति बना दे तो रातोंरात औपचारिक शिक्षा का ढांचा, व्यक्ति और समाज के लिए इसकी भूमिका में आमूलचूल बदलाव आ जाएगा। यदि ऐसी संभावनाओं का सर्वेक्षण करें तो आप पाएंगे कि शिक्षा में जिन सुधारों के प्रति व्यक्ति या कोई समूह विशेष चितिंत होता है वह उसकी जरूरतों को पूरा करने, उसे समर्थ बनाने तक सीमित होती है। इन सुधारों में उसके व्यक्तिगत आग्रहों का स्वर ऊंचा होता है उसमें व्यक्ति और समाज के हितों का अलगाव होता है। उदाहरण के लिए हममें से अधिकांश मातृभाषा में शिक्षा की पूरी पैरवी करते हैं लेकिन अपने पाल्यों के लिए अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का चुनाव करते हैं। इसी तरह हम प्रतियोगी परीक्षाओं या परीक्षोन्मुख प्रणाली के लिए चिंतिंत है लेकिन इसके लिए कोचिंग इत्यादि की निर्भरता ज्यों की त्यों है। नैतिक मूल्यों का अभाव, सामाजिक-सांवेगिक विकास का न होना इस कदर हावी हो चुका है कि स्कूलों में आनंद के लिए अलग से कक्षाएं पढ़ाई जा रही हैं। हम सभ्यता के इसी संस्करण के उत्पाद हैं और इसी रास्ते पर भावी पीढ़ी को ढकेलने के लिए उद्यत हैं। इन परिस्थितियों में हम अक्सर किसी 'नए' रास्ते

की परिकल्पना करते हैं। इस परिकल्पना में शिक्षा की भूमिका व्यक्ति को समर्थ बनाने वाली, व्यक्ति, प्रकृति, समाज के संबंध को मजबूत बनाने वाली, राज्य के संवैधानिक मूल्यों के अनुसार नागरिकों का विकास करने वाली माना जाता है। शिक्षा की यही भूमिका गांधी प्रणीत नयी तालीम का आधार है। यह विद्यार्थी को विद्यालय, अध्यापक, परीक्षा और प्रमाणपत्र आदि की कृत्रिम, कठोर और जटिल दुनिया का हिस्सा नहीं बनाना चाहती है। इसमें जीवन के लिए अपरिहार्य आधारभूत कौशलों जैसे- खुद की सफाई, खाना पकाना, सहकार की भावना, आत्मानुशासन और स्वबोध पर बल दिया जाता है। यह मानव जीवन की बुनियाद- उद्योग, के माध्यम से परिवेश, प्रकृति और समाज को जानने के रास्तों पर ले जाती है। यह विद्यार्थी और शिक्षक को अहिंसा आधारित समतामूलक और न्याय आधारित समाज की बुनियाद मानते हुए उनके विचारों और क्रियाओं का संस्कार करती है। यह व्यक्ति में बुनियादी समस्याओं का मुकाबला करने का साहस देती है। यह साहस संघर्ष या युद्ध नहीं है बल्कि सत्य, अहिंसा, स्वावलंबन और सहकार है। इसमें यह लक्ष्य निहित है कि कोई भी समस्या जिस वर्ग या समुदाय की समस्या है केवल उसके लिए उसी वर्ग को न तैयार किया जाए बल्कि यह सर्वजन और सर्वहित का विषय है। कुल मिलाकर यहां शिक्षा अहिंसात्मक सामाजिक बदलाव का साधन और साध्य है।

नयी तालीम का नयापन

नयी तालीम का नयापन, अंग्रेजीपरस्त, केवल संज्ञानात्मक, रटंत शिक्षण पर आधारित और जीवन से दूर ले जाने वाली शिक्षा के सापेक्ष उस शिक्षा का पुनर्जीवन है जहां जीवन द्वारा जीवन के लिए शिक्षा दी जाती है। जहां ज्ञान और कर्म का द्वैत नहीं है। जहां उद्योग, प्रकृति और समाज का परस्पर घनिष्ठ संबंध स्वालंबन का आधार है। जहां शिक्षा राज्याश्रित या पूंजीआश्रित न होकर लोकाश्रित है। इसी शिक्षा पद्धति को धर्मपाल ने भारतीय परंपरा और लोकजीवन के निकट पाया और शोध के आधार पर इसकी महत्ता को 'ए ब्यूटीफूल ट्री' की संज्ञा दी। स्पष्ट है कि नयी तालीम का नयापन शिक्षा और संस्कृति के संबंध में आए लोप को पुनः स्थापित करने में निहित है। यह नयापन शिक्षा के तत्व और तंत्र दोनों के लिए आवश्यक है। दुर्भाग्य यह है हमने इसके तत्व को न अपनाकर तंत्र को ही अपनाने, अनुकूलित करने, मुख्यधारा की शिक्षा में जैसे-तैसे फिट करने की कोशिश करते रहे। यह कोशिश अभी भी जारी है। जिस दौर में गांधी 'तालीम' के नए संस्करण का आह्वान कर रहे था उस दौर में शिक्षा केवल शासक वर्ग के हाथ में एक औजार थी जिसके द्वारा वे अपने शासन, अपनी सभ्यता अपने ज्ञान अपने व्यवहारों की व्यापक स्वीकृति चाहते थे। इस स्वीकृति की सीमाओं से गांधीजी भलीभांति परिचित हो चुके थे इसलिए वे आमूलचूल परिवर्तन का आह्वान करते हुए नयी तालीम का सूत्र देते हैं। इसे अपनाया भी जाता है लेकिन दुःखद है कि इसे असफल भी घोषित किया जाता है। जबकि सच्चाई है कि नयी तालीम कभी भी असफल नहीं हुई। वह शिक्षा की एक प्रयोगमूलक धारा के रूप में उपस्थित रही है। नारायण भाई देसाई, अभय बंग, दयाल चंद्र सोनी, सुषमा शर्मा, प्रदीपदास गुप्ता और सुगरण बरंठ आदि कुछ नाम है जो लगातार इस प्रयोग को देश-काल के सापेक्ष अपनाते रहे हैं। इसके अलावा देश भर में शिक्षा को लेकर

जो भी प्रयोग हुए हैं उनमें वैचारिक प्रेरणा में नयी तालीम का उल्लेख अवश्य रहा है।

नयी तालीम के भविष्य पर विचार के पूर्व नयी तालीम और प्रचलित तालीम में आधारभूत अंतर की पड़ताल कीजिए। प्रचलित शिक्षा, जिसके सापेक्ष हम नयी तालीम की पैरवी करते हैं एक खास तरह की सभ्यता और संस्कृति के लिए लोगों को तैयार करती है। इसमें उत्पादकता का अर्थ पूंजी से, प्रसन्नता का अर्थ प्रतियोगिता में सफलता और व्यक्तिगत उपलब्धि, विज्ञान का अर्थ बौद्धिक जोड़-तोड़ जनित प्रौद्योगिकी उन्मुख व्यवस्था से है। सभ्यता के इस मॉडल को भारत में कभी भी आदर्श मॉडल के रूप में नहीं स्वीकारा गया है लेकिन कुछ दृश्य और अदृश्य ताकतें इसे चलन में बनाए हुए हैं। इन ताकतों के बारे में एरिक फ्राम का विचार उल्लेखनीय है कि ये ताकतें व्यक्ति की सत्ता का लोप कर उसके केंद्र को किसी बाहरी ताकत में स्थापित कर देती हैं। यह केंद्र राज्य हो सकता है या बाजार हो सकता हैं। ये ताकतें भय पैदा करती है कि अगर पढ़ोगे नहीं, नौकरी नहीं करोगे और व्यवस्था के पायदान में कहीं खड़े नहीं होगे तो तुम कुछ भी नहीं हो। इस भय पर विजय नहीं प्राप्त कर पाए है। इस माहौल में स्वतंत्रता, लोकतंत्र और भागीदारी की बात करना व्यक्ति में पढ़े-लिखे होने के यांत्रिक लाभ जैसा है जिसका कोई फायदा नहीं। व्यक्ति स्वतंत्र है इसलिए रिश्तेदारों से पड़ोसियों से संबंध रखने का कोई फायदा नहीं। उनके हित के लिए अपने लाभ को कम करने का सवाल ही नहीं उठता। लोकतंत्र है तो अपने अधिकारों के लिए शोर करेंगे लेकिन दायित्व के सवाल पर मौन रहेंगे। वर्तमान में इसने अपने प्रभाव में पूरी व्यवस्था को ही ले लिया है। शिक्षा द्वारा जिस मानव पूंजी का उत्पादन हो रहा है वह मानस का संस्कार नहीं कर रहा है वह उसकी सर्जना को पूंजी उत्पादन का यंत्र बना रहा है। भोग की आदत को बढ़ा रहा है क्योंकि उत्पादन के लिए उपभोग का बढ़ना आवश्यक है।

इन परिस्थितियों के बीच नयी तालीम व्यक्ति, समष्टि और प्रकृति के बीच संवाद और संतुलन पर बल देती है। यह व्यक्ति को आंतरिक और बाह्य बंधनों से मुक्त करने का लक्ष्य रखती है। उनमें परस्पर प्रेम और सौहार्द का सृजन करना चाहती है। यह भावों, विचारों की अभिव्यक्ति को अपरिहार्य मानती है। विज्ञान और अध्यात्म में समन्वय करती है। न तो विज्ञान को उत्पादन और यांत्रिकता के प्रभाव में मानवता का लोप करना चाहती है न ही परंपरा के प्रभाव में वैज्ञानिक दृष्टि से परंपरा का मूल्यांकन करते हुए रूपांतरण चाहती है। इसके लिए जीवन तत्व है और जीविका तंत्र मात्र है। इन्हीं विशेषताओं के कारण नयी तालीम कभी खत्म नहीं हो सकती। इसकी पद्धति का प्रत्यक्ष अवलोकन हो या न हो लेकिन इसका दर्शन निरंतर हमारी शिक्षा व्यवस्था के समांतर उपस्थित रहा है। आज भी आप संपन्न और गरीब, ग्रामीण और नगरी, लड़के और लड़की किसी की भी शिक्षा की बात करें उसकी आदर्श परिकल्पना में कहीं न कहीं नयी तालीम का समाज-दर्शन छुपा है जो समाज में अहिंसा, शांति, न्याय और समानता, व्यक्ति स्वातंत्रय का दर्शन करना चाहता है।

नयी तालीम पद्धति पर आधारित विद्यालय की अधिगम संस्कृति जैसे ही मैं किसी से बताता हूं कि मैं 'नयी तालीम' के सिद्धांत पर आधारित विद्यालय की अधिगम संस्कृति पर शोध कर रहा हूं वैसे ही हर कोई मुझसे चरखा, खेती, सफाई कार्य जैसी बातों के बारे में जानना

चाहते हैं। वस्तुतः ये तो नई तालीम के यंत्र हैं उसके तत्व नहीं। यदि हम इसी अर्थ में नयी तालीम को देखना और दिखाना चाहते थे तो हमें निराश होना पड़ेगा। किसी परंपरागत विद्यालय की तरह नयी तालीम के सिद्धान्त पर आधारित आनंद निकेतन विद्यालय में कक्षा शिक्षण होता है। कई बार परंपरागत विधियों से विषय को पढ़ाया जाता है और उसका मूल्यांकन होता है। किताबों से सवाल-जवाब लिखे जाते हैं। कक्षा-शिक्षण और उत्पादक कार्य अलग-अलग होते हैं। कई बार उनमें न्यूनतम समवाय होता है। हां यह जरूर है कि इस विद्यालय के विद्यार्थी और शिक्षक स्वावलंबन का यथासंभव अभ्यास करते हैं। वे प्रकृति और समुदाय के साथ सहजीवन में रहते हैं। वे सत्र का आरंभ मौसमी सब्जी की खेती के साथ करते हैं। वे शिक्षकों को भाई-बहन की भूमिका में अपने निकट पाते हैं। वे प्रकृति और समुदाय के साथ नातेदारी निभाते हैं इसीलिए प्रकृति पर विजय की आकांक्षा नहीं रखते। सीखने के लिए समुदाय की समस्याओं को चुनते हैं। वे समुदाय से अपना ज्ञान साझा करते हैं। वे लोकतांत्रिक ढंग से स्कूल को चलाने में विश्वास करते हैं। उनमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय जैसे मूल्यों के प्रति समर्पण है। वे खोजने और रचने को तत्पर हैं। वे बुद्धि, शरीर और हृदय के सम्मिलित विकास का लक्ष्य रखते हैं। इन बुनियादी विशेषताओं से संपन्न विद्यालय में भी औसत, प्रतिभाशाली और कमजोर विद्यार्थी पढ़ते हैं। यह विद्यालय सभी विद्यार्थियों को एक जैसा बनाने के प्रति आग्रही नहीं है। यहां विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक क्षमता के आधार पर उनकी संभावनाओं व सीमाओं का आकलन करते हैं। विद्यालय की अधिगम संस्कृति सुनिश्चित करती है कि किसी भी विद्यार्थी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उसके सीखने में बाधक न बने। यह विद्यालय कृत्रिमता और अलंकरण की न्यूनता का पक्षधर है। बात चाहे गणवेश की हो, सांस्कृतिक आयोजन की हो, दोपहर के खाने की हो या कक्षा के सजावट की, हर जगह प्राकृतिक साधनों और नैसर्गिक सौंदर्य व सुविधा को महत्व दिया जाता है। विद्यालय न तो किसी भव्य इमारत में संचालित है और न ही संसाधनातिरेक, सूचना प्रौद्योगिकी के चक्रव्यूह का प्रदर्शन करता है फिर भी यहां बच्चे और शिक्षक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की वैसी ही समझ रखते हैं जैसे किसी आलीशान निजी विद्यालय के विद्यार्थी। उनमें स्वतंत्रता और आत्मानुशासन का अद्‌भुत संगम है। यहां के शिक्षक केवल विषय का शिक्षण नहीं करते, वे खुद भी श्रमिक हैं, कलाकार हैं, शोधकर्ता हैं, लेखक हैं, सामाजिक कार्यकर्ता हैं। विद्यालय ने समानधर्मा सामुदायिक इकाइयों व संस्थानों से घनिष्ठ संबंध विकसित किया है। इस कारण अनके उद्यमी, शिल्पकार, चिकित्सक, कृषक आदि के प्रयोगों और विकसित ज्ञान का लाभ विद्यालय को अनायास ही मिल जाता है। इस तरह से यह विद्यालय बेहतर मनुष्य बनाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा हैं। आनंद निकेतन विद्यालय एक प्रयोगशाला है। यहां मानव निर्माण का प्रयोग हो रहा है। इस प्रयोग को करने वाले खुद अपनी समीक्षा और गांधीवादी मूल्यों के आईने में अपना आत्म मूल्यांकन करते चलते हैं। उनमें आपसी असहमतियां हैं लेकिन ईर्ष्या नहीं है। उनमें आगे बढ़ने की चाह है लेकिन प्रतियोगिता नहीं। उनमें ज्ञान को खोजने की ललक है लेकिन उसे बाजार की वस्तु बनाने का आग्रह नहीं। वे बौद्धिक बहसों में उलझने में विश्वास रखते हैं लेकिन भाव-जगत पर भी अटूट आस्था है। वे राज्य के प्रति आलोचनात्मक हैं लेकिन राज्य को खंडित करने के पक्षधर नहीं। उनमें नियमों

को बनाने की प्रवृत्ति है लेकिन उसमें फंसकर जीने की आदत नहीं है। ज्ञान के निर्माण के नाम पर ज्ञानमय बने रहने का आग्रह नहीं है। यहां भी बच्चे असफल होते हैं, शिक्षक असफल होते हैं। अभिभावक भारी भरकम अपेक्षा रखते हैं। शिक्षक भी अन्य कर्मचारियों की तरह वेतनवृद्धि चाहते हैं लेकिन कहीं न कहीं गांधी मार्ग पर चलने की अभिप्रेरणा बनी हुई है। इस स्कूल का दरवाजा समाज के लिए खुला है। यहां के हर अवयव में प्रेम और आनंद बिखरा है। आपसी रिश्तों की डोर मजबूत है। यह विद्यालय एक 'निकेतन' ही तो है। जहां सब मिलकर एक दूसरे के साथ आगे बढ़ रहे हैं। हर रोज जीवन के साथ जीवन में आगे बढ़ने के भाव से कुछ रच रहे हैं।

नयी तालीम का भविष्य

नयी तालीम को आप कैसे देखते हैं? क्या आप इसे मानवतावादी, निर्माणवादी बालकेन्द्रित शिक्षणशास्त्र का तंत्र मानते हैं या समाज के नव निर्माण के इसके मूलतत्व को अंगीकार करते हैं। समाज के नव निर्माण की दृष्टि से देखना और अपनाना दुष्कर है। यह मांग करता है कि आप अपने विचार जगत के सुविधा क्षेत्र से बाहर निकलें और समाज के आमूलचूल परिवर्तनों की कल्पना को देखें। यह कठिन है। इसके लिए न तो 1937 में तैयार थे और न आज तैयार हैं। कारण? हम खुद का प्रकृति और समाज के साथ एकात्मकता का बोध नहीं कर पाते हैं। हम प्रत्येक घटक को भिन्न इकाई मानते हैं और मानकर चलते हैं कि इनके हित अलग हैं। इनके बीच सहअस्तित्व को हम अपनी श्रेष्ठता या विशेष हैसियत के साथ स्वीकारते हैं। नयी तालीम इसी उपभोक्तावाद और लालच का अंत करना चाहती है। यह शिक्षा को ऐसी प्रक्रिया बनाना चाहती है जो विद्यार्थियों और शिक्षकों के मन, वचन और कर्म में द्वंद्व का समाधान करने की क्षमता पैदा करे। यह क्षमता प्रयोजनमूलक और अवसरवादी न होकर सत्य, अहिंसा और न्याय आधारित हो। यही प्रक्रिया स्वस्थ समाज का विकास करेगी। यह स्वस्थ स्वाभाविक रूप से आर्थिक दृष्टि से संपोषणीय होगा। इसके नागरिक व्यक्तिगत आकांक्षाओं के साथ सबके भले के बारे में विचार कर सकेंगे। वे अपनी जरूरतों और आवश्यकताओं का मूल्यांकन सबके हितों के सापेक्षकर सकेंगे। वे लालची और संग्रही होने के बजाय सर्वोदयी होंगे।

नयी तालीम किसी व्यवस्था का विरोध नहीं करती। न ही यह किसी वैकल्पिक व्यवस्था की परिकल्पना करती है। यह तो व्यक्ति, प्रकृति, समुदाय को बांधने के लिए आवश्यक ज्ञान, व्यवहार और अभिवृत्ति में बच्चों को संस्कारित करना चाहती है। जैसे-जैसे मैं नयी तालीम के बारे में पढ़ता जा रहा हूं, आनंद निकेतन स्कूल के बहाने इसे जीता जा रहा हूं वैसे-वैसे मेरा यह विश्वास पुख़्ता होता जा रहा है कि शिक्षा की शक्ति अक्षुण्ण है। यह किसी औपचारिकता में नहीं रचती-बसती। बस इसे जीवन को जीने के ढंग के रूप में अपनाना है। समाज की बढ़ती जटिलताओं को सरल करने के लिए हमने जो सुविधाएं या रास्ते ईजाद किए वे सब के सब नियमों के फंदे बनकर लोगों को फंसाए हुए हैं। ऐसा भी नहीं है कि हमारे सारे सवालों व समस्याओं का जवाब नयी तालीम है। हां यह जरूर है कि हमें नया करने, पुराने किए की समीक्षा करने और उसके आधार पर भविष्य की रूपरेखा रचने का कार्य किया जा सकता है। किसी पद्धति पर भरोसा करने के बजाय हमें अपने बच्चों की शिक्षा के लिए खुद चिंता करनी होगी।

किसी उद्धारक के इंतजार का रास्ता छोड़ना होगा। हम अपने बच्चों की जिम्मेदारी-समय, शक्ति और भागीदारी को धन से रिप्लेस कर रहे हैं। अच्छा स्कूल, ट्यूशन लगवाकर हम स्वयं जो कर सकते थे, सीख सकते थे, बच्चे के निर्माण में योग कर सकते थे, उससे पल्ला झाड़ लेते हैं। परिवार और समुदाय तो वैसे ही सोचेंगे जैसे समाज के अधिकांश लोग सोचते हैं कि उनके पाल्य पढ़ें और अच्छी जीविका अर्जित करें। समाज में उनका रसूख और हैसियत हो। वे सत्ता और ताकत के भागीदार बनें। बच्चा अपनी दिनचर्या का ज्यादातर समय ऐसे लोगों के साथ ही बिताएगा। अब यदि आप एक भिन्न समाज चाहते हैं तो उसका बीज कैसे अंकुरित होगा। स्कूल में लेकिन स्कूल में भी तो शिक्षक सहित अन्य वयस्क उसी समाज से आते हैं। कुछ शिक्षक ऐसे हों, अच्छी बात है कि सभी शिक्षक ऐसे हों व्यक्ति और उसकी हैसियत में फर्क करते हों, ईर्ष्यारहित करुणा से परिपूर्ण हों, तद्नुभूति का भाव रखते हों। इन भावों के साथ वे अपने शिक्षार्थियों के साथ व्यावसायिक संबंध न बनाकर सही अर्थों में गुरु-शिष्य का संबंध बनाते हैं। यह नातेदारी पर्याप्त नहीं है। विद्यार्थी के प्राकृतिक- सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में ज्ञान की आवश्यकता हो और इसी से ज्ञान उत्पन्न हो। ज्ञान की आवश्यकता की पूर्ति और उत्पादन उद्योग अथवा श्रम आधारित हो। इनके माध्यम से विचार और क्रिया का मिलन हो। इसी प्रक्रिया से शरीर, बुद्धि और आत्मा को विकसित कर सकते हैं अन्यथा केवल आत्म तत्व की मीमांसा का बौद्धिक ज्ञान या जीवन को आसान करने देने वाली प्रौद्योगिकी को उत्पन्न कर देने की बुद्धि पैदा होगी।

नयी तालीम को एक नयी परिभाषा की आवश्यकता है। एक ऐसी तालीम जो प्रत्येक भागीदार विद्यार्थी और शिक्षक को स्वावलंबी बनाए। स्वावलंबन का सीमित अर्थ जीविकोपार्जन की क्षमता से न लगाया जाए। प्रकृति-समुदाय-व्यक्ति के योग को ध्यान में रखते हुए शिक्षण गतिविधियों का आयोजन हो। ऐसा माहौल जहां सामाजिक-सांवेगिक विकास में अहिंसा, शांति, सहिष्णुता आदि को आचरण में उतारने की प्रेरणा मिले। इसे केवल गांव के बच्चों की शिक्षा के लिए एक विधि के रूप में न देखा जाए। कल्पना कीजिए कि महानगरों में बहुमंजिला इमारतों में चलने वाले स्कूल जहां खेल के मैदान के अलावा सब कुछ कंक्रीट का होता है वहां नयी तालीम शिक्षा इसी मनुष्य के निर्माण का संकल्प होनी चाहिए।

●

अंक के रचनाकार

- **रजनीश कुमार शुक्ल-** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महा)
- **गिरीश्वर मिश्र-** 307 टावर-1 पार्श्वनाथ मैजेस्टिक फ्लोर्स, वैभव खंड, गाजियाबाद-201014 (उ.प्र.) 9922399666
- **अंबिका दत्त शर्मा-** दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ. हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर- (म.प्र.) 9406519498
- **नमिता निंबालकर-** एसोशिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई (महा.)
- **कमल किशोर गोयनका-** ए-98 अशोक विहार, फेज-प्रथम, दिल्ली-110052 (उ.प्र) 9811052469
- **शिवदयाल-** ए 1/ 201 आर.के. विला महेश नगर, पटना- 800024 (बिहार), 9835263930
- **रामजी सिंह, पूर्व सांसद-** 104 बी खंड, टेरेस गार्डेन, पटना नर्सरी के सामने, आशियाना-दीघा रोड पटना-812014 (बिहार)
- **अवधेश प्रधान-** एन-1/65 ई-52 शिवप्रसाद गुप्त कॉलोनी, सामने घाट नगवा, वाराणसी- 221005 (उ.प्र) 8400925082
- **ओम निश्चल-** जी-1/506-ए, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 8447289976
- **जी. गोपीनाथन-** सौपर्णिका कांक्कचेरी (पीओ) कुलक्काटचाली वाया चेलेम्ब्रा- 673634 (केरल)
- **एन. लक्ष्मी अय्यर**-अध्यक्ष हिंदी विभाग, सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान, एन.एच-8 तहसील किशनगढ़-305801(अजमेर) 9680276038
- **श्रद्धानंद-** के-67/81ए, ईश्वरगंगी, भरत मिलाप कॉलोनी, वाराणसी-221001 (उ.प्र.) 9415448948
- **मनोज कुमार-** प्रोफेसर, महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महा.) 9422404277
- **सुशील कुमार त्रिपाठी-** एडजंक्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महा.) 7052005100
- **उमाकांत मालवीय-** C/o श्री यश मालवीय, ए-111 मेंहदौरी कॉलोनी, इलाहाबाद- 211001 (उ.प्र.)
- **श्रीनिवास पाण्डेय-**प्रोफेसर हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221001(उ.प्र.) 9450212813
- **सुधांशु शेखर-**दर्शना पब्लिकेशन जी-एफ-1/7 एफ, शैल निकेतन, लाल कोठी, भागलपुर-812002 (बिहार) 9934629245
- **ऋषभ कुमार मिश्र-** सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,, वर्धा-442001(महा.) 9403578403

प्रकाशन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

सदस्यता आवेदन पत्र

'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 400 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 370 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

(नोट : केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएंगें। कृपया मनीऑर्डर एवं चेक न भेजें।)

बैंक ड्राफ्ट 'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें। किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट स्वीकार्य होगा।

प्रकाशन प्रभारी
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र)
फोन नं. 07152-232943

Bank Details for Online Payment :
Name: Finance Officer, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name: **Bank of India, Wardha** Account No.: **972110210000005**
IFSC Code No.: **BKID0009721** MICR Code No.: **442013003**

बहुवचन/पुस्तक-वार्ता पत्रिका के अंक .... से .... के लिए
रुपये .... का बैंक ड्राफ्ट संख्या .... दिनांक ....
संलग्न कर रहा हूँ/कर रही हूँ, कृपया मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भेजे :-

नाम : ....

पता : ....

दूरभाष : .... ई-मेल : ....

दिनांक : .... (सदस्य के हस्ताक्षर)